हिन्दी कविता में समकालीन बोध

(कवि विजेन्द्र के संदर्भ में)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा की

पीएच. डी. (हिन्दी) उपाधि

के लिए प्रस्तुत

शोध –प्रबंध

शोध निर्देशक

डॉ. मीता शर्मा

सहायक आचार्य (हिन्दी)

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय

कोटा (राज.)

शोधार्थी

हरिहरानंद शर्मा

व्याख्याता (हिन्दी)

राजकीय आचार्य संस्कृत महाविद्यालय

अजमेर (राज.)

राजकीय महाविद्यालय, कोटा

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

2016

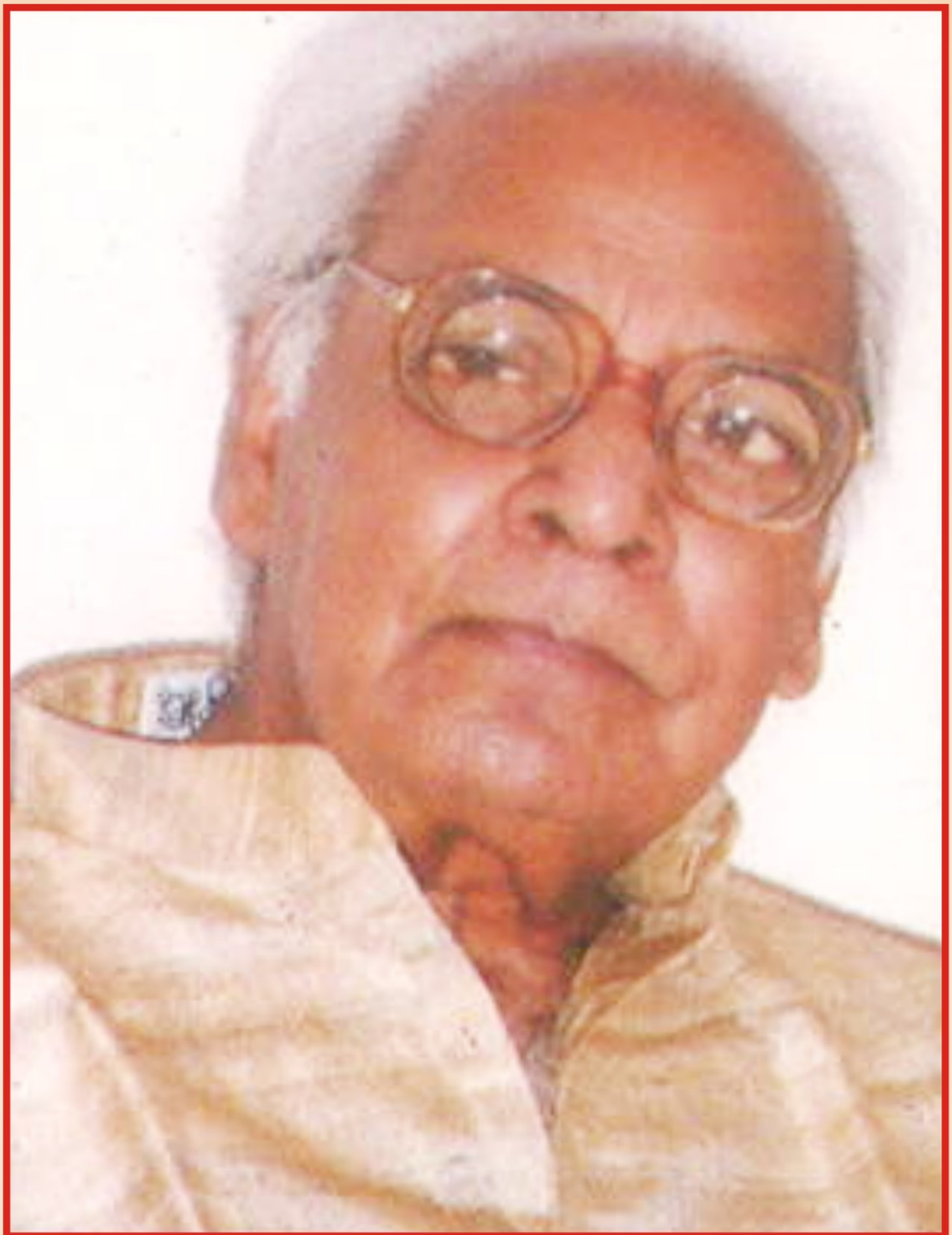

''शब्दों की साधना से ही चलके आया हूँ यहाँ तक
मुझे बोलने दो जनपद की भाषा''

विजेन्द्र

घोषणा – पत्र

मैं, हरिहरानंद शर्मा, शोधार्थी पीएच. डी. (हिन्दी), कोटा विश्वविद्यालय, कोटा घोषणा करता हूँ, कि प्रस्तुत शोध – प्रबंध **हिन्दी कविता में समकालीन बोध (कवि विजेन्द्र के संदर्भ में)** मेरा मौलिक एवं नवीन कार्य है। मैंने इसे डॉ. (श्रीमती) मीता शर्मा, सहायक आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा के निर्देशन में पूर्ण किया है। इसमें लिए गए समस्त तथ्य प्रामाणिक हैं।

दिनांक :

शोधार्थी

हरिहरानंद शर्मा

<u>शोध प्रमाण – पत्र</u>

प्रमाणित किया जाता है कि श्री हरिहरानंद शर्मा, शोधार्थी पीएच.डी. (हिन्दी), कोटा विश्वविद्यालय, कोटा द्वारा प्रस्तुत शोध – प्रबंध **'हिन्दी कविता में समकालीन बोध' (कवि विजेन्द्र के संदर्भ में)** मेरे निर्देशन एवं निरीक्षण में लिखा गया है। इस गवेषणात्मक प्रबन्ध के लिए इन्होंने अथक परिश्रम किया है। इनका यह कार्य पूर्णतया मौलिक एवं नवीन है।

मैं इस शोध–प्रबंध को मूल्यांकन हेतु संस्तुत करती हूँ।

निर्देशक

डॉ. (श्रीमती) मीता शर्मा

दिनांक — सहायक आचार्य एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग

स्थान : कोटा — वर्धमान महावीर कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्राक्कथन

''कहाँ कर पाती हैं सभी नदियाँ, निर्माण डेल्टाओं का, जैसे लिख कर कविता नहीं होते सभी कवि'' इन पंक्तियों को 'कृतिओर' में पढ़ने के उपरांत विजेन्द्र के कवि –कर्म और उनकी काव्य दृष्टि को पढ़ने और समझने की चाह मन में पैदा हुई, फलस्वरूप कवि की कृति 'धरती कामधेनु से प्यारी' हाथ में आई। समकालीन कविता में अभिरूचि होने के कारण इस कविता संग्रह की कविताओं को पढ़ने के उपरांत कवि की अन्य रचनाओं को पढ़ने की जिज्ञासा हुई, फलस्वरूप 'चैत की लाल टहनी' और 'ऋतु का पहला फूल' कविता संग्रह पढ़े। समकालीन कविता और समकालीनता के संदर्भ में समझ और अधिक गहरी हुई। कवि की काव्य दृष्टि और स्थापनाएँ समझी और समकालीन कविता में इनके मूल्यांकन की चाह मन में बनी। इस चाह ने मुझे शोध के लिए प्रेरित किया, तदनन्तर सुधियों से चर्चा की। की। डॉ. हेतु भारद्वाज, डॉ. मुरलिया शर्मा, डॉ. मीता शर्मा, एवं डॉ, सतवीर सिंह यादव से इस विषय पर गहन विमर्श करने के उपरान्त यह विचार बना कि विजेन्द्र की कविताओं में समकालीन बोध विषय पर अध्ययन किया जाना चाहिए।

मैं यह स्पष्ट करना चाहूँगा कि, यह शोध– कार्य समकालीन कविता के संदर्भ में विजेन्द्र की कविताओं के अध्ययन तक ही सीमित है, पर इस विषय की भावभूमि को आत्मसात करने के लिये मैंने विजेन्द्र की कविताओं के अतिरिक्त उनके गद्य, आलोचना ग्रंथ और डायरी के साथ – साथ 'कृति ओर' के कुछ अंकों का भी अध्ययन किया। यह अध्ययन इसलिए आवश्यक था, क्योंकि मेरा उद्देश्य कविता में उस काव्य दृष्टि के सत्य से साक्षात्कार करना था, जो इस शोध के लिए बुनियादी तौर पर जरूरी था। जिसके जानने और समझने के बिना शोध पूरा नहीं हो सकता था। इसे जानने के उपरांत ही हम यह स्पष्ट करने में समर्थ हो सकते थे, कि विजेन्द्र की कविता समकालीन मूल्यों की कसौटी पर कितनी खरी हैं? उनकी समकालीनता को लेकर क्या दृष्टि है? उनकी नयी स्थापनाएँ क्या हैं? एक कवि के रूप में वे कितने जिम्मेदार है? अतः इन सबका अध्ययन, वर्णन एवं विवेचन ही इस शोध का मुख्य आधार है। उक्त शोध कार्य विजेन्द्र के काव्य में इन सभी प्रश्नों की जिज्ञासा को निरूपित करने का मेरा विनम्र प्रयास है।

इस विषय को मैंने सात अध्यायों में विभाजित किया है, जिसमें उपसंहार भी सम्मिलित है। शोधकार्य के अंत में जिन पुस्तकों, संदर्भ ग्रंथों, पत्रिकाओं, शब्द कोशों और वेब मैगजीनों की सहायता ली गई है, उन्हें संदर्भ ग्रंथ सूची में सूचीबद्ध किया गया है।

प्रथम अध्याय, समकालीनता की अवधारणा से संबंधित है, इसमें समकालीनता के अर्थ एवं स्वरूप की चर्चा के साथ – साथ समकालीन कविता की संवेदना और पहचान के बिन्दुओं का विवेचन भी है। यह इसलिए है कि जिससे शोध कार्य की क्रियान्विति समकालीनता की परिधि में ही हो।

द्वितीय अध्याय में, हिन्दी की समकालीन कविता के अतीत और वर्तमान का विवेचन एवं विश्लेषण है। इसमें पचास के दशक से लेकर अद्यतन समकालीन कविता की प्रेरक परिस्थिति, प्रकृति और परिणिति का विवेचन है। इसके अतिरिक्त हिन्दी के अन्य समकालीन कवियों के कृतित्त्व और विजेन्द्र के काव्य में निहित समकालीनता का संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

तृतीय अध्याय में कवि विजेन्द्र के व्यक्तित्व और कृतित्व का संक्षिप्त परिचय दिया गया है, ताकि कवि के काव्य संसार और समर्थ व्यक्तित्व की झलक मिल सके।

चतुर्थ अध्याय में विजेन्द्र की कविताओं में समकालीन बोध के विविध आयामों का अध्ययन किया गया है। इसके साथ ही इसमें उनकी काव्य दृष्टि और मान्यताओं का भी विवेचन है, जो उन्हें समकालीन बनाती है।

पंचम अध्याय में समकालीन काव्यबोध की दृष्टि से विजेन्द्र की लंबी कविताओं का महत्त्व निरूपित किया गया है। इसमें लंबी कविता के स्वरूप और संरचना, लंबी कविता के अनिवार्य तत्त्वों को विवेचित करते हुए कवि की लंबी कविता के वैशिष्ट्य, शिल्प और स्थापत्य का मूल्यांकन और महत्त्व रेखांकित किया गया है।

षष्ठम् अध्याय में, विजेन्द्र की कविता की भाषा, शिल्प एवं काव्य रूपों का समकालीनता की दृष्टि से अध्ययन एवं मूल्यांकन किया गया है। जिसमें शब्द सामर्थ्य, शब्द सौन्दर्य, शब्द की अर्थव्याप्ति, और काव्य रूपों की विविधता और समकालीनता का विशेष अध्ययन है।

सप्तम् अध्याय उपसंहार में, विजेन्द्र की समकालीन कविता को विशेष देन, कवि कर्म की गंभीरता एवं कवि का समकालीन कविता में स्थान निर्धारण पर गहनता से विचार किया गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची में इस शोध के आधार ग्रन्थों, संदर्भ ग्रन्थों, अंग्रेजी ग्रंथों, पत्रिकाओं, शब्दकोशों एवं इण्टरनेट पर उपलब्ध वेब मैगजीन और ब्लॉग आदि की सूची प्रस्तुत की गयी है।

विषय चयन से लेकर इस शोध के प्रस्तुतीकरण तक उत्साहवर्द्धक दिशा निर्देशन के लिये मैं अपनी सौम्य निर्देशक डॉ. (श्रीमती) मीता शर्मा का हृदय से ऋणी हूँ। मुझे सामग्री संकलन के

लिए स्वयं कवि विजेन्द्र, डॉ. रमाकांत शर्मा (संपादक 'कृति ओर'), अनेकानेक प्रकाशन संस्थानों एवं महाविद्यालय के पुस्तकालय से उपयुक्त सहायता मिली है, अतएव मैं इन सबके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। मेरे अनुज श्री सम्पूर्णानंद ने भी विश्वविद्यालयी कार्यों को आसान करने में अपना श्रम एवं समय दिया है। इस हेतु ये सभी आभार एवं धन्यवाद के अधिकारी हैं ।

मेरे पूज्य पिताजी स्व. श्री भैरूलाल जी शर्मा ने सदैव मुझे अध्ययन के लिए प्रेरित किया है। मेरे अध्ययन के प्रति निष्ठावान लगाव के वे ही एकमात्र प्रेरणास्रोत हैं। मेरी पूज्य माताजी श्रीमती इन्द्रा शर्मा के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित कर, मैं उनके ऋण से उऋण होना नहीं चाहता, उनकी कृपा, प्रेरणा और मार्गदर्शन मेरे जीवन पथ में आलोक भरें, यही मेरी आकांक्षा है। मेरे परिवार के सभी स्वजन एवं मेरी पत्नी श्रीमती मीनाक्षी गौतम के साथ पुत्र अर्पित एवं पुत्री आद्या मेरी प्रत्येक उपलब्धि की बेसब्री से प्रतीक्षा करते हैं। मेरे इस सर्जनात्मक अनुष्ठान में उनका भी मानसिक योगदान है। मैं इन सभी को आभार और धन्यवाद देकर इनके अधिकार क्षेत्र को सीमित नहीं करना चाहता, ये सभी इसी प्रकार अपनत्व बनाए रखें, यही मेरी कामना है।

अंत में, मैं यही कहना चाहूँगा, कि हिन्दी की समकालीन कविता में यदि मेरा शोध – प्रबंध किंचित योगदान देने में सफल रहा, तो एक जिज्ञासु विद्यार्थी का प्रयास सार्थक होगा। इस प्रबंध में जो कुछ श्लाघ्य है, वह गुरूजनों एवं स्वजनों की प्रीति – प्रतीति का पुण्य फल है, और जो कुछ गर्हणीय है, उसमें मेरी अज्ञता ही मेरी सहचरी है।

'त्वदीय वस्तु गोविन्द, तुभ्यमेव समर्पये'।

प्रस्तुतकर्ता

हरिहरानंद शर्मा

अनुक्रमणिका

विवरण		पृष्ठसंख्या
अध्याय – 1	**समकालीनता की अवधारणा**	**1–31**
	1.1 समकालीन शब्द का अर्थ	
	1.2 समकालीन कविता के संदर्भ में समकालीनता का अध्ययन	
	1.3 समकालीनता के सम्बन्ध में विद्वानों के मत	
	1.4 समकालीनता कविता के सम्बन्ध में विद्वानों के मत	
	1.5 समकालीनता का अन्य समानार्थी शब्दों से संबंध	
	1.6 समकालीन कविता की संवेदना और पहचान	
	1.7 निष्कर्ष	
अध्याय – 2	**हिन्दी की समकालीन कविता और विजेन्द्र**	**32–90**
	2.1 हिन्दी की समकालीन कविता का अतीत एवं वर्तमान	
	2.2 हिन्दी के प्रमुख समकालीन कवि	
	2.3 हिन्दी की समकालीन कविता और विजेन्द्र	
	2.4 निष्कर्ष	
अध्याय – 3	**कवि विजेन्द्र का व्यक्तित्व एवं कृतित्व**	**91–152**
	3.1 कवि विजेन्द्र का व्यक्तित्व	
	3.2 कवि विजेन्द्र का कृतित्व	
	3.2.1 कविता संग्रह	
	3.2.2 काव्य नाटक	
	3.2.3 डायरी	
	3.2.4 आलोचना ग्रन्थ	
	3.2.5 संपादन	
	3.3 सम्मान एवं पुरस्कार	
	3.4 निष्कर्ष	
अध्याय – 4	**विजेन्द्र की कविता में समकालीन बोध के आयाम**	**153–187**

अध्याय – 5 समकालीन काव्य बोध की दृष्टि से विजेन्द्र की लंबी कविताओं का महत्त्व **188–232**

5.1 लंबी कविता का स्वरूप एवं संरचना

5.2 लंबी कविता में निहित तत्व

5.3 विजेन्द्र की लंबी कविताओं का वैशिष्ट्य

5.4 समकालीनता की दृष्टि से विजेन्द्र की लंबी कविताओं में शिल्प संयोजन और स्थापत्य

5.5 निष्कर्ष

अध्याय – 6 विजेन्द्र की कविता में काव्य शिल्प तथा भाषा की समकालीनता **233–278**

6.1 विजेन्द्र की कविता की भाषा

6.2 मुहावरे और कहावतें

6.3 बिम्ब

6.4 प्रतीक

6.5 काव्य रूप

6.6 छंद विधान

6.7 विजेन्द्र की कविता में शैली वैविध्य

6.8 अलंकार

अध्याय – 7 उपसंहार **279–291**

विजेन्द्र की हिन्दी समकालीन कविता को देन

संदर्भ ग्रन्थ सूची **292–297**

1. आधार ग्रंथ
2. सहायक ग्रंथ
3. पत्रिकाएँ
4. वेब पत्रिकाएँ एवं ब्लॉग
5. शब्दकोश

अध्याय – 1

समकालीनता की अवधारणा

भूमिका

1.1. समकालीन शब्द का अर्थ

1.2. समकालीन कविता के संदर्भ में समकालीनता का अध्ययन

1.3. समकालीनता के संदर्भ में विद्वानों के मत

1.4. समकालीन कविता के संदर्भ में विद्वानों के मत

1.5. समकालीनता का अन्य समानार्थी शब्दों से सम्बन्ध

1.5.1. समकालीनता और समसामयिकता

1.5.2. समकालीनता और तात्कालिकता

1.5.3. समकालीनता और नवीनता

1.5.4. समकालीनता और आधुनिकता

1.6. समकालीन कविता की संवेदना और पहचान

1.6.1. बाजारवाद एवं उपभोक्तावादी संस्कृति

1.6.2. मूल्य संक्रमण

1.6.3. मूल्य संरक्षण

1.6.4. लोक से जुडाव

1.6.5. प्रेम

1.6.6. स्त्री विमर्श

1.6.7. श्रम की महत्ता

1.6.8. प्रश्नाकुलता

1.7. निष्कर्ष

अध्याय – 1
समकालीनता की अवधारणा

भूमिका

साहित्य का मानव से घनिष्ठ सम्बन्ध है। साहित्य में मानव जीवन और उसके परिवेश को अनेक संवेदनात्मक विधाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है। कविता इन्हीं संवेदनात्मक विधाओं में से एक है, जिसमें समयानुरूप अनेक बदलाव हुए और इन बदलावों को इस विधा ने समय – समय पर साहित्य में अंकित किया है। आधुनिक काल में प्रयोगवाद के बाद कविता में नये आयामों की तलाश आरंभ हुई। इन्हीं आयामों में एक समकालीन कविता है, जो 1960 के दशक में हिन्दी साहित्य में जनवादी मूल्यों और जनाकांक्षी प्रश्नों के साथ आयी। आजादी के बाद लोकतांत्रिक मूल्यों में आई गिरावट के कारण आम जन के मन में संदेह उत्पन्न हुआ। जनसामान्य वर्ग की शासन के प्रति जो आशा आकांक्षाएँ थी वे बिखरने लगी। आम जन दुख, नैराश्य, अवसाद और पीड़ित होकर शासन से अनेक सवाल करने लगा। इन्हीं सवालों को लेकर समकालीन कविता का स्वरूप निर्मित होता है।

1.1. समकालीन शब्द का अर्थ

समकालीन शब्द अंग्रेजी के 'कन्टेम्परेरी' का हिन्दी पर्याय है। 'काल' और 'इन' प्रत्यय से बने कालीन शब्द में सम् उपसर्ग जोड़ने से इसका निर्माण हुआ है। काल का अर्थ है – समय। इस प्रकार समकालीन का अर्थ हुआ 'एक समय में होने वाला या रहने वाला'।
नालंदा विशाल शब्द सागर में समकालीन के सम्बन्ध में लिखा है– 'जो एक ही समय में हुए हो।'[1] मानक हिन्दी कोश में समकालीन का अर्थ है – 'जो उसी काल या समय में जीवित अथवा वर्तमान रहा हो, जिसमें कुछ और विशिष्ट लोग भी रहे हैं। एक ही समय में रहने वाले।'[2] हिन्दी शब्द सागर में समकालीन का अर्थ – 'जो (दो या कई) एक ही समय में हो। एक ही समय में होने वाले।'[3] डॉ. हुकुमचंद राजपाल समकालीन शब्द के संबंध में लिखते हैं– 'समकालीन का संबंध काल विशेष के वैयक्तिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक स्थिति के वर्तमान से रहा है इसे इसलिए कन्टेम्परेरी के पर्याय रूप में समझा जाता है।'[4] इस प्रकार समकालीन शब्द का कोशगत अर्थ एक ही समय का, अपने समय का, या समवयस्क होता है।

1.2. समकालीन कविता के संदर्भ में समकालीनता का अध्ययन

समकालीन शब्द विशेषण और समकालीनता शब्द भाववाचक संज्ञा के रूप में अभिव्यंजित है। समकालीन का अर्थ है जो एक समय में हो। विशेषण के रूप मे समकालीन शब्द एक विशेष्य की माँग करता है और यह विशेष्य राजनीति, धर्म, साहित्य, समाज कुछ भी हो सकता है। जब हम कहते हैं, कि कबीर और तुलसी समकालीन साहित्यकार हैं, तो काल दोनों के लिए एक समान भूमि उपलब्ध कराता है और यह समान भूमि दोनों साहित्यकारों का एक आधार बनता है। यह आधार दोनों की पहचान के कुछ सूत्र उपलब्ध कराता है। कुछ सूत्र एक जैसे होते हैं, और कुछ भिन्न होते है यह भिन्नता ही दोनों को देखने की एक विशिष्ट दृष्टि प्रदान करती है, साथ ही एक ऐसे समीक्षा कर्म की माँग करती है जो विशिष्ट दायित्व बोध से संपन्न हो। यही माँग समकालीनता की तलाश के रूप में हमारे सामने आती है। यह तलाश अपने समय और उसकी चुनौतियों की उस समझ से ही संभव है जिसे हमारे समय में शामिल और और चीजों की तरह हमारा साहित्य भी निर्मित करता है।

समकालीन और समकालीनता जैसे शब्दों का प्रयोग एक दूसरे स्तर भी किया जा सकता है। जिस कवि ने अपनी कविता में अपने समकाल को जगह दी है, जिसने अपने समय को पहचाना है, उसकी चुनौतियों को स्वीकार किया है, अपने काल से कटकर रचना नहीं की है, अपने समय को, अपनी समकालीनता को धारण किया है, वह समकालीन कवि है। रीतिकाल की कविता असाधारण सरसता के बावजूद भी आज प्रासंगिक नहीं है, क्योंकि वह अपने समय से कटी हुई कविता है, अपने ही समकालीन नहीं है।

लेकिन आज जब हम समकालीन कविता की बात करते हैं, तो हमारा मतलब एक विशेष कालखंड की कविता से होता है, जो सन् 1960 या 1970 के बाद लिखी गई। यहाँ पहुँचकर ऐसा लगता है, जैसे समकालीन और समकालीनता शब्दों का दायरा सीमित है। यह संभव है, परंतु ऐसा नहीं है कि कालखंड की संज्ञा होकर समकालीन शब्द अपने अर्थ से विलग हो गया हो, अथवा मात्र इस काल विशेष में लिखी हुई रचना ही समकालीन रचना हो गई हो। एतदर्थ समकालीन कविता के विशिष्ट संदर्भो को भली प्रकार से जानना जरूरी हो जाता है।

1. क्या समकालीनता 1960–70 के आसपास के कालखंड में रची गई कविताओं से संबंधित है। जो एक कालखंड तक सीमित है? अथवा उस कविता का नाम है जो आज भी अविरल है, अद्यतन है, कालजयी है।
2. क्या समकालीनता को कंटेम्परेनियस या कंटेम्परेनिटी शब्द से समझा जाए?

3. क्या समकालीनता का अभिप्राय केवल वर्तमान की समझ तो नहीं है?
4. क्या समकालीनता किसी विषय या वस्तु को 'वह क्या है' इस बोध को जानना है अथवा 'वह क्या नहीं है' (अन्य विषय और वस्तुओं से इसका क्या संबंध है?) इस पर भी विचार करना है?

समकालीन कविता की समकालीनता को केवल एक समय में होने वाली कविता के भाव या कंटेम्परेनियस शब्द के रूप में नहीं समझा जा सकता। वस्तुतः यह एक विचारधारा है, जो अवधारणा का रूप धारण करती है कविता को विस्तार देती है। इस अवधारणाा को व्यक्त करने के लिए विद्वानों ने इसे पारिभाषिक रूप से बाँधने का प्रयास भी किया है।

1.3. समकालीनता के सम्बन्ध में विद्वानों का मत

विश्वम्भर नाथ उपाध्याय के अनुसार – 'समकालीनता अपने काल की समस्याओं और चुनौतियों का मुकाबला करना है। समस्याओं और चुनौतियों में भी केन्द्रीय महत्व रखने वाली समस्याओं की समझ से समकालीनता उत्पन्न होती है।'[5] समकालीनता की इस अवधारणा से केवल यह स्पष्ट होता है कि कोई रचना समय की दृष्टि से समकालीन होने के बावजूद (60–70 के आसपास की) संभव है कि प्रवृति की दृष्टि से समकालीन से रहित हो।

डॉ. **परमानंद श्रीवास्तव** के अनुसार –'गहरे ऐतिहासिक मोहभंग के परिणामस्वरूप आज की समकालीनता एक सर्वथा नई, मूल्यवत्ता के संदर्भ पा सकी है, जो हमें मानव अस्तित्व की कठोर गतिविधियों या कर्म या राजनीति में हिस्सा लेने को बाध्य करती है।................ समकालीनता सिर्फ मुहावरा नहीं है, बल्कि आज की संश्लिष्ट वास्तविकता में प्रवेश करने का संकल्प या प्रतिबद्ध जीवन दृष्टि है। तीखे मोहभंग की परिणतिस्वरूप सौन्दर्याभिरूचि से स्थिर की हुई भाषा समकालीन मानव स्थिति के लिए व्यर्थ या अनुपयोगी सिद्ध हो गई थी।'[6] ऐसे में समकालीनता उस प्रतिबद्धता का नाम हो जाती है, जो जीवन को एक दृष्टि प्रदान करती है। वह केवल युगबोध का जीवन दर्शन नहीं कराती है, वरन् विश्वबोध को दृष्टि देती है।

विजेन्द्र के अनुसार – 'समकालीनता तारीख ओर दिन से नहीं बल्कि विश्व दृष्टिकोण से पहचानी जाती है।'[7]

रोहिताश्व का इस संबंध में कथन है –'समकालीन भावना के अंतर्गत ही वैश्विक चिंतन सृजन का दाय, हमारा दाय बन जाता है साम्राज्यवादी, पूँजीवादी, या सामंतवादी व्यवस्थाओं से तीसरी दुनिया के देशों वियतनाम, कोरिया, क्यूबा, निकारगुआ, अलसल्वाडोर, और उपनिवेशी अफ्रिकन देशों के मानवीय हकों का संघर्ष हमारा संघर्ष बन जाता है।'[8]

मैनेजर पांडेय के अनुसार – 'केवल नया ही समकालीन नहीं होता, बल्कि जो सार्थक है वही समकालीन है, चाहे वह पुराना ही क्यों न हो।'[9] इस तरह समकालीनता केवल काल विशेष से संबद्ध नहीं होती अथवा उसका दायरा सीमित है ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है।

बलदेव वंशी के अनुसार – 'समकालीनता वह चेतना है, जो सामयिक संदर्भों, दबावों और तकाजों के तहत विशिष्ट रूप धारण करती है।'[10]

समकालीनता के संदर्भ में **कल्याणचंद्र** का कहना है कि – 'वास्तव में समकालीनता का सीधा आशय है, अपने समय के प्रति ईमानदार होना। अपने समय के प्रति व्यक्ति तभी ईमानदार होता है, जब वह संकटों की परवाह किये बिना समय के क्रूर यथार्थ से अभेद संबंध स्थापित कर लेता है, और उस निर्मम यथार्थ की ज्वाला में जलता अद्‌भुत साहस के साथ समय को चुनौती भी देता है।'[11]

इस प्रकार समकालीनता अपने काल की समस्याओं और चुनौतियों का मुकाबला करना है। समस्याओं और चुनौतियों में भी केन्द्रीय महत्व रखने वाली समस्याओं की समझ से समकालीनता उत्पन्न होती है।

विश्वंभर नाथ उपाध्याय के अनुसार समकालीनता की अनिवार्य शर्तो में स्वचेतना, संचेतना, या संवेदनशीलता है। उनके अनुसार –'सचेतन, समकालीन व्यक्ति का कालबोध, देशबोध, व्यक्ति ओर समूहबोध संग्रथित होता है। वह काल के किसी बिंदु को निरपेक्ष और अलग– अलग नहीं मानता। वर्तमान में भूत और भविष्य की स्थिति को वह समझता है, भूत में वर्तमान और भविष्य को तथा भविष्य में भूत और वर्तमान काल के प्रवाह को। अतएव समकालीनता का ज्ञान काल की निरंतरता या प्रवाह और परिणतियों की संभावनाओ का ज्ञान है।'[12]

ऐसे में यह कहा जा सकता है कि समकालीन कविता में अपने समय की पहचान है वह कल्पना के वायवीय आवर्तो में चक्कर नहीं काटती। 'समकालीन कविता में काल गत्यात्मक रूप में ठहरे हुए है। ठहरे हुए क्षण अथवा क्षणांश के रूप में नहीं।'[13]किंतु समकालीनता के

इस विस्तृत दृष्टिकोण के बावजूद हमें यह बात विशेष रूप से ध्यान रखनी है, कि वह एक विशेष कालखंड से संबंध रखती है, और उसे समझने का भी परिप्रेक्ष्य वही है, साथ ही उसके प्रवहमान होने के चलते उसकी समकालीनता की अवधारणापरक संभावना भी निःशेष नहीं हुई है।

समकालीनता की इन विशेषताओं को केन्द्र में रखते हुए **समकालीन कविता को निम्न परिभाषाओं** में व्यक्त किया जा सकता है।

1.4. समकालीन कविता के संदर्भ में विद्वानों के मत

विश्वंभरनाथ उपाध्याय के अनुसार – 'समकालीन कविता में जो हो रहा है (बिकमिंग) का सीधा खुलासा है। इसमें वर्तमान काल का बोध हो सकता है, क्योंकि उसमें जीते, संघर्ष करते, बौखलाते, तड़पते गरजते तथा ठोकर खाकर सोचते हुए वास्तविक आदमी का परिदृश्य है।'[14]

रोहिताश्व के अनुसार – 'समकालीन कविता वैविध्यमान जीवन और भावसमुच्चय की कविता है।'[15]

नरेन्द्र मोहन के अनुसार– 'समकालीन कविता का अर्थ किसी कालखंड या दौर में व्याप्त स्थितियों और समस्याओं का चित्रण, निरूपण या बयान भर नहीं है। बल्कि उनको ऐतिहासिक अर्थ में समझना, उनके मूल स्रोत तक पहुँचना और निर्णय ले सकने का विवेक अर्जित करना है।'[16]

डॉ. वी. सत्यवती कहती है – 'समकालीन कविता आम आदमी के जीवन संघर्षो, विकृतियों, विसंगतियों, विषमताओं और विद्रूपताओं की खुली पहचान है।'[17]

इस प्रकार समकालीन कविता आधुनिक हिन्दी कविता का एक नया रूप है, जिसमें सामाजिक चेतना, सामाजिक परिवर्तन, विरोध, आक्रामकता, और मानवीय सरोकार अपनी स्थितियों मानवीय दशाओं का विश्लेषण और सर्जनात्मक वैचारिक तनाव का सतत् विद्यमान है। यह कविता आज की असल जिन्दगी से साक्षात्कार कराती है।

1.5. समकालीनता का अन्य समानार्थी शब्दों से संबंध

समकालीनता क्या है? यह बोध केवल 'क्या है' पर विचार करने से ही नहीं बनता है 'वह क्या नहीं है' इस दृष्टि से भी समकालीनता का अध्ययन करना अपेक्षित एवं आवश्यक है।

समकालीनता के समसामयिकता, तात्कालिकता, नवीनता, आधुनिकता से क्या संबंध है यह जानना सम्यक् रूप से समकालीनता को और अधिक स्पष्ट करने के लिए महत्वपूर्ण हो जाता है।

1.5.1. समकालीनता और समसामयिकता

समकालीनता और समसामयिकता ये दोनों शब्द सामान्य अर्थ की दृष्टि से एक दूसरे के पर्याय समझे जाते है। साहित्य में दोनों का प्रयोग एक दूसरे के पूरक अर्थ मे भी लिया जाता रहा है। **कलयति इति कालः** के अनुसार जो कलन करे, वह काल है। कलन का अर्थ है गिनना, विध्वंस करना, जोडना, और खंड – खंड करना। ये अर्थ संदर्भ भारतीय दृष्टि से परस्पर विरोधी नहीं पूरक है, यथा समग्र से जुड़ने के लिए अपने को खंड – खंड तोड़ना पडेगा। भारतीय दृष्टि तो यहाँ तक कहती है, कि काल निरवयव होता है, काल का भूत, भविष्य और वर्तमान का विभाजन तो सुविधा के लिए है। इसी प्रकार समय की व्युत्पत्ति सम्यक् गति से चलने वाला इस अर्थ से मानी जाती है। इसे विधि, नियम, प्रचलन जैसे बहुविध अर्थो में प्रयोग किया जाता है। इस तरह काल और समय दोनों ही शब्दों के अनेक अर्थ हैं। साहित्य में इन शब्दों के प्रासंगिक अर्थ लिए जाते रहे हैं, और इन शब्दों को लेकर विचार चिंतन की प्रक्रिया भी लंबे समय से चलती आ रही है। हमें इन सब में न जाकर यहाँ यह कहना है, कि वर्तमान में समसामयिक की तुलना में समकालीन शब्द अधिक प्रचलित है और आलोचकों ने 'प्रायः समकालीनता को एक विशिष्ट काव्य प्रवृति के रूप में पहचानने की कोशिश की है प्रायः उसे भूत, वर्तमान, भविष्य तीनों से जोडकर देखा है।'[18] जबकि समसामयिकता को प्रायः तात्कालिकता के रूप में लिया गया है। डॉ. नरेन्द्र मोहन काल को सर्वव्यापक मानते है और कहते हैं – 'समकालीन की जमीन वर्तमान है, आज है, आज का परिदृश्य और घटनाएँ हैं। यह आज न बीते हुए कल से कटा हुआ है, न आने वाले कल से।'[19] ऐसे में वे समसामयिक को केवल वर्तमान से जोड़कर रखते है साथ ही यह भी संकेत करते हैं, कि इसका यह अर्थ नहीं, कि समकालीनता के पर्याय के रूप में समसामयिकता का प्रयोग असंगत है बल्कि यह है कि लोक व्यवहार में समय शब्द के अधिक प्रयोग और काल शब्द के कम प्रयोग से काल को स्वतः एक गंभीरता मिल गई है जिसका लाभ समकालीन शब्द को मिला है। शब्दों के अर्थ को लोक में उनका प्रयोग बहुत कुछ संचालित करता है इसे भुलाया नहीं जा सकता। समय शब्द अपनी अर्थ बहुलता और अर्थ व्याप्ति के बावजूद हमारे दैनिक प्रयोग में काल की अपेक्षा अधिक है, इसलिए सामयिक शब्द एक तरह से तात्कालिकता का बोध कराता है। समकालीनता की अवधारणा में

सामयिकता या तात्कालिकता भी अन्तर्निहित है, आधारतत्व के रूप में शामिल है फर्क केवल इतना सा है कि समकालीनता का अर्थ तात्कालिकता मात्र नहीं है।

1.5.2. समकालीनता और तात्कालिकता

यह सही है कि अपने युग में हर कवि समकालीन होता है लेकिन अपने काल को जीने और अभिव्यक्त करने का अर्थ समकालीन होना नहीं होता। वह तात्कालिकता होती है। प्राचीन कवियों ने अपने युग को जैसा देखा, समझा उस पर तदनुरूप प्रतिक्रिया दी। उनके पास तात्कालिकता बोध के आधार पर बेहतर समाज, बेहतर मनुष्य एवं बेहतर भविष्य रचने का कोई दर्शन नहीं था। इन्हीं अर्थो में वे समकालीन न होकर तात्कालिक थे। तात्कालिकता क्षणिक हुआ करती है। तत्कालीनता पुरानी होकर अतीत बन जाया करती है। इसका कोई निश्चित भविष्य नहीं होता, यह मूल्यहीन हुआ करती है, लेकिन यही तात्कालिकता जब मूल्य से जुड़ती है तो समकालीन अवधारणा का रूप धारण ले लेती है।

1.5.3. समकालीनता और नवीनता

नवीनता भी साहित्यिक मूल्य के रूप में स्थापित है। साहित्य के संदर्भ में नवीनता अपने सामान्य अर्थ में एक तरह से मौलिकता का वाचक है, मौलिक होना, नवीन होना अपने आप में किसी भी रचना या रचनाकार के मूल्यवान होने की एक शर्त हो सकती है। इस नवीनता को सभी महत्वपूर्ण रचनाओं, रचनाकारों में, चाहे वे किसी युग के हों, किसी न किसी रूप में पाया, परखा जा सकता है। यहाँ यह कहना ज्यादा अर्थसंगत होगा कि रचनाकार अपने समय से जुड़ा होगा तो वह किसी न किसी अर्थ में नया जरूर होगा, क्योंकि समय ठहरा नहीं होता और जो गतिशील है वह निरंतर नवीन रहता ही है। इस प्रकार की नवीनता समकालीनता की पहचान हो सकती है, परंतु केवल अलग हटकर दिखना अथवा जानबूझकर पुराने से कुछ नया बना देने की प्रवृति समकालीन नहीं है। मैनेजर पांडेय का कथन –'केवल नया ही समकालीन नहीं होता बल्कि जो सार्थक है वही समकालीन है, चाहे वह पुराना ही क्यों न हो।'[20]

1.5.4. समकालीनता और आधुनिकता

आधुनिकता हिन्दी साहित्य के समीक्षा शास्त्र में प्रचलित लोकप्रिय शब्द है। भारतेन्दु के आगमन से हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक नवीन दृष्टिकोण उत्पन्न हुआ, फलस्वरूप विषय, भाव, भाषा और विधाओं के क्षेत्र यह परिवर्तन साहित्य में आधुनिक काल के नाम से

जाना गया। आरंभ में आधुनिकता का तात्पर्य परंपरा के विरोध, जड़ मूल्यों के नकार, साहित्य में अस्पष्टता, और कभी पश्चिम की शैली के अनुकरण जैसे अर्थो में लिया जाता रहा, परंतु आधुनिकता एक मूल्य है। ये मूल्य समकालीन भी हो सकते है, पारंपरिक और अतीत के भी। जब कभी अतीत का कोई मूल्य आज के किसी मूल्य से भी अधिक आवश्यक हो जाता है तब आधुनिकता एक विवेक हो सकती है जो उसका सही मूल्यांकन कर सके। यदि आधुनिकता को कला और साहित्य के संदर्भ से समझे तो कहा जा सकता है कि आधुनिकता विशुद्ध भौतिक संदर्भ में हमारे जीवन में वह बदलाव है, जो विज्ञान और औद्योगिकीकरण से आया है। इस मायने में आधुनिकता बदलाव है। इसके बावजूद भी इस क्रम में पर्याप्त मतभेद है। कोई इसे देश काल सापेक्ष मानते हुए परिस्थिति की उपज स्वीकार करते हैं। वे मानते हैं कि परिस्थिति के परिवर्तन के साथ ही आधुनिकता के विचार भी बदल जाते हैं, पर कोई इसे शाश्वत एवं चिरंतन तत्त्व के रूप में स्वीकार करते हैं। उनका मानना है कि देशकाल के व्यतिरेक इसमें कोई अंतर उपस्थित नहीं करते। अतः आधुनिकता अपरिवर्तनशील काव्यमूल्य है। दूसरी तरफ कुछ विद्वान आधुनिकता को मूल्य नहीं मानकर एक परिप्रेक्ष्य स्वीकार करते हैं, जिसके आधार पर मूल्य स्थिर किये जाते है। ऐसे में हम कह सकते हैं, कि आधुनिकता की अवधारणा का फलक व्यापक है। आधुनिकता और समकालीनता के संबध को हम मूर्त रूप से हिंदी साहित्य के इतिहास के काल विभाजन को आधार बनाकर देख सकते हैं। यह तथ्य सर्वविदित है कि हिन्दी साहित्य के विशेष कालखंड को आधुनिक काल की संज्ञा दी गई है, और समकालीन कहा जाने वाला काव्यांदोलन भी उसी आधुनिक काल का एक हिस्सा है। यह भी तथ्य है कि आधुनिक और समकालीन ये दोनों शब्द साहित्येतिहास के संदर्भ में प्रथमतः कालसूचक ही है, प्रवृत्तिसूचक नहीं है और एक प्रवृत्ति के रूप में आधुनिकता और समकालीनता की पहचान पर्याप्त प्रयत्नपूर्वक की गई है। हमारे यहाँ आधुनिकता को भौतिकवादी दृष्टि के उन्मेष के रूप में वैज्ञानिक प्रगति के चलते आधुनिक विकास की प्रक्रिया और चिंतन प्रक्रिया में आए बदलाव के रूप में पहचाना गया। हिंदी में साहित्य भाषा ब्रज के स्थान पर खडी बोली का आना, पद्य के स्थान पर गद्य का आना, आधुनिकता के आरंभ के रूप में देखा जा सकता है, बाद में द्विवेदी युग, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता इत्यादि में हम आधुनिकता का विस्तार देख सकते है, और यह कह सकते है कि समकालीन कहा जाने वाला साहित्य इसी का अगला पड़ाव है। संभवतः इसी अर्थ में, इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है, कि 'समकालीनता आधुनिकता से प्राप्त संस्कार है।'[21]

यहाँ यह भी स्पष्ट करना उचित होगा कि समकालीनता ही वह तत्त्व है, जो रचना की संवेदना में संतुलन का निर्माण करता है। यह समकालीनता ही है, जो आधुनिकता को नये से नये संदर्भो हलचलों और आंदोलनों से गुँजाती है। जो उसे आधुनिकतावाद में परिणत होने से बचाती है। मूल्य के साथ साथ उसे 'प्रक्रिया' में ढालती है। समकालीन स्थितियाँ, घटनाएँ, समस्याएँ, और संदर्भ आधुनिकता को निश्चय ही आकार देते है, हाड़ मांस प्रदान करते हैं।'[22] इस तरह समकालीनता के बोध को भारतेन्दु काल से प्रकाश में आए आधुनिकता बोध के वर्तमान के रूप में समझ सकते है। अतः आधुनिकता अपने आप में कोई मूल्य नहीं है। मनुष्य ने अनुभवों द्वारा जिन महनीय मूल्यों को उपलब्ध किया है, उन्हें नये संदर्भों में देखने की दृष्टि आधुनिकता है। यह एक गतिशील प्रक्रिया है। समकालीनता इसका वर्तमान चेहरा है।

1.6. समकालीन कविता की संवेदना और पहचान

समकालीन कविता में समकालीनता की पहचान का आधार क्या और कैसा हो? यह प्रश्न भी कम गंभीर नहीं है, क्योंकि जब कवि कविता करने के लिए संवेदित होता है, तो उसकी संवेदना अपने निजी स्तर पर भिन्न – भिन्न होती है। यह भिन्नता अभिव्यक्ति के स्तर पर ही भिन्न नहीं होती, वरन् अनुभूति के स्तर पर भी भिन्न होती है। फिर भी सूक्ष्म दृष्टि से देखे तो यह महसूस होता है, कि समकालीन कवि को संवेदित करने वाले कुछ मसले, मुद्दे ऐसे हैं, जिन पर प्रायः इन कवियों ने अपनी प्रतिक्रिया दी है।

1.6.1. बाजारवाद और उपभोक्तावादी संस्कृति

आज का कवि वर्तमान समय को विसंगत, कठिन और क्रूर परिभाषित करता है, जिसका कारण बाजारवाद और उपभोक्तावादी संस्कृति है। इस संस्कृति ने उपभोगपरक प्रवृत्ति को जन्म दिया है, और जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं में इज़ाफा किया है। ये आवश्यकताएँ मनोवैज्ञानिक दबाव और विवशता के तहत आम आदमी के जीवन में न सिर्फ शामिल हो रही है, वरन् उसे तर्कशक्ति से परे हटाकर अपने छद्म रूप में फँसा रही है। समकालीन कविता इस छद्म रूप के प्रतिरोध में खड़ी, समय के इस क्रूर और कठोर रूप से उसकी पहचान करवा रही है, और मनुष्य के पक्ष में खड़ी, उसे प्रत्युत्तर भी दे रही है। आज का बाज़ारवाद, मल्टीनेशनल कम्पनी, मॉल कल्चर, पूँजीवाद, तकनीकि क्रांति के दबाव को लादे हुए है। ऐसे में कविता की जिद है, कि यदि वह इस दौर को बदल नहीं सकती, तो कम से कम यथार्थ से जूझ रहे समाज को प्रत्युत्तर के रूप में कविता का हथियार तो दे सकती

है। यही कारण है, कि आज समकालीनता का अर्थ पूँजी, बाजार, स्वार्थ, और अमानवीयता के विरूद्ध जाग्रत होना है।'[23] पूँजीवाद ने बाजारवाद को अत्यधिक विस्तार दिया है, जिसके कृत्रिम और लुभावने ऑफर्स के वस्तुवादी समीकरण के चलते हमारी संस्कृति के अवमूल्यन का खतरा बढ़ गया है। इस अवमूल्यन के लिए हमारे सूचना माध्यम भी जिम्मेदार हैं 'बाजारवाद सिर्फ उपभोक्तावाद का खेल नहीं है, बल्कि पूँजीवादी राष्ट्रों का एक संगठित षड्यंत्र है, जो हमें गुलामी की ओर ले जाने की मुहिम है। इस साजिश का पर्दाफाश करना ही आज समकालीन कविता का मुख्य ऐजेंडा है।'[24] आज आर्थिक उदारीकरण के नाम पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने हमारी संवेदना पर हमला किया है। 'वैश्वीकरण के अर्थतंत्र ने सौंदर्यशास्त्र को अपने कब्जे में ले लिया है, और बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ ही बता रही है कि क्या सुंदर है। उनके कब्जे में विकसित तकनीक भी है, जिसके बल पर दुनिया को डिजिटल संस्कृति से घेरा जा रहा है।'[25] समकालीन कविता इस मानव विरोधी मुहिम में खड़े होकर इस छलनामय बाजार की पहचान कराती है–

'जिस तरह दिखता है वह उस तरह नहीं होता,
'यह बाजार का एक ठोस आध्यात्मिक आधार है
इसलिए चमत्कारों का उत्पादन सबसे बड़ा व्यापार है।'[26]

आज की दुनिया में एक नये तरह की दुहरी नीति दिखाई पड़ती है, एक तरफ ईस्ट इंडिया कंपनी अपना व्यापार बढ़ाने की गरज से जब भारत को उपनिवेश बना लेती है, तो राष्ट्रवादी महकमों में इसे राजनीतिक और गुलामी की संज्ञा दी जाती है, लेकिन इसी कंपनी के आधुनिक अवतार जब आजाद देश के समूचे विकास को अपने अन्तर्राष्ट्रीय ब्रांडों से मोहताज बना डालने की गरज से उदारीकरण को हमारे गले से उतारते हैं, तो हम इस प्रक्रिया को आर्थिक आजादी कहकर पुकारते हैं। जब विशाल दैत्याकार बहुराष्ट्रीय कंपनियों को दुनिया की अविकसित परंतु संभावनाशील मंडियों में घुसने के एकतरफा अवसर प्रदान किए जाते हैं, तो इसे आर्थिक उदारीकरण कहा जाता है लेकिन एक गरीब विकासशील देश अपना सस्ता माल लेकर यूरोप और अमेरिका के बाजार में उतरने की कोशिश करता है तो इसी प्रक्रिया का नाम डंपिग हो जाता है, जिसके विरूद्ध समूचा अमेरिका या यूरोप का ई.ई.सी. इकट्ठा होकर हाहाकार मचाने या मोर्चाबंदी करने लगता है।

राजतंत्र, विज्ञान और तकनीकि ने कविता को बहुत प्रभावित किया है, और इसके मूलतत्त्व को छीनने का प्रयास किया है। भयावह परिस्थितियों से निपटना कविता के लिए एक

चुनौती है। इस परिदृश्य में जब विकृत पूँजीवाद के प्रभाव से राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और प्रशासनिक संस्थाओं सहित मीडिया में भी समर्पण, समझौते, और पस्ती का भाव है, तब कविता दोहरा काम कर रही है। एक तो वह हमारे समय की क्रूरताओं, स्खलनों और चालाकियों को अचूक तौर पर पहचान कर इंगित कर रही है दूसरे, तमाम निराशाजनक स्थितियों को बताते हुए भी वह पस्त नहीं हुई है। जब सब तरफ से नैतिक साहस और नैतिक वाक्य गायब हो रहे हैं, तो कविता उन्हे जगह दे रही है, संभावना को उम्मीदों में तब्दील कर रही है, अल्पसंख्यक विचार को बचाकर रख रही है।

सूचना तंत्र में विज्ञापनों की भरमार है जो विज्ञापन दिखाए जा रहे हैं, वे प्रायोजित हैं। विज्ञापन ही हमारी दैनिक जरूरतों को तय करता दिखाई पड़ रहा है। परिवार का मतलब उपभोक्ता पिता, उपभोक्ता पत्नी, एक उपभोक्ता बेटी और एक उपभोक्ता बेटा हो गया है। बाजार अंतर्राष्ट्रीय ताकतों के बूते ही चल रहा है। विचारधारा या विचार हाशिए का होकर रह गया है। पूरा बाजार यह सिखाने में जुटा है, कि पश्चात्ताप, और प्रायश्चित्त जैसे शब्द अर्थहीन है। लोगों को विचार से चिढ़न होने लगी है, और उन्होंने विचार को बेदखल करने की ठान ली है। सूचना तंत्र यह सिखाने पर तुला है कि कुछ करने से पहले ठिठकना पिछड़ेपन की निशानी है। मनुष्य एक श्रेष्ठ मशीन है, और इसके अलाावा कुछ भी नहीं है। अंतरात्मा चेतना जैसी कोई चीज होती ही नहीं है। इस परिदृश्य को देखकर लीलाधर जगूड़ी बाजारवाद के इस विकृत मूल्य की ओर संकेत कर कहते है –

'जो है उसे बेचते जाओ
नया खरीदो का पाठ सिखाया जा रहा है
नया वाहन जरूरी वाहन बताया जा रहा है
जिसके लिए दिखाए गए है
कुछ अपारिवारिक स्त्रियों के विशिष्ट वक्ष
कोई नहीं बताता की धरती के कितने थन सूख गये।'[27]

यह हमारा मानसिक दिवालियापन का सूचक है, कि हमने इन सारी विकृतियों को अपना लिया है, और उत्तर आधुनिकता के लक्षण जो निरंकुश सभ्यता, सौन्दर्यहीनता और मूल्यहीनता हैं, को स्वीकृति देने लगे हैं। यहाँ गरीबी, भय, प्रेम जैसे शब्द संवेदना या सहृदयता के सूचक न होकर कौतूहल के विषय है। फिल्मों के रोते और डरे हुए बच्चे संवेदन के स्तर पर नहीं, वरन् त्रासद और विडंबनापरक स्तर पर आकृष्ट करते हैं। दुख को यहाँ उत्सवधर्मी बनाकर परोसा जा रहा है –

'फिल्मकार ने पूछा याद करो वह दृश्य,
कि जब दुश्मन ने घर में नर संहार किया,
दुख का भार उठाते बच्चे ने बतलाया कैसे
अत्याचारी ने हँसते हँसते वार किया।'[28]

इस विसंगति और अमानवीय माहौल के लिए परमानंद श्रीवास्तव लिखते है – 'हम कला के ऐसे समय में हैं, जो शोर से भरा है, मौन या चुप्पी की अपेक्षा रखता है।'[29] इस संस्कृति ने हमारे चिंतन पर प्रहार कर उसे विचलित करने का प्रयास किया है। उसके निशाने पर है हमारी संस्कृति, जिसे उसने खंडित और छिन्न – भिन्न करने का प्रयास किया है। बाजार संस्कृति की एक बडी साजिश समाज को जनतंत्र विहीन करना ही नहीं, आदमी के सौन्दर्यात्मक बोध को तर्क, मूल्य, और उच्चतर सांस्कृतिक विरासत से विच्छिन्न कर देना भी है। इसमें उपभोक्ता का कोई भविष्य नहीं होता, उसका वर्तमान होता है, यही कारण है कि मनुष्य का अन्तर्जगत् खोता जा रहा है, सिकुड़ता जा रहा है, निजता का ह्रास हो रहा है, लेकिन फिर भी हम इस हत्यारे को अपने घर में बसा रहे हैं, क्योंकि हम उसके कपटी और छद्म रूप को देख पाने में असमर्थ हो रहे हैं। जगूड़ी लिखते हैं –

'हत्यारा पहने हुए है सबसे महँगे कपड़े,
हत्यारे के सारे दाँत सोने के हैं पर आँते पैदायशी
हत्यारे के मुँह में जीभ चमड़े की मगर चम्मच चाँदी का है
वह आए और शब्द सन्नाटे में बदल जाए
वह बोले और भाषा जम जाए
हत्या हो समारोह हो, और विचार हो सिर्फ उसका ।'[30]

ऐसे में जब चारों ओर दोहरे और छद्म मुखौटो का संसार हो, समाज पर संकट के बादल मँडरा रहे हों, तो साहित्य का उत्तरदायित्व और बढ़ जाता है। जब संवेदना का भी निरंतर ह्रास हो रहा है, और सर्वत्र यह संस्कृति व्याप्त हो रही है, तो इसे अलग हटा कर नहीं, वरन् इसे बसाकर ही रास्ता निकाला जा सकता है। कविता के लिए यह समय चुनौतीपूर्ण अवश्य है, पर जीर्ण–शीर्ण अवस्था नहीं है। इसके निदान और प्रतिकार के लिए कविता को औजार बनाना पड़ेगा। अपने सामाजिक सरोकारों को फिर से टटोलना और नए सिरे से अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता के मर्म और निहितार्थ को पुनः अन्वेषित और पुनः अर्जित करना होगा। हमें ऐसे चरित्र से बचना होगा, जिसमें भाषा, समय, और जीवन की स्वतंत्रता के लिए कोई जगह नहीं। यह भी सही है कि सामाजिक विकास में तकनीकि बुद्धिवाद की

उपयोगिता से इन्कार नहीं किया जा सकता। लेकिन इसे आलोचनात्मक विवेक के विकल्प के तौर पर पेश करना बाजार संस्कृति की एक गहरी चाल है। इस चाल में जब समाज अपना अस्तित्व खो रहा है, तो कविता को आगे आना होगा और अपनी संस्कृति की पहचान कराकर अपने को समकालीन के दायरे में स्थापित करना होगा।

1.6.2. मूल्य संक्रमण

मूल्य अमूर्त शब्द है। यह किसी वस्तु, स्थिति, आदि के प्रति बने हुए दृष्टिकोण को सूचित करता है। यह व्यापक रूप से जाति, धर्म, समाज, संस्कृति, इतिहास से संपृक्त होता है साथ ही काल सापेक्ष भी होता है। इसे मानव और उसके समाज की मानवीयता को तृप्त करने की विश्वास्य क्षमता के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है। ये मूल्य समाज में एक स्वस्थ परंपरा कायम करने के लिए सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि स्तरों पर कुछ मानदंड रूप में निर्धारित किए गए हैं। इनका पालन सामाजिक आकांक्षा है। यद्यपि लीक की एक कठिन परंपरा पर चलना दुष्कर है, अतः यहाँ कुछ लचीलापन भी सहज स्वीकार्य है। हम जिस समय में हैं, वह बहुत तेजी से बदल रहा है, समाज में बदलाव के साथ मूल्यों में परिवर्तन भी आ रहे हैं, परिवेश और वातावरण में परिवर्तन के साथ जीवन मूल्य भी बदलते जाते हैं और तदनुरूप रचना में भी परिवर्तन आता है। जीवन मूल्यों के साथ भाव और विचार भी बदलते जाते हैं। सूचना, क्रांति और नई अर्थव्यवस्था को इन परिवर्तनों के लिए अधिक जिम्मेदार ठहराया जा सकता है, इसके साथ शीघ्रता से चलने में या तो संस्कृति विरूपित हुई है या फिर परंपरा की जकड़बंदी बढ़ी है। दोनों ही स्थितियाँ ठीक नहीं है। यद्यपि समन्वयकों की भूमिका भी कम नहीं, जो समाज में संतुलन बनाने का प्रयास कर रहे हैं। इन्हीं के बीच समकालीन कवि भी है जो इस परिवर्तन से न केवल साक्षात्कार कर रहे हैं, वरन् इनकी शिनाख्त और इनके बीच हमारी संवेदना के क्षरण को रोके रखने का प्रयास भी।

साहित्य बुनियादी तौर पर उस नैतिकता का नाम है, कि जब भी मूल्य अतिक्रमित होते हैं, तो प्रतिरोध के स्वर सबसे पहले साहित्य से ही आते हैं और उसमें भी सबसे पहले कविता से। साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण काम अपने समय के चरित्र का अंकन और उसका निर्माण करना भी है। यही कारण है कि कविता समय को बताती ही नहीं है वरन् नैतिक कार्यवाही भी करती है भले ही उसके प्रतिरोध का स्वर धीमा ही हो। समकालीन कविता की कुछ कविताओं को देखते है तो लगता है कि आज का यह प्रबुद्ध कवि अलग – थलग और अकेला पड़ गया है, वह जिन मूल्यों, प्रतिबद्धताओं के लिए कविता के माध्यम से आवाज

उठाता है, उन्हें समाज में आगे ले जाने वाली राजनीतिक और सामाजिक शक्तियाँ कमजोर हुई हैं। गोरख पांडेय इस धीमेपन को समझते हैं और समझाते हैं, कि समझदारी का मतलब मौन रहना है, चुप्पी साध लेना है।

'करने को तो हम क्रान्ति भी कर सकते हैं
अगर सरकार कमजोर हो , और जनता समझदार,
लेकिन हम समझते है कि हम कुछ नहीं कर सकते हैं
हम क्यों नहीं कुछ कर सकते हैं यह भी हम समझते है।'[31]

आज हमारे बीच गरीबी, भूख जैसी त्रासदी है, जिसके उत्तरदायी वे लोग हैं, जिन्हें हम चुनकर संसद में भेजते है। हमारी राजनीतिक व्यवस्था को आम आदमी के पक्ष का होना चाहिए, परंतु होता इसके एकदम विपरीत है। सारे मूल्य बेमानी से दिखाई पड़ते हैं। चाहे वे राजनीतिक हो, सामाजिक हो, या आर्थिक। कविता आज के इस दौर में सिर्फ बाह्य अंतर्विरोधों का ही नहीं, बल्कि आंतरिक अंतर्विरोधों को भी जाँचती है। ऐसा इसलिए कि ये आंतरिक परिवर्तन ही बाह्य के कारण बनते है। दूसरी एक और महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि कविता जो हो रहा है, उसे अंकित तो कर रही है, साथ ही जो होना चाहिए उसे भी बता रही है। समकालीन कवि हमारे सामाजिक मूल्यों में आए विचलन को भी बड़ी बारीकी से अध्ययन करता है, और एक लंबी सूची बना कर प्रस्तुत करता है। मंगलेश डबराल की कविता में –

'जिसने कुछ नहीं रचा संसार में
उसी का हो चला समाज है
वही है नियंता जो कहता है तोडूँगा अभी और कुछ
जो है खंखार हँसी है उसके पास
जो नष्ट कर सकता है उसी का है सम्मान
झूठ फिलहाल जाना जाता है सच की तरह
प्रेम की जगह सिंहासन पर विराजती है घृणा
बुराई गले मिलती अच्छाई से
मूर्खता तुम संतुष्ट हो तुम्हारे चेहरे पर उत्साह है
धूर्तता तुम मजे में हो अपने विशाल परिवार के साथ
प्रसन्न है पाखंड कि अभी और भी मुखौटे है उसके पास
चतुराई कितनी आसानी से खोज लिया तुमने एक चोर दरवाजा

क्रूरता तुम किस शान से टहलती हो खूनी पोशाक में
मनोरोग तुम फैलते जाते हो सेहत के नाम पर
खुशी कैसा दुर्भाग्य
तुम रहती हो इन सबके साथ।'[32]

कवि इन सबकी पहचान करता है ''ये कविताएँ उन अनेक चीजों की आहटों से भरी है जो हमारी क्रूर व्यवस्था में या तो खो गई है, या लगातार क्षरित और नष्ट हो रही है। वे उन खोयी हुई चीजों को देख लेती है, उनके संसार तक पहुँच जाती है और इस तरह एक साथ हमारे बचे खुचे वर्तमान जीवन के अभावों और उन अभावों को पैदा करने वाले तंत्र की पहचान करती है।'[33] जीवन का सौदर्य नष्ट हो रहा है, तो व्यक्ति परिवार, समाज सब इसमें शामिल है और ये सौन्दर्यहीनता की ओर बढ़ रहे हैं। कवि लगातार मूल्यों को क्षरित होते देख रहा है। ये हमारे सांस्कृतिक मूल्य है, जिन्हें उपभोक्तावादी संस्कृति सुखाती जा रही है। आज आस्था का स्थान तर्क ने ले लिया है, और ईमानदारी का स्थान चालाकी ने। आने वाले दिनों में ये मानवीय मूल्य बच भी पाएँगे या नहीं यह भी भविष्य के गर्त में है –

'हर कोई सोच रहा है कि ईमानदारी एक नई समस्या है
लेखक तक पूछ रहे हैं कि संस्कृत में इसके लिए क्या शब्द था।'[34]

ऐसी स्थिति में जबकि अर्थवान चीजों को खोते जाने के कारण ही समकालीन कविता में बचाओं की मुद्रा जैसी परिणति जोर शोर से दिखाई देने लगी है, कवि इन सबके संरक्षण में चिंतित दिखता है। जीवन इतनी तेजी से भाग रहा है, कि मूल्य पीछे छूटते जा रहे हैं जीवन का वास्तविक सौन्दर्य समाप्त होता जा रहा है, कृत्रिमता हावी होती जा रही है। ऐसे में, इस संक्रमण काल में, जबकि जीवन और सामाजिक मूल्यों में नाटकीय उलटफेर हो रहे हैं, पुराने मूल्य विघटित हो रहे हैं और नए मूल्यों को स्वीकृति नहीं मिल पा रही है, समाज में अफरातफरी का माहौल है, पूँजी पर केन्द्रित समाज अपने अंतर्विरोधों के कारण संकट में है। कवि को केवल कवि नहीं रहकर समाजशास्त्रीय रीति से भी अपना रचनाकर्म कार्य भली भाँति सावधानी से अंजाम देना होगा।

1.6.3. मूल्य संरक्षण

आज उपभोक्तावादी संस्कृति ने अपने पाँव पसार लिए हैं। मूल्य विरूपित हो रहे हैं, परंपराएँ टूट रही हैं, समाज नित नई समस्याओं से जूझ रहा है। ऐसे में कविता इन हलचलों को अत्यंत संवेदनशीलता के साथ महसूस कर रही है। कविता इन सभी परंपराओं,

और संस्कृतियों को बचा लेना चाहती है। कविता बची हुई है, इसलिए कि संवेदना बची हुई है, और संवेदना बची हुई है इसलिए कि जीवन बचा हुआ है। जिस सभ्यता ने कभी जीवन का परिष्कार किया था, वही आज निरंकुशता की ओर बढ़ रही है। ऐसे में समकालीन कविता में एक प्रवृत्ति उभरी है इन मूल्यों के संरक्षण की। भूमंडलीकरण, बाजारवाद, उपभोक्तावाद, संप्रदायवाद आदि के बीच मानवीय तरलता कहीं खो गई है। कवि चिंतित है, मानवीय संवेदना को बचाने के लिए मूल्यवान वस्तुओं के संरक्षण के लिए। अतः इस चिंता के फलस्वरूप समकालीन कविता के पटल पर अनेक कविताएँ उभरी है। हमारे दौर की यह काव्य प्रवृत्ति इस रूप में भी उल्लेखनीय है, कि उसमें चीजों, संबंधों, मूल्यों, को बचाने की चिन्ता केन्द्रीय तौर पर दिखती है। जो भी संभव है उसे बचाया जाय, जो भी तोड़ा जा रहा है, उसे संरक्षित और सुरक्षित रखने की कोशिश की जाए और कुछ भी नहीं तो कम से कम उसे दर्ज जरूर किया जाए। कवि विनोद कुमार शुक्ल अपनी कविता 'बुरी नज़र' के माध्यम से आतंकवाद, संप्रदायवाद जैसी अमानवीय ताकतों से सबको बचाना चाहते हैं।

'मुझे बचाना है
एक एक कर
अपनी प्यारी दुनिया को
बुरे लोगों की नजर है
इसे खत्म कर देने को।'[35]

जीवन अमूल्य है हमें इसे सुरक्षित रखना होगा। जीवन मूल्य हमारी प्राथमिक आवश्यकताएँ हैं, जो आज कठिन होती जा रही है। वह हताशा में भी उम्मीद, हिंसा के बीच प्रेम, क्रोध के विरूद्ध करूणा को बचाए रखना चाहता है। संस्कृति और सभ्यता पर जब लगातार हमला हो रहा है, परिवेश उजड़ रहा है, रिश्तों की गर्माहट ख़त्म होती जा रही है, जंगल काटे जा रहे हैं, निर्दोष लोग मारे जा रहे हैं, ऐसे में कवि पेड़ो में रस, नदियों में जल, सूरज में ताप, तितलियों में रंग, पक्षियों में कलरव, सृष्टि का संगीत और दुनिया का वारिस बचाना चाहता है। आधुनिक समय में हमारा लोक जीवन नष्ट किया जा रहा है, जिसे बचाने की चिन्ता कविता में निरंतर दिख रही है। आलोक धन्वा उन छोटी – छोटी चीजों को पहचानते हैं, जो हमारी संस्कृति की धरोहर है, और संकट के समय हमारा साथ देती है। इन सारी चीजों की ओर कवि संकेत करता है –

'किसने बचाया मेरी आत्मा को
दो कौड़ी की मोमबत्तियों की रोशनी ने

दो चार उबले हुए आलू ने बचाया
सूखे पत्तों की आग
और मिट्टी के बर्तनों ने बचाया
पुआल के बिस्तर ने और.......
दादी के लिए रोटी पकाने का चिमटा लेकर
ईदगाह के मेले से लौट रहे नन्हे हामिद ने
और छह दिसम्बर के बाद फरवरी आते आते
जंगली बेर ने
इन सबने बचाया मेरी आत्मा का।'[36]

कवि प्रकारांतर से मनुष्य के अस्तित्व पर मँडराते संकट की ओर संकेत करता है, जो उस पंचतत्त्व से बना है। विज्ञान और तकनीक ने मनुष्य की सुरक्षा के बहुत से उपाय खोजे हैं, पर हश्र यह है, कि न आदमी बच रहा है और न आदमीयत। विनोद कुमार शुक्ल को लगता है आने वाले समय में बड़ी – बड़ी घटनाओं की गिनती छोटी – छोटी घटनाओं की तरह होगी। आज इंसानियत को खत्म करने के बहुत से तरीके ईजाद कर लिए गए हैं। एक वस्तुवादी दृष्टि पनप रही है, जिसके तहत आदमी मशीन की तरह है, वर्तमान ही उसका सब कुछ है। आदमी का चेहरा भीड़ में बदल गया है, नारे शोर में –

'एक सरल वाक्य बचाना मेरा उद्देश्य है
मसलन कि हम इंसान है
मै चाहता हूँ कि इस वाक्य की सच्चाई बची रहे
सड़क पर जो नारा सुनाई दे रहा है
वह बचा रहे अपने अर्थ के साथ
मैं चाहता हूँ निराशा बची रहे
जो फिर से एक उम्मीद
पैदा करती है अपने लिए
जो चिड़ियों की तरह कभी पकड़ में नहीं आते
प्रेम में बचकानापन बचा रहे
कवियों में बची रहे थोडी लज्जा।'[37]

यहाँ कवि शब्दों को उसके अर्थ के साथ बचाना चाहता है, यहाँ छोटी – छोटी सच्चाइयाँ एक बडा परिप्रेक्ष्य रखती है। जैसे नारों का आज कोई अर्थ नही रह गया है, तमाम तरह

के अभियान चलाए जा रहे हैं। नारों का शोर सुनाई दे रहा है 'बचपन बचाओ' 'पर्यावरण बचाओ' 'मनुष्य बनो' आदि आदि। लेकिन विडंबना यह है कि इन नारों के साथ वही लोग खड़े है, जो इसे नष्ट करते हैं। यही कारण है कि कवि शब्दों को उसके अर्थ के साथ बचाना चाहता है, लोक पर मँडराते सभी संकटों को कवि देख रहा है। कवि को इसी संदर्भ में अपनी लिपि को बचाने की चिंता है –

'चिन्ता करो मूर्धन्य 'ष' की
किसी तरह बचा सकते हो तो बचा लो 'ऽ'
देखो कौन चुरा कर ले जा रहा है खड़ी पाई
और नागरी के सारे अंक।'[38]

समकालीन कविता में यह प्रवृत्ति उसकी अपनी एक निजी पहचान है। कभी कभी ऐसा लगता है, कि कविता में चिंतित होना एक फैशन के जैसा है, पर यहाँ यह कहना जरूरी है कि जब कवि जीने के सूत्र के रूप में जिलाने के मन से इन्हें साधता है, वहाँ वह चिन्तित होता ही नहीं, करता भी है। हमें यह कहना होगा यदि कविता बची तो वह 21वीं सदी को भी बचायेगी, किंतु यह सदी कविता को कितना बचा पायेगी यह कहना कठिन है।

1.6.4. लोक से जुडाव

समकालीन कविता का महत्वपूर्ण विशिष्ट घटक लोक से जुड़ाव है। लोक से तात्पर्य उस लोक साहित्य से है, जो शौरसेनी अपभ्रंश की अठारह – उन्नीस बोलियों से जुड़ी है, इन बोलियों में अपार लोक साहित्य की संपदा है। स्वयं भारतेन्दु ने अनेक लोकगीतों और लोकधुनों का उपयोग कर खड़ी बोली को साहित्यिक रूप में खड़ा करने में प्रेरक भूमिका निभाई। प्रेमचंद की किस्सागोई, रेणु का आंचलिक कथा संसार, छायावाद की गीतशैली और प्रगतिवाद की लोकचेतना इन सभी में कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में लोक साहित्य की आत्मा मौजूद है। समकालीन कविता में जब हम लोक तत्त्व या लोक चेतना की बात करते हैं, तो हमारा एक मतलब तो यह होता है कि आज कविता या साहित्य किसी खास के लिए नहीं, किसी विशिष्ट समुदाय या पंथ के लिए नहीं, एक व्यापक लोक के लिए है। लोक साहित्य की एक प्रमुख विशेषता उसका लोक के लिए, लोक की भाषा में होना और लोक के द्वारा होना है, यही संस्पर्श कविता को लोक साहित्य से जोड़ता है भले ही जन या जनता के रूप में लोक की एक राजनीतिक समझ प्रगतिवाद के रूप मे विकसित हुई, इसी दौर में कविता जनता के अधिक समीप आती है, दलित शोषित के पक्षधर के रूप में शोषकों और सामंतो के विरोध में खड़ी होती है। ऐसे में लोक का तात्पर्य एकपक्षीय होकर

केवल लोग ही रह जाता है, परंतु भारतीय साहित्य में लोक का मतलब सिर्फ लोग नहीं है यहाँ लोक का मतलब मनुष्य के साथ पशु – पक्षी, पेड़ – पौधे, नदी – नाले, खेत – खलिहान, एक तरह से पूरा दृश्य जगत् है। मनुष्य इसका एक हिस्सा है। समकालीन कविता ने इसे अधिक गहराई से पकड़ने की कोशिश की है। हमें यह कहने में कतई संकोच नहीं होना चाहिए, कि समकालीन कविता जन के अति उच्चार या घोष से बचते हुए लोक को धारण करने, उसे व्यक्त करने और उस तक पहुँचने की चिंता से जुड़ी हुई है। यह अनायास नहीं है, कि आज समकालीन कविता के एक तरफ जन है, तो दूसरी तरफ व्यक्ति के नाम से पुकारती कविताएँ है तो तीसरी ओर अत्यंत आत्मीयता के साथ लुप्तप्रायः पशु प्रजातियाँ है, घर है, खजुही कुतिया है, बैल है, नटगिट्टे साँड है, पेड़ है, नदियाँ है – बेनाम और नाम वाली भी। लोक की इस मर्मचेतना के चलते हम समकालीन कविता को जनवादी कविता से ऊपर उठकर लोकवादी कविता कह सकते है। जन के साथ जो कविता तल्ख और तीखी महसूस होती है वह लोक से जुड़ते ही विस्तृत भाव वाली होकर मीठी हो जाती है। 'कविता में लोकजीवन की कविता का उभार और उसका उत्तरोत्तर विकास कविता के इलाके में सबसे बड़ी घटना है। लोक संस्कृति, आज कविता का सबसे बडा ट्रांसमीटर है। शहरी जीवन की ऊपरी आधुनिकता और उपभोक्तावाद के विरूद्ध लोकसंस्कृति से उपजी कविता इधर की केन्द्रीय थीम बन गई है।'[39]

समकालीन कवि आज सामाजिक और राजनीतिक पतन की चिंता नहीं कर रहा है, बल्कि वह मानवीय संवेदना के क्षरण और जीवन की सहज गतिमानता को भीतर से सोख लेने वाला प्रत्येक दुश्चक्र पहचान रहा है। उसे अब प्रेम की, प्रकृति की, बच्चे की, स्त्री की, और पूँजीवादी समाज व्यवस्था से बेदखल किए गए मनुष्य की चिंता ही नहीं है, वरन् वह नए सिरे से इन्हें जीवित रखने वाले शक्ति स्रोतों की तलाश कर रहा है। उन परंपराओं, स्मृतियों, प्रकृति, और ध्वनियों को जीना चाहता है, वह उस मिट्टी की चिंता करता है जो उसकी शक्ति पुंज है। महानगरीय संस्कृति ने इस मनुष्य से यह सब छीन लिया है। उसे यह सब दुखता है –

'झड़ना था तो खेत में झड़ता
दाई माई चुन लेती
झड़ना था तो राह में झड़ता
चिड़िया चुरगन चुन लेती
अब तो खंखड़ हूँ मैं केवल

दाना था तो घुन खा बैठे।'[40]

कवि को अपनी मिट्टी से उखड़ जाने का एहसास निरंतर बना हुआ है। बोधिसत्त्व, एकांत श्रीवास्तव, प्रेमरंजन अनिमेश की कविताओं में इसे केन्द्रीय विषय के तौर पर देखा जा सकता है।

समकालीन कविता में लोक स्पर्श का वह जुड़ाव है, जो लोक जीवन में फैले संस्कार, रीति रिवाज आदि को जीवित रखने का प्रयास कर रहीं है और इसमें सफल भी है। कुमार अंबुज की कविता में दीवार पर चंदा, सूरज, और नागदेवता अंकित हैं, तो नवल शुक्ल के यहाँ उनका लोकदेवता है। अन्य कवियों के यहाँ भी लोकजीवन के विस्तारित मिथकों की आवाजाही की छाया दिखाई देती है। आज कविता लोक जीवन को न केवल अपने अंदर रचा बसा रही है बल्कि उनसे जीवन रस भी प्राप्त कर रही है। जहाँ संस्कृति विरूपित हो रही है, वहीं समकालीन कविताओं में ग्रामगंध, बाजारीकरण के विकल्प के रूप में आ रहा है। उपभोक्ता संस्कृति यदि पाँव पसार रही है, तो लोक भी अपना राग रच रहा है। भले ही स्मृतियों में ही, कविताओं में ही। इन कविताओं में लोक मन की चाहत है, उस लोक, उस घर में जाने की इच्छा है, जहाँ बचपन के फूल अनवरत झरते है। समकालीन कविताओं से गुजरते हुए इतना तो कहा ही जा सकता है, कि ये कविताएँ भले ही अभी पूरी तरह लोक में रच बस न पाई हों लेकिन लोक की ओर लौट अवश्य रही है। इन कविताओं में एक देसी किस्म का राग है, जो भले ही कवि की सभी कविताओं में न हो, फिर भी इतनी प्रचुरता तो है ही, कि लोक से जुड़ाव समकालीन कविता की एक प्रवृति के तौर पर उभरा है।

1.6.5. प्रेम

सृष्टि के विस्तार का आधार प्रेम है। यह कला की प्रेरणा और सृजन का रहस्य है। प्रेम कविता की आत्मगत चेतना है। भक्तिकाल में इसका भक्तिमय स्वरूप मिलता है, तो रीतिकाल में यही प्रेम मांसल हो गया। आधुनिक काल में जब कविता ने विस्तार पाया तब प्रेम जीवन मूल्य की तरह शामिल हुआ। आम जन – जीवन, उसकी अनुभूतियाँ, उसके सपने कविता के विषय बने। समकालीन कविता में प्रेमजनित कविताओं की संख्या गिनने योग्य हैं, फिर भी इस भाव को लेकर जो भी कविताएँ इन कवियों ने लिखी उनमें प्रेम विशिष्ट संदर्भ को लेकर आया। यह प्रेम स्त्री – पुरूष संबंधों की व्याख्या तो करता ही है साथ ही साथ इसे जीवन की संभावना के साथ अभिव्यक्त किया गया है। बदरीनारायण की

'प्रेम पत्र' पवन करण की प्रेम में डूबी हुई माँ, ज्ञानेन्द्रपति की चेतना पारीख, आदि कविताएँ इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

जब समकालीन संकट गहराया हो तो जीवन शैली में बदलाव आना स्वाभाविक है। भूमंडलीकरण ने आर्थिक क्षेत्र में नयी – नयी संभावनाओं को जन्म दिया है, इसके परिणामस्वरूप पुरानी मान्यताओं की अस्वीकृति भी कविताओं में दिखाई देती है। रागवृत्ति संकुचित हुई है। समकालीन कविता में प्रेम पहचान के रूप में जीवन तथ्य की तरह प्रस्तुत हुआ है। बदरीनारायण की कविता 'प्रेमपत्र' में प्रेम को बचाने की गुहार की गई है, ऐसा इसलिए कि जब लोक में प्रेम हाशिए पर रख दिया गया हो, जब कुछ भी बचाना संभव न हो तब प्रेम को कैसे बचा पाना संभव है?

'प्रलय के दिनों में
सप्तर्षि मछली और मनु
सब वेद बचाएँगें
कोई नहीं बचाएगा प्रेमपत्र
कोई रोम बचाएगा
कोई मदीना
कोई चाँदी बचाएगा कोई सोना
मै निपट अकेला कैसे बचाऊँगा तुम्हारा प्रेमपत्र।'[41]

प्रेम कविताओं में ज्ञानेन्द्रपति की 'ट्राम में एक याद' में कविता स्मृति के पर्दे हटाती है और बताती है, कि तमाम स्मृतियों के बीच एक याद किस तरह एक कोना घेरती है। कलकत्ता विकल हो तो क्या, भीड़ – भाड़ हो भी तो क्या, एक नन्हीं पत्ती की जगह और उसका न होना दिख जाता है। प्रेम को सहेजे रखना उसकी रिक्तता को अनुभव करना भी प्रेम के जीवंत अनुभव को दर्शाता है –

'चेतना पारीक कैसी हो?
पहले जैसी हो?
विकल है कलकत्ता दौड़ता अनवरत अविराम है
इस महावन में फिर भी एक गोरैये की जगह खाली है
एक छोटी चिड़िया से, एक नन्हीं पत्ती से सूनी डाली है।'[42]

समकालीन कवि कुमार अंबुज के यहाँ दाम्पत्य के बंधन में प्रेम एक नया उपमान गढ़ता है।

'चूल्हें की आँच
और पसीने से पिघलकर
आड़ी तिरछी हो गई
तुम्हारे माथे की लाल बिन्दी की तरह हो गया है
सूर्योदय का यह आसमान
मैं इस आसमान का एक टुकड़ा तोड़कर पूरे जतन के
साथ टाँकना चाहता हूँ
तुम्हारे नाम।'[43]

यहाँ चूल्हे की आँच, माथे की लाल बिन्दी, और सूर्योदय का आसमान तीनों में साम्य अप्रतिम है।

इस प्रकार समकालीन कविता में प्रेम जीवन की संभावनाओं के आस – पास है। जहाँ कहीं भी जीवन है, संभावनाएँ हैं, वहाँ प्रेम भी है।

1.6.6. स्त्री विमर्श

समकालीन कविता में स्त्री के विविध रूपों, विविध छवियों को दर्ज करने की कोशिश की गई है। यह सही है, कि स्त्री को काव्य वस्तु बनाकर अनेक कविताएँ आ चुकी हैं, परंतु समकालीन कविता में इससे आगे जाकर स्त्री के वास्तविक रूप को पूरे परिवेश के साथ चित्रित करने की कोशिश की है। स्त्री जीवन के हँसते, गाते, रोते और संघर्ष करते जीवन को यहाँ अभिव्यक्ति मिली है। नारी के प्रगतिशील रूप के साथ उसके परंपरित रूप के दर्शन भी यहाँ दिखाई देते हैं। गोरख पांडेय की कविता 'कैथर कला की औरतें' श्रमिक वर्ग की महिलाओं के संघर्ष को पूरे मानवीय धरातल पर चित्रित करती है। आज 21वीं सदी में जब स्त्री मुक्ति की बात कही जा रही हो, वहाँ भी पुरूषवादी मानसिकता स्त्री के व्यक्तित्व को चुनौती देने के लिए खड़ी है। समकालीन कवि जानता है कि आज भी महिलाओं के संघर्ष कमतर नहीं हैं। अरूण कमल स्त्री पर होने वाली ज्यादती को लेकर लिखते हैं। 'उसने वही किया जो मैंने कहा' लीलाधर जगूड़ी की स्त्री 'शादी के तीस साल बाद भी सड़क पर डग भरने की इजाजत पुरूष से लेती है।'[44] यह औरत शताब्दियों से पुरूष के साथ अधिक परिश्रमी होकर भी अधिक सामाजिक होकर भी आज भी अपना पता अपने पति या परिवार में ढूँढती है। उसका अपना अस्तित्त्व नहीं है। वह सामाजिक कड़ी के रूप में सदैव से पुरूष का अनुकरण कर रही है। आलोक धन्वा की कविता 'भागी हुई लडकियाँ' ऐसी कविता है जो कुलीनता की हिंसा को बताती है –

'उसे मिटाओगे
एक भागी हुई लड़की को मिटाओगे
उसके ही घर की हवा से
उसे वहाँ से भी मिटाओगे
उसका जो बचपन है तुम्हारे भीतर
वहाँ से भी
मैं जानता हूँ।'[45]

आज भी महिला इस विकसित देश में संघर्षशील है। शारीरिक और मानसिक स्तरों पर वह हिंसा का शिकार होती है। वह जब भी उबरने का प्रयास करती है तो समाज आगे नहीं आने देता अनेक पाबंदियाँ उसका रास्ता रोकती हैं। यदि कोई सच उजागर करना भी चाहे तो उसे परिवार की सलामती और सेहतमंदी का वास्ता देकर चुप कराया जाता है। समकालीन कवि इस बात से भली – भाँति परिचित है –

'वर्तमान को घेरे हुए मानवीय अँधेरे में जो बहुत कुछ है
पृथ्वी पर उसमें यह लड़की भी है।'[46]

उपभोक्तावादी समाज में पूरे उद्योग जगत् की चाबी पुरूषों के हाथों में है। सौन्दर्य का मानदण्ड उनके द्वारा ही तय होता है। जीवन से हटकर और कटकर, वह मीडिया में एक वस्तु के रूप में उभरती है। उदय प्रकाश की कविता 'परदा' में कवि कहता है–

'परदे के बाहर कभी भी नहीं गिरेंगे
उस स्त्री के आसूँ
उसके लिए इतने और असह्य
दुख लिखे हैं
किसी अत्याचारी पुरूष ने ......
कवि अंत में कहता है –
'फिर एक विराट् स्त्री
विटामिन के साबुन से नहायेगी
सबकी आँखों के सामने साक्षात्
और हँसती रहेगी पानी के नीचे।'[47]

आज स्त्री कुछ सतर्क और सावधान हुई है। शिक्षा के आगमन ने इस स्त्री को स्वाभिमानी बनाया है। उसके विवेक को जाग्रत किया है, किंतु आज भी आधी आबादी पूरी तरह स्वतंत्र नहीं है। समकालीन कविता इस सच को अनावृत करने में पीछे नहीं है।

1.6.7. श्रम की महता

समकालीन हिंदी कविता में श्रम की महत्ता असंदिग्ध है। यहाँ खेतिहर मजदूर है, तो शहरी क्षेत्र में कार्यरत मजदूर भी हैं, जो जी जान से श्रम में शामिल होते हैं, पर उनकी पूरी कमाई से परिवार का कौन कहे, उनका पेट भी चल पाना मुश्किल होता है। आजादी के बाद से अब तक विभिन्न रूपों में यह समुदाय जीवन की न्यूनतम सुख सुविधाओं से वंचित रहा है। समकालीन हिंदी कविता श्रमिकों के जीवन यथार्थ को काव्य का विषय बनाते हुए उनके जीवन में बेहतरी लाने के लिए चलाए जा रहे विभिन्न आंदोलनों से अपनी एकजुटता सिद्ध करती है, बेहतरी लाने के प्रयासों की जरूरत को रेखांकित करती है। देश की मेहनतकश जनता के श्रम के विभिन्न रूपों से इसका प्रत्यक्ष जुड़ाव है। यह जनता अपने हाथों से देश को सजाती सँवारती है। वह अन्न उपजाती है, कल कारखानों में सूई – धागा के निर्माण से लेकर बड़ी – बड़ी इमारतों का निर्माण इनके ही हाथों से होता है। इनके हाथ चलाने से ही समय और समाज का चक्का चलता है। ये ही हाथ गारा – सीमेण्ट का काम करते हैं। इन बड़ी – बड़ी इमारतों को बनाने वालों को खुद रहने के लिए झोंपड़ी भी नसीब नहीं होती। इनको सड़क और पार्क में सोतों हुओं को बेदखल करना आम बात है। उनकी इस बेदखली में देश के संविधान और कानून का बड़ा हाथ है। कानून और संविधान में इनके लिए कोई स्थान नहीं है। कानून और संविधान तो गाँव से लेकर शहर तक जमींदारों और मिल मालिकों के पक्ष में है। यह कविता श्रमिकों के श्रम, उसकी सौन्दर्य चेतना के साथ – साथ अपने कर्म फल के प्रति आसक्ति के द्वंद्व को गहरे रूप मे स्थापित करती है। खेतिहर मजदूरों को लेकर भी समकालीन कविता में पर्याप्त चिंतन है। मदन कश्यप की कविता 'हलवाहे भाई' यहाँ प्रासंगिक है –

''हथियारों की होड़ के इस युग में
तुमने कभी सोचा है हलवाहे भाई
कि तुम्हारे ये फार
सबसे बेहतरीन हथियार हैं
जिनसे तुम धरती के छाती चीरकर
फसलों के बीज डालते हो।'[48]

धरती की छाती चीरकर अन्न उगाने वाला आदमी, अपने पूरे परिवार की हड्डियाँ गलाकर भी सुख सुविधाओं को पाने की बात तो दूर पेट तक नहीं पाल पाता। कवि इस कविता में उसके सुंदर व मेहनती मन को उसी के समक्ष खोलते हुए उसके दुख दर्द और उसके साथ हो रहे अन्याय को भी देखता है। उसके मन में इस व्यवस्था के प्रति एक स्वाभाविक आक्रोश और इन्कार की जगह न केवल तलाशता है, बल्कि उसके बनने की गुंजाइश भी निर्मित करता है।

श्रमशील महिलाओं के अनेक रूप समकालीन कविता में देखने को मिलते है। इसमें श्रम से लेकर अत्याचार सहने और यहाँ तक कि अत्याचार में जनसंहार में उसकी शिकार हो गयी महिलाओं पर न केवल लेखनी चलती है वरन उसको पूरी आदमियत से देखती है। आलोक धन्वा की 'ब्रूनों की बेटियाँ' ऐसी ही एक कविता है जिसमे ब्रूनो की बेटियाँ एक सत्यान्वेषण के चलते मारी जाती हैं एक बड़े सच की स्थापना के चलते उनका यह हश्र होता है। कवि उन महिलाओं को उनके पूरे आदमीपन से देखता है और उनके श्रम को राष्ट्रीय संदर्भो में महत्त्वपूर्ण मानता है। श्रम के महत्त्व का यह ऐतिहासिक स्वीकार समकालीन कविता की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है –

'क्या वे सिर्फ मालिकों के लिए
आतीं थी इतनी सुबह
क्या मेरे लिए नहीं ?
क्या तुम्हारे लिए नहीं ?
क्या उनका इतनी सुबह आना
सिर्फ अपने परिवारों का पेट पालना था ?
कैसे देखते हो तुम इस श्रम को ?'[49]

समकालीन हिंदी कविता में गरीब बच्चों की उपस्थिति भी देखी जा सकती है। यह चाहे फुटबाल सीते बच्चे हों या भीख माँगते अथवा रेल के डिब्बे में फर्श बुहारते बच्चे। ज्ञानेन्द्रपति की कविता 'एक रेल के डिब्बे में' इस संदर्भ में देखी जा सकती है। कविता में बच्चा फर्श बुहारने के बाद स्वाभिमान के अंदाज में दिखता है। भीख नहीं, मेहनताने के लिए फैली उसकी बाल हथेली दिख जाती है। वे दरिद्रता के कोख जाए बच्चे हैं। कवि इनकी जीवन यथार्थ को दिखाते हुए इनके सामाजिक अस्तित्त्व के प्रश्न को सबसे पूछता है।

1.6.8. प्रश्नाकुलता

प्रश्न जिज्ञासा को शांत करने के लिए किया जाता है। प्रश्न करते समय यह जरूरी नहीं कि प्रश्न क्या, क्यों, कैसे की मुद्रा में उठाया जाए। सवालिया निशान और शब्द के बिना भी प्रश्न उठते और उठाए जाते रहे हैं। भक्तिकाल में कबीर का 'जो तू बामन बामनी जाया, आन बाट ते क्यों नहीं आया' जैसे चुप कर देने वाले सवाल एक बानगी है। ऐसा नहीं है कि कबीर केवल प्रश्न ही करते हैं, वे यथासमय अपने दोहों में उत्तर भी दे देते हैं। एक बात और तुलसी यदि प्रश्न नहीं पूछते तो इसका तात्पर्य यह कतई नहीं कि उनके साहित्य में प्रश्नों का अभाव है। प्रश्नों के लिए प्रश्न के ढाँचे की आवश्यकता नहीं होती। सच्चा साहित्य स्वयं ही प्रश्न और उत्तर दोनों का निर्वाह अपनी आवश्यकतानुसार कर लेता है। रीतिकाल में कोई कवि प्रश्न नहीं करता या कोई कवि प्रश्नों से नहीं टकराता या जूझता नहीं है, तो इसका एक ही कारण है, कि वह साहित्य कृत्रिम है, बनावटी है और यही कारण है, कि रीतिकाल का साहित्य मूल्यवान नहीं माना जाता है। समकालीन कविता में कवियों ने तरह – तरह के सवाल उठाए हैं। कविता अपने व्यापक संदर्भो से जुड़ी है इसका क्षेत्र व्यापक है अतः इसके प्रश्न भी व्यापक संदर्भो से जुड़े हैं, इन सबके केन्द्र में जन सामान्य के भीतर उमड़ती – घुमड़ती प्रश्नाकुल चेतना है। इसने अपने समकाल को कविता में दर्ज करने की कोशिश की है। कवियों की सतर्क और सजग दृष्टि सभी स्थितियों और घटनाओं पर है, जो आम जनता को प्रभावित करती है। चाहे भोपाल गैस कांड हो, पंजाब या कश्मीर का मुद्दा हो, किसी किसान द्वारा आत्महत्या हो या किसी अबला की अस्मत। कुल मिलाकर यह भी कहना ठीक होगा, कि इन कवियों ने कोई भी क्षेत्र नहीं छोड़ा और न ही इनके लिए कोई क्षेत्र वर्जित है। वस्तुतः प्रश्न उठाना कवि की प्रकृति में नहीं होता, लेकिन समकालीन कविता ने इसे तोड़ा है और तरह – तरह के प्रश्न उठाए हैं। यद्यपि छायावादी कवियों में भी यह प्रकृति दिखाई पड़ती है, लेकिन उनका 'कौन' अमूर्त है जबकि समकालीन कविता का 'कौन' प्रायः ज्ञात है यह ज्ञात ही व्याख्या के लिए अवकाश रचता है जिसका कवि मात्र संकेत कर देता है या फिर पाठक के मन में उमड़ने – घुमड़ने के लिए सवाल छोड़ देता है। अशोक वाजपेयी लिखते है – 'जिस समाज में असली सवालों की पहचान धुँधला गई हो वहाँ कविता का एक आपद् धर्म शायद यह भी है कि वह यथासंभव इस स्थिति को तो अंकित करे ही भरसक सही सवाल पूछने की जुर्रत करे।'[50]

लीलाधर जगूड़ी की कविता में बलदेव खटीक जब पूछता है–

'अभावों की इस आजाद कहानी में

क्या इसी तरह होती है मुक्ति।'[51]

कवि इन प्रश्नों को आम आदमी के लिए उठाता है, जो व्यवस्था की अनियमितता का शिकार है। यह प्रश्न समाज में शोषित वर्ग की सतर्कता का सच बताता है, अब वह अन्याय के विरोध में उठ खड़ा होना चाहता है। राजनीति में मनुष्य को राजनेताओं ने केवल वोट बैंक से ज्यादा कुछ नहीं समझा है। खुशहाली सरकारी पोस्टरों में ही दिखाई देती है। कुमार अंबुज की एक कविता –

'जब वोट डालने के लिए चलना पडता है सिर्फ दो मील
तो इलाज कराने के लिए बीस मील क्यों ?
जब भरे पूरे स्वस्थ विधायक के लिए सुरक्षित है बैठने की जगह
तो एक बीमार बच्चे
और थके हारे इन्सान के लिए क्यों नहीं।'[52]

समकालीन कविता आम आदमी के जीवन संघर्ष को आवाज़ दे रही है, उसमें इन सारी स्थितियों को बयान करने का एक ताप है। यह छोटे – छोटे प्रश्नों को उठाती है, वे प्रश्न एक बड़ी व्यवस्था रचते हैं, इसमें शामिल होते है। न्याय व्यवस्था पर सवाल है, कि इतने बड़े – बड़े घोटाले होते हैं, और वर्षो तक पर्दाफाश नहीं हो पाता, और अचानक अपराधी बरी हो जाता है, जबकि आम आदमी दर – दर भटकता रहता है, उसे न्याय नहीं मिलता । यह सच है, कि हम विकासशील से विकसित होने की ओर बढ़ रहे हैं, पर साथ ही साथ एक बैचेनी भी पैदा हो रही है, जो अनेक प्रश्नों का समाधान चाहती है। ये प्रश्न जाति, राष्ट्र, आतंकवाद सांप्रदायिकता जैसी गंभीर समस्याओं से आवृत्त है।

समकालीन कविता ने अपने समय की समस्याओं और चुनौतियों से कुछ ज्यादा ही मुकाबला किया है। यही कारण है कि कविता के हिस्से में बार – बार सवाल आता है और उत्तर में फिर एक सवाल उठ खड़ा होता है। सूदखोरी आज पैसा खाने की लोकतांत्रिक लत में बदल गयी है। यही कारण है कि इसके लिए हमने जीवन से जुड़े शब्दों को ईजाद कर लिया है जो सुनने में जीवन का ही एक हिस्सा लगे। रूपये खाने की लोकतांत्रिक लत इसी का एक उदाहरण है। मूल्यों का निरंतर ह्रास हो रहा है। ये मूल्य ही आज समस्या बन गए है –

'हर कोई सोच रहा है,
ईमानदारी एक नई समस्या है

लेखक तक पूछ रहे है संस्कृत में इसके लिए क्या शब्द था।'[53]

यह मूल्यों का बाज़ारवाद है। उपभोक्ता संस्कृति ने मूल्यों पर धावा बोल दिया है, सूचना क्रांति ने भी इसमें मदद की है।

इस प्रकार समकालीन कविता अपने समय की प्रतिध्वनियों की गूँज है। यह कविता अपने व्याकुल समाज की गवाह है। उसका दुख समाज का दुख है, उसके सवाल संस्कृति और उसके मूल्यों में आए बदलाव को लेकर है। चूँकि कविता समाज से जुड़ी होती है और जब समाज में संकट गहरा रहा हो, तो कविता उससे विमुख नहीं रह सकती है। यह उन संकटों की पहचान कराती है, उनके प्रति सजग करती है, प्रश्नांकित करती है।

1.7. निष्कर्ष

अंत में निष्कर्ष रूप में यह कहना समीचीन है, कि समकालीन हिन्दी कविता ने अपने समय को पूरे परिवेश के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। उसने रोजमर्रा की जिन्दगी में होने वाले सामान्य जीवन प्रसंगो को अपनी परिधि में लिया है, तो अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भो को भी उद्घाटित किया है। इतना ही नहीं इन सभी के संवेदनात्मक प्रभावों को भी दिखाना इस कविता का महत्वपूर्ण संवेदनात्मक पक्ष है। यह सच है कि वह इस क्रम में अधिक विश्लेषणपरक हो गई है। मूल्यों के संक्रमण के चलते यह कविता उन सभी को बचा लेना चाहती है, जो हमारी प्राथमिक आवश्यकताओं से जुड़ी है। समकालीन कविता जब बैचेन होती है, तो सवाल करती है, व्यवस्था पर चोट करती है। यह लोक से जुड़कर, लोक को नये रंग देना चाहती है और साथ ही साथ जीवन मूल्यों को संरक्षित करते हुए उन्हें सुरक्षित रखने के लिए प्रतिबद्ध है।

संदर्भ –

1. श्री नवल जी, नालंदा विशाल शब्द सागर, पृ. 1409
2. संपादक बदरीनाथ कपूर, लोकभारती प्रामाणिक हिन्दी कोश छठा संस्करण, पृ. 827
3. संपादक श्यामसुंदर दास, हिन्दी शब्द सागर कोश, पृ. 250
4. संपादक हुकुमचंद राजपाल, समकालीन बोध और धूमिल का काव्य, पृ. 11
5. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, समकालीन सिद्धांत और साहित्य, पृ. 16
6. परमानंद श्रीवास्तव, कल्पना पत्रिका, पृ. 14
7. विजेन्द्र, कृतिओर पत्रिका, पृ. 2
8. रोहिताश्व, समकालीन कविता और सौन्दर्यबोध, पृ. 15 – 16
9. मैनेजर पांडेय, अनभैसाँचा, पृ. 2
10. बलदेव वंशी, समकालीन कविता : वैचारिक आयाम, पृ. 17
11. कल्याणचंद्र, समकालीन कविता और काव्य, पृ. 12
12. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, समकालीन सिद्धांत और साहित्य, पृ. 14
13. वही, पृ. 14
14. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, समकालीन कविता की भूमिका, पृ. 3
15. रोहिताश्व, समकालीनता और शाश्वतता, पृ. 179
16. डॉ. नरेन्द्र मोहन, कविता की वैचारिक भूमिका, पृ. 23
17. डॉ. पी. सत्यवती, समकालीन कविता में व्यक्त सामाजिक राजनीतिक व्यंग्य, पृ. 7
18. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, समकालीन सिद्धांत और साहित्य, पृ.14
19. संपा. नरेन्द्र मोहन, समकालीनता और हिन्दी कहानी का छठा दशक, इन्द्रप्रस्थ भारती, पृ.38
20. मैनेजर पांडेय, अनभैसाँचा, पृ. 2
21. संपा. नरेन्द्र मोहन, समकालीनता और हिन्दी कहानी का छठा दशक, इन्द्रप्रस्थ भारती, पृ.38
22. लक्ष्मीकांत वर्मा, नयी कविता के प्रतिमान, पृ. 264
23. अरूण कमल, कविता और समय, पृ. 234
24. आलोचना पत्रिका, पृ. 90
25. वही, पृ. 43
26. मंगलेश डबराल, आवाज भी एक जगह है, पृ. 58
27. लीलाधर जगूड़ी, ईश्वर की अध्यक्षता में, पृ. 29
28. मंगलेश डबराल, हम जो देखते हैं, पृ. 77
29. परमानंद श्रीवास्तव, कविता का अर्थात्, पृ. 267

30. लीलाधर जगूड़ी, भय भी शक्ति देता है, पृ. 18
31. गोरख पांडेय, जागते रहो सोने वालों, पृ. 202 – 203
32. मंगलेश डबराल, हम जो देखते हैं, पृ. 77
33. वही, फ्लैप से
34. लीलाधर जगूड़ी, ईश्वर की अध्यक्षता में, पृ. 49
35. विनोद कुमार शुक्ल, सब कुछ होना बचा रहेगा, पृ. 48
36. आलोक धन्वा, दुनिया रोज बनती है पृ. 86
37. मंगलेश डबराल, हम जो देखते हैं, पृ. 84
38. उदय प्रकाश, रात में हारमोनियम, पृ. 21
39. एकांत श्रीवास्तव, अन्न हैं मेरे शब्द, पृ. 104
40. अरूण कमल, सबूत, पृ. 20
41. kavitakosh.org/kk/प्रेमपत्र/बद्रीनारायण
42. www.jankipul.com/2010/10/blog-spot oct 16
43. कुमार अंबुज, किवाड़, पृ. 58
44. लीलाधर जगूड़ी, भय भी शक्ति देता है, पृ. 92
45. kavitakosh.org/kk/भागी हुई लडकियाँ/आलोक धन्वा
46. लीलाधर जगूड़ी, भय भी शक्ति देता है, पृ. 86
47. उदय प्रकाश, रात में हारमोनियम, पृ. 96
48. मदन कश्यप, नीम रोशनी में (कविता) कवि ने कहा, पृ.18
49. आलोक धन्वा, दुनिया रोज बनती है, पृ. 58
50. अशोक वाजपेयी, कविता का जनपद, पृ. 131
51. लीलाधर जगूड़ी, बची हुई पृथ्वी, पृ. 107
52. कुमार अंबुज, किवाड़, पृ. 36
53. लीलाधर जगूड़ी, ईश्वर की अध्यक्षता में, पृ. 78

अध्याय – 2

हिन्दी की समकालीन कविता और विजेन्द्र

भूमिका

2.1. हिन्दी की समकालीन कविता का अतीत एवं वर्तमान

2.1.1. पचास का दशक

2.1.2. साठ का दशक

2.1.3 सत्तर का दशक

2.1.4 अस्सी का दशक

2.1.5 नब्बे के दशक से अद्यतन

2.2. हिन्दी के प्रमुख समकालीन कवि

2.2.1 नागार्जुन

2.2.2. त्रिलोचन

2.2.3. केदारनाथ अग्रवाल

2.2.4. सुदामा पांडेय 'धूमिल'

2.2.5. लीलाधर जगूड़ी

2.2.6. चन्द्रकांत देवताले

2.2.7. उदय प्रकाश

2.2.8. राजेश जोशी

2.2.9. मंगलेश डबराल

2.2.10 अरूण कमल

2.2.11. भगवत रावत

2.2.12. कुमार अंबुज

2.2.13. लीलाधर मंडलोई

2.2.14. अनामिका

2.3 हिन्दी की समकालीन कविता और विजेन्द्र

2.4 निष्कर्ष

अध्याय – 2

हिन्दी की समकालीन कविता और विजेन्द्र

भूमिका

15 अगस्त 1947 को प्राप्त स्वतंत्रता हमारे समय की महत्त्वपूर्ण घटना है। आजादी के बाद ही भारतीय समाज में तेजी से परिवर्तन हुए और साहित्य भी इन परिवर्तनों से प्रभावित हुआ। इन प्रभावों के फलस्वरूप साहित्य के क्षेत्र में अनेक काव्यात्मक प्रयास किए गए, किंतु साहित्य के क्षेत्र में परिवर्तन आकस्मिक घटना की तरह नहीं आते हैं। कभी – कभी आकस्मिक प्रतीत होते हुए भी वे युगीन दृष्टि तथा सामाजिक ढाँचे में आये बदलावों का परिणाम होते हैं। परिस्थितियों के बदलाव और परिवर्तनों के साथ ही मूल्य और प्रतिमान भी बदलने लगते हैं। मुक्तिबोध ने कहा है –'कोई भी नया साहित्यिक आंदोलन उन विशेष कालगत स्थितियों में पैदा होता है, जिन्हें हम सामाजिक विकास की महत्वपूर्ण श्रृंखला कहते हैं।'[1] हिन्दी की समकालीन कविता का अतीत जानने के लिए साहित्य के इतिहास के विकास को जानना आवश्यक है।

2.1 हिन्दी की समकालीन कविता का अतीत एवं वर्तमान

हिन्दी साहित्य में आधुनिक युग का प्रारंभ भारतेन्दु युग से ही हो जाता है, क्योंकि 1917 की रूसी क्रांति से समस्त शोषित देश एशिया और अफ्रीका प्रभावित हुए थे। इसलिए मार्क्सवादी सिद्धांतों के बीज भारतेन्दु और द्विवेदी युग से ही दिखाई पड़ते हैं। स्वयं भारतेन्दु और द्विवेदी जी युगीन परिस्थितियों के प्रभाव से धीरे – धीरे बौद्धिक चिन्तन को अपनाने पर जोर दे रहे थे। उनके मानवतावाद में देव, ईश्वर और आत्मा की पौराणिकता की अपेक्षा तर्क और बुनियादी व्यवहार पर अधिक बल दिया जा रहा था। इतना जरूर कहा जा सकता है, कि कुछ कवियों को छोड़कर, इस परिवर्तन का आधार मार्क्सवादी चिन्तन न होकर, तत्कालीन युग पुरूषों, सुधारकों और महात्माओं का सामाजिक आंदोलन था। इसी समय मार्क्स के विचारों से प्रभावित कुछ कवियों ने लिखना पढ़ना शुरू किया, जो सन् 1934 के तक आते आते प्रगतिवादी काव्यधारा कहलाई। इस काव्यधारा के विचारकों में दो भेद थे। पहला उनका, जो सीधे – सीधे राजनीतिक विचार प्रवाह के साहित्यिक रूपांतर थे और दूसरे वे, जिन्होंने छायावादी साहित्यिक आदर्शो और मनोदशाओं के विरूद्ध तीव्र प्रतिक्रियाएँ की थी। ये दूसरे प्रकार के लेखक सन् 1939 से ही छायावादी आदर्शभूमि को वैचारिक दृष्टि से त्याग रहे थे। उनका सबसे महत्त्वपूर्ण विरोध इस बात से था कि छायावाद ने अर्थभूमि को संकुचित कर दिया है। छायावादी मनोदशा वास्तविक जीवन

का प्रतिनिधित्व नहीं करती, इसलिए उसमें जिन्दगी की असलियत लापता है। यही वह मूल प्रक्रिया थी, जो उस समय छायावाद के विरूद्ध की गई थी। अतः प्रगतिवाद की धारा छायावाद के विरूद्ध प्रतिक्रियास्वरूप तो आई और उन वायवीय आदर्शों के खिलाफ भी जो मनुष्य के जीवन संबंधी समस्याओं पर विचार नहीं करते।

हिन्दी साहित्य के लिए 1935 से 1940 तक का समय संक्रमण काल का समय है। छायावाद की अंतिम उपलब्धि कामायनी का प्रकाशन 1936 में हुआ और निराला जी की 'वह तोड़ती पत्थर' रचना 1935 में प्रकाशित हुई। पंत जी ने भी इसी समय 'युगांत' की घोषणा कर दी। यहाँ यह कहना जरूरी है, कि कुछ अपवादों को छोड़कर छायावाद के सभी कवि मार्क्सवाद से प्रभावित हुए थे। स्वयं महादेवी वर्मा इस संदर्भ में कहती हैं – 'छायावादी काव्य व्यष्टिगत की समष्टिगत परीक्षा में अनुत्तीर्ण रहा। अतः काव्यक्षेत्र में प्रतिक्रिया का आगमन अनिवार्य था और उसी के परिणामस्वरूप एक नवीन काव्यधारा, एक नवीन काव्य प्रवृत्ति ने जन्म लिया जिसे प्रगतिवादी संज्ञा से अभिहित किया गया।'[2]

2.1.1. पचास का दशक

हिन्दी कविता का पचास का दशक राष्ट्रीय आंदोलन की सक्रियता और राजनीतिक परिवर्तन का साक्षी रहा है। 1942–43 में भारत छोड़ो आन्दोलन की घोषणा हुई। ऐसे में राजनीतिक स्तर पर भारतीय शासक वर्ग के लिए अपना राजनीतिक वर्चस्व कायम रखना आसान न था। यदि कुछ अपवादों को छोड़ दें, तो समूचा लेखन प्रगतिशील साहित्यिक विचारधारा से प्रभावित था। 15 अगस्त 1947 को एक लम्बे संघर्ष के बाद भारत आज़ाद हुआ। आजादी के साथ देश का बँटवारा भी हुआ। स्वतंत्रता संग्राम को नैतिक और सक्रिय समर्थन देने वाले किसी भी साहित्यकार ने स्वतंत्र भारत के खण्डित रूप की कल्पना नहीं की थी। इसलिए साहित्यकारों और कवियों की पुरानी पीढ़ी को मानसिक आघात लगा। बाद की पीढ़ी के रचनाकारों को भी विभाजन की त्रासदी और उसके परिणाम स्वरूप भीषण सांप्रदायिक दंगों की अमानवीय स्थिति ने विचलित कर दिया था। इसलिए उस समय और उसके बाद भी इस त्रासदी से जुड़े हुए मानवीय संकट को लेकर कई महत्त्वपूर्ण रचनाएँ सामने आती हैं। देश के स्वतंत्र होने के बाद हमारा संपर्क यूरोप, रूस, अमेरिका आदि देशों के साथ बढ़ा। द्वितीय विश्वयुद्ध की ज्वाला में इन देशों के पारम्परिक सांस्कृतिक मूल्य जलकर राख हो गए थे। भारत के संदर्भ से देखें तो यह स्थिति दिखाई देती है, कि दूसरे विश्वयुद्ध का उत्तरकाल अनेक स्तरों पर अप्रत्याशित समाजवादी उभार से जूझ रहा

था। अपनी तरफ से विश्व पूँजीवाद ने कमर कस ली थी, सब नैतिकताओं और जीवन मानदंडों को ताक पर रखकर, किसी भी कीमत पर जनाकांक्षाओं से गहरे स्तर पर जुड़े समाजवादी उभार को नियंत्रित करना है। मसलन, उस समय विश्व पूँजी की सबसे बड़ी बाधा बना था, पूरी मनुष्यता द्वारा समर्थित शांति अभियान, और इस अभियान को अंतर्राष्ट्रीय समाजवाद ने थाम रखा था। शीत युद्ध की हताशामूलक रणनीति इसी पृष्ठभूमि में सोची गई थी। हिन्दी में इस शीतयुद्धीय रणनीति को सांस्कृतिक पटल पर लागू करने के लिए निरंतर प्रयास किए गए। यह दिलचस्प है कि इसी समय भारत में तथाकथित राष्ट्रनिर्माण का बिगुल बजा और स्वाधीनता आंदोलन से उत्साहित मध्य वर्ग के सामने विकास का दरवाजा खुल गया। नई कविता का आगमन होता है और हमारे समक्ष आधुनिक भावबोध को लेकर, दो महत्वपूर्ण कवि आते हैं एक अज्ञेय और दूसरे मुक्तिबोध। अज्ञेय अस्तित्त्ववादी मूल्यों से टकराते हैं। खुले आकाश की तरह बाह्य प्रभाव को सभी ओर से आत्मसात् करने वाले नयी कविता के पुरोधा अज्ञेय ने स्वीकार किया – 'प्रस्तुत संग्रह में अनुवादों को छोड़कर अन्य कविताओं में भी पूर्व के (और पश्चिम के भी क्यों नहीं) प्रभाव मिलेंगे, लेखक सभी का स्वीकारी है। बन्द घर में प्रकाश पूर्व या पश्चिम या किसी भी निश्चित दिशा से आता है– पर खुले आकाश में वह सभी ओर से समाया रहता है, इसी में उसका आकाशत्व है।'' (अरी ओ करूणा प्रभामय, भूमिका से) इस स्वीकार के बावजूद, मनुष्य की नियति की गंभीर चिन्ता करते हुए अज्ञेय भारतीय दर्शन के अमरता और जीवन प्रियता के सिद्धान्त को विशेष महत्त्व देते हैं। अपनी परवर्ती रचनाओं में उन्होंने स्वाधीनचेता रचनाकार की सृजनशीलता को सर्वोपरि माना है। असाध्यवीणा में केशकंबली के माध्यम से वे बताते हैं कि अहं के पूर्ण विसर्जन या आत्मदान के अर्पण से ही सृजनशीलता संभव है –

'श्रेय नहीं कुछ मेरा,
मैं तो डूब गया था स्वयं शून्य में
वीणा के माध्यम से अपने को मैंने,
सब कुछ सौंप दिया था।
सुना आपने जो वह मेरा नहीं,
न वीणा का था,
वह तो सब कुछ की तथता थी।'[3]

अज्ञेय मृत्यु को इसी सृजन से जवाब देना चाहते हैं। वे मानते हैं, कि मृत्यु के आतंक की छाया में बौना बनकर जीने से अच्छा है, अमरता में विश्वास करते हुए प्रेम और वेदना के क्षणों को नित नूतन कल्पना सृष्टि या सर्जन की प्रक्रिया में पर्यवसित करते चलना। इस प्रकार आधुनिक बोध को नया अर्थ देने और प्रकृति, मनुष्य और प्रविधि के बीच सन्तुलन स्थापित करने के प्रयत्न में अज्ञेय काव्यानुभूति को जिस अनुपात में दर्शन की ऊँचाई तक ले जाने में सफल हुए हैं, उसी अनुपात में वे सामान्य जन के अनुभव संसार से अलग भी हुए है।

नयी कविता के दूसरे कवि मुक्तिबोध हैं, जो पश्चिमी आधुनिकता की नकारात्मक प्रवृतियों को स्वीकार नहीं करते। वे जीवन को समग्रता में ग्रहण और धारण करना चाहते हैं। समकालीन जीवन स्थितियों के प्रति उनमें गहरा असन्तोष है। वे समाज को बेहतर बनाना चाहते हैं। वे मनुष्य को भीतर और बाहर दोनों ही स्तरों पर बदलना चाहते हैं। वे आधुनिक भावबोध को नयी कविता की आत्मा मानते हैं, लेकिन उसकी व्याख्या अपने ढंग से करते है –'आधुनिक भावबोध क्या है? मै अपनी खुद की जिंदगी के तजुर्वे से बता सकता हूँ कि अन्याय के खिलाफ आवाज़ बुलंद करना, आधुनिक भावबोध के अन्तर्गत है। आधुनिक भावबोध के अन्तर्गत यह भी है, कि मानवता के भविष्य निर्माण के संघर्ष में हम और भी अधिक दत्तचित्त हों तथा हम वर्तमान परिस्थिति को सुधारें, नैतिक ह्रास को थामें, उत्पीड़ित मनुष्य के साथ एकात्म होकर उसकी मुक्ति की उपाय योजना करें। क्या वह आधुनिक भावबोध के अन्तर्गत नहीं है, कि मैं अपनी लेखनी द्वारा किसी विशेष लोकादर्श के लिए कविता लिखूँ।'[4] मुक्तिबोध के यह कथन इस बात का साक्षी है कि नयी कविता के सन्दर्भ में स्वीकृत आधुनिक भावबोध के अन्तर्गत उत्पीड़ित मनुष्य के साथ एकात्म होकर उसकी मुक्ति के लिए संघर्ष करने और उसके नैतिक ह्रास को थामने की कोई योजना नहीं थी। व्यापक तर्कबद्ध चिंतन एवं सामाजिकता की अवधारणा पर हमले हो रहे थे। इनको स्वप्नशील और अमूर्त कहकर खारिज किया जा रहा था। शासकीय सोच ओर तत्कालीन राजनीति दोनों मिलकर संवेदनशील कवि की क्षमता को कुंद कर देना चाहती थी, दमन कर देना चाहती थी। मुक्तिबोध टिप्पणी करते हैं – 'किसी भी देश का औद्योगीकरण, मशीनों को बनाने वाली मशीनों से शुरू होता है, किंतु इस ओर न भारतीय सरकार काम कर रही है, न कोई प्रभावशाली पार्टी ही आवाज लगा रही है। जिस साम्राज्यवादी पूँजी से हमारे उद्योगपति संबद्ध हो रहे हैं, साम्राज्यवादी देश हमें बुनियादी कारखाने खोलने नहीं देते। इस प्रकार भारत की औपनिवेशिक स्थिति को बनाए रखते हैं। जब तक हमारे यहाँ विदेशी पूँजी का राष्ट्रीयकरण नहीं होता, और बुनियादी कारखाने नहीं खुलते, तब तक यह कहना कि हम देश की पुनर्रचना कर रहे हैं, बिल्कुल

असंगत है। कहना न होगा कि भारतीय आर्थिक स्थिति, सच्ची आर्थिक स्वाधीनता, और साम्राज्यवाद से मुक्ति हमें तभी प्राप्त हो सकती है जब हम भारतीय बाजार का विदेशी शोषण बंद कर दें।'[5] इस समय की कविता की एक और विशेषता यह है कि इस समय की कविता की काव्य भाषा में गुणात्मक परिवर्तन हुआ। कविता की भाषा में मुक्त छंद का प्रयोग होने लगा कविता बोलचाल के अधिक निकट हो गई।

2.1.2. साठ का दशक

साठ का दशक राजनीतिक एवं विचारधारात्मक उथल – पुथल का काल है। इस गहरी उथल पुथल को भारतीय राजनीतिक पटल पर साफ देखा जा सकता है। इस दशक में एक साथ चार घटनाएँ ऐसी हुई कि उसने शासक वर्ग के साथ – साथ जन मानस को भी हिलाकर रख दिया था। ये घटनाएँ थी, भारत चीन युद्ध, साम्यवादी पार्टी का विभाजन, देशव्यापी आम चुनाव में कांग्रेस विरोधी लहर और सात राज्यों में गैर कांग्रेसी सरकारों का गठन, और बैंकों का राष्ट्रीयकरण। इस दशक की कविता का पूरा हाल बौखलाहट भरा और कल्पनातीत था। लेखन के व्यापक स्तर पर भूखी पीढी, बीटनिक पीढी, श्मशानी पीढी, आदि आ गई थी, और कविता को नकारने वाले अ–कवि साहित्यिक समाज विचार के सभी कानून और नियमों को तोड़ने पर आमादा थे। देश की स्थिति चिन्तनीय थी, भ्रष्टाचार और मूल्यहीनता के कारण समाज का सारा ढाँचा जर्जर हो गया था। इसी निराशा, अराजकता, और दिशाहीनता के माहौल में अमरीकी कवि गिन्सबर्ग भारत आया था। उसके यौनवाद के प्रभाव में आकर हिन्दी के युवा कवियों ने अकविता का आन्दोलन चलाया। राजकमल चौधरी की अगुआई में कैलाश वाजपेयी, जगदीश चतुर्वेदी, और सौमित्र मोहन जैसे कवि साथ थे। इस आन्दोलन का पूरा स्वर नकारात्मक था। व्यवस्था से असंतोष और बात है किंतु व्यवस्था को पूरी तरह नकार कर सब कुछ ध्वस्त कर देना किसी भी प्रकार से साहित्यकार के लिए ठीक नहीं था। गनीमत यह रही कि यह आन्दोलन शीघ्र ही समाप्त हो गया। परमानंद श्रीवास्तव इस संदर्भ में लिखते है 'अकविता वस्तुतः कोई काव्य आन्दोलन नहीं, इधर के कविता के इतिहास की मामूली दुर्घटना है।'[6]

इसी दशक के कवि रघुवीर सहाय जैसे कवियों ने अकवितावादियों द्वारा की जा रही साहित्य की हत्या के विरूद्ध प्रखर विरोध दर्ज कराया। अपनी पूरी शक्ति से लोकतंत्र की विडंबनाओं को उजागर करके कविता को राजनीति से जोड़ा। उन्होने मध्यवर्ग की कायरता और निराशा को तोडकर व्यंग्य रचना के माध्यम से एक ऐतिहासिक भूमिका अदा की। हमें यह कहना चाहिए कि

अपने व्यापक अर्थ में इन कवियों ने हिन्दी के संस्कृतिपटल को वह तस्वीर दिखलाने का काम किया जिसकी अनदेखी शीतयुद्धीय मूल्यों की वाहक नई कविता करती थी। इन कवियों ने एक अन्य सकारात्मक काम यह भी किया कि उसने शिक्षित मध्य वर्ग को प्रतिक्रिया करने तथा विरोध जताने का साहस प्रदान किया।

2.1.3. सत्तर का दशक

सत्तर के दशक में काव्य लेखन का चरित्र पूरी तरह बदल गया था। लेखकीय अभिव्यक्ति और साहसपूर्ण वक्तव्य के लिए सत्तर का दशक जोखिम भरा था। उस समय छोटी वामपंथी पत्रिकाओं ने ही असर छोड़ा। दूसरी ओर सरकारी और अर्द्धसरकारी संस्थानों से जुड़ी पत्र – पत्रिकाएँ भी शीतयुद्धीय प्रभाव को बरकरार रखे हुए थी। निजी पूँजी से जुड़े 'धर्मयुग' और 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' कुछ बुझ गए थे। न उनमें पहले जैसी ऊर्जा थी और न जोश। ऐसा इसलिए था कि ये व्यावसायिक हो चली थी। इस दशक में व्यक्ति लेखकों को प्रतिष्ठा दिलाने वाली पत्रिकाएँ कम ही थी। ऐसे में कोलकाता से श्री हर्ष और विमल वर्मा द्वारा संपादित 'सामयिक', इलाहबाद से मार्कडेय द्वारा संपादित 'कथा', आरा से चंद्रभूषण तिवारी द्वारा संपादित 'वाम' जैसी पत्रिकाओं ने हल्ला कर दिया। इन सभी पत्रिकाओं में वैचारिक लेखों, विश्लेषणों और तीखी कविता कहानियों की प्रधानता थी। हर पत्रिका में बहस और असहमति पर विशेष बल था। सामग्री चयन की चारित्रिकता का यह आलम था, कि नागार्जुन की 'सामयिक' में प्रकाशित कविता 'अब तो बंद करो हे देवी, यह चुनाव का प्रहसन' तत्कालीन राजनीतिक हिंसा का सच सामने लाती थी, ज्ञानरंजन की 'कथा' में प्रकाशित कहानी 'घंटा' तेज तर्रार मुहावरों का इस्तेमाल करती हुई सांस्कृतिक पतन की तस्वीर दिखलाती थी, और वाम में छपी इसराइल की कहानी 'फर्क' तथा वहीं अन्य पृष्ठों में प्रस्तुत कविता संबंधी बहस सामाजिक – राजनीतिक जीवन की कड़वी सच्चाई पाठक को बतलाती थी।

इस दशक का लेखनशैली भी कमोबेश बदलती जा रही थी। वामपंथी अभियान ने जोर पकडा और हिन्दी रचना का पूरा मुहावरा बदल गया। अचानक ही, शोषण, अन्याय, असमानता, संघर्षशीलता, प्रतिबद्धता, दृष्टिकोण, ऐतिहासिक संदर्भ, मनुष्यता, परिप्रेक्ष्य, कालबद्धता जैसे शब्दों ने बिंब, प्रतीक, ध्वनि, क्षण, मानव नियति, अस्तित्व, सन्नाटा, अकेलापन, मौन, अंतर्मन, अपरिभाषेय जैसे शब्दों को अपदस्थ कर दिया। भाषागत एक अन्य महत्त्वपूर्ण परिवर्तन परिवेश की अस्वीकृति के संदर्भ में भी देखने को मिला। अकविता के एकतरफा वैयक्तिक प्रहारों के स्थान पर विषय

संबंधी टिप्पणियाँ आ गई। इस वैचारिक अनुशासन का दबदबा इस कदर बढ़ा कि झगड़ालू लेखकों, रचनाकारों को गोष्ठियों में जाना भारी पड़ने लगा। कारण था कि उन्हें तर्क प्रस्तुत करने का मजबूर किया जाता था। जो लेखक परंपरागत अर्थ में प्रेरक समझे जाते थे उनकी चमक भी इस दशक के उत्तरार्द्ध तक आते – आते फीकी पड़ गयी थी। इसका असर यह हुआ कि पूर्व के लेखकीय संदर्भ आज के विपरीत हो गए। पुराने 'आइकॉन' अप्रभावी और निरस्त हो चले थे। इस दशक में एक खास बात और हुई, वह यह, कि साहित्यिक कृतियों का मूल्यांकन और विश्लेषण की नई परंपरा विकसित हुई। कृतियों की न केवल व्याख्याएँ बढ़ी वरन् धीरे – धीरे कृतियों का आकलन भी होने लगा। धीरे – धीरे यह आकलन मूल्यांकन तक जा पहुँचा, जिसके अधीन कृतियों का परखा जाने लगा। साहित्यालोचन के इस नये रूप का प्रभाव लेखन पर पडना आवश्यक था। संभवतः इस कारण रचनाकारों का ध्यान पाठकीय प्रतिक्रियाओं की ओर न जाकर अकादमिक व्याख्या एवं आलोचकीय आकलन और मूल्यांकन की ओर बढ़ा। निश्चित रूप से इसके दुष्परिणाम सामने आए और कृतियाँ पूरी तरह अकादमिक आलोचनाओं की मुहताज हो गई। पाठक से तो रचना कटी ही साथ ही वह ऐसे कुछ पर केन्द्रित होने पर बाध्य हुई, जो आलोचक की दृष्टि में महत्त्वपूर्ण था। जिस रचना को यह स्वीकार न था वह हाशिए पर चली गई। पचास और साठ के दशकों में जो रचना हाशिये पर गई, उसके रचयिता थे नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, मुक्तिबोध, शमशेर बहादुर सिंह आदि। यह भी अकारण न था कि मुक्तिबोध के जीवन काल में उनका कोई काव्य संग्रह न छपा।

इस दशक में यह भी स्पष्ट हो गया था, कि साहित्य के भीतर जनसमर्थक स्वरों की अपनी स्वतंत्र पहचान होनी आवश्यक है। इस दशक में निकली छोटी पत्रिकाओं ने समाज की वास्तविक परिस्थितियों के मददेनजर साहित्य पर गंभीर विचार शुरू किया, तो लेखन संबंधी सवालों एवं प्रवृत्तियों में नई प्राथमिकताएँ गढ़ना आवश्यक जान पड़ा।

कविता के प्रसंग में यह महसूस किया गया कि चिंतन को पूरी गहनता से मुक्तिबोध की ओर जाना होगा, जहाँ तत्कालीन परिवेश के उलझे एवं जटिल सवालों का विशद् विश्लेषण उपलब्ध है। बाकी प्रगतिशील व्याख्याताओं से अलग मुक्तिबोध ने 'नये' को स्वीकारते हुए उस पर टिप्पणी की थी। साथ ही, उन्होने शमशेर, और पंत की कविता के हवाले से वैचारिकता, सघनता, और कलात्मकता के अधीन जो व्याख्या साहित्य रूप की थी, वह मूलतः सृजन और सामाजिकता के जुड़ाव पर आधारित थी। इस पक्ष की व्याख्या का उत्कृष्ट उदाहरण भी मुक्तिबोध की अपनी

कविता थी, जहाँ राजनीति, समाज, और विचारधारा का सामंजस्य देखा जा सकता था। सबसे बडी चीज थी क्रांति के लिए ललक और दूसरी यह समझ कि वर्तमान दौर में पूँजीवाद की भूमिका पूर्णतः मानव विरोधी है। सत्तर के दशक में मुक्तिबोध इन दो चीजों के लिए जाने गए, और इन्हीं के इर्द – गिर्द तत्कालीन छोटी पत्रिकाओं का चरित्र विकास हुआ।

इसी दशक में छोटी पत्रिकाओं की गतिमान सक्रियता के साथ साथ नागार्जुन, शमशेर, त्रिलोचन और केदारनाथ अग्रवाल का हिन्दी काव्य रचना के केन्द्र में फिर से आगमन हुआ। अपने अपने ढंग से ये चारों कवि निराला की ऐंद्रिकता, गीतमयता एवं संलग्नता को आगे बढ़ाते थे और उसमें अपनी तरफ से विविधता, प्रयोगधर्मिता एवं मूर्तता जोड़ते थे। ये सब जल्द ही प्रगतिशील जनवादी चेतना के नये आइकॉन बने। इन्होने एक पूरी पीढ़ी का निर्माण किया और उसमें ये सफल भी हुए। इस नई पीढ़ी में माहौल को पढ़ने व्याख्यायित करने के साथ – साथ अपनी ओर से कुछ कहने का ताल्लुक बातचीत से था। अर्थात् यह पीढ़ी अपने पाठक श्रोता को बातचीत में उलझाने की कायल थी। उससे संवाद कायम करना चाहती थी, ताकि कालांतर में एक तरह सोचने वालों की पूरी जमात तैयार हो जाए। स्वतंत्रता पश्चात् की यह काव्य पीढ़ी आज हिन्दी रचना के शीर्ष पर आसीन है और इस पीढ़ी के मुख्य नाम है – कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह, विजेन्द्र, कुमार विकल, शलभ श्रीराम सिंह, श्रीराम तिवारी, नंद भारद्वाज, श्रीहर्ष, आलोक धन्वा, मनमोहन आदि।

2.1.4. अस्सी का दशक

1975 में आपातकाल लागू किया गया और दो वर्ष बाद 1977 में देश का वह ऐतिहासिक चुनाव हुआ, जिसने भारत के पूरे राजनीति तंत्र और साथ ही व्यापक बूर्जुवा व्यवस्था को हिला दिया। भारतीय आवाम ने जिस शिद्दत और तीव्रता के साथ चुनाव में हिस्सा लिया, इतिहास में उसकी मिसाल शायद ही मिले। दिलचस्प बात यह है कि इस चुनाव में जनता ने जाति, धर्म, क्षेत्रीयता, भाषा आदि की परवाह किए बगैर एकजुट होकर इंदिरा गाँधी द्वारा लागू आपातकाल का तख्ता पलटा था। सारे राजनीतिक दल भौंचक थे। सवाल था इस सामाजिक ऊर्जा को दिशा देने का। इसे विडंबना कहें, कि किसी भी राजनीतिक दल या गठबंधन में इस काम को अंजाम देने का सामर्थ्य नहीं था। तब सही ही जिस गठबंधन की सरकार बनी, उसे 'जनता पार्टी 'कहा गया। हालाँकि अस्सी का दशक आते – आते देश की सरकार कांग्रेस के हाथों में फिर से आ चुकी थी। इस पर हिन्दी लेखन की कुछ प्रतिक्रिया हुई और वह क्या थी? इसका निश्चित जवाब देना कठिन है फिर भी कुछ आवश्यक बातें इस संबंध में कही जा सकती है।

जनता पार्टी की सरकार के बनने से आम लोगों में कुछ चेतना का संचार हुआ। लेकिन बिल्कुल उसी समय शासकीय ताकतों में असाधारण जागृति देखी जा सकती थी। कांग्रेस का प्रचार – तंत्र सक्रिय हो चुका था और उसे धीरे – धीरे उद्योगपतियों, व्यापारियों का समर्थन मिलने लगा था। परिणामतः कांग्रेस ऐसी पार्टी के रूप में प्रतिष्ठित होने लगी थी जो सरकार चलाना जानती थी। जाहिर है अवाम को 'पटरी' पर लाया जा रहा था। जहाँ तक हिन्दी लेखन का सम्बन्ध है, सी.पी.आई. द्वारा परिचालित प्रगतिशील लेखक संघ का मुलम्मा उतर गया था और एकाएक कितने ही प्रतिष्ठित रचनाकार, चिन्तक, आलोचक आदि सड़क पर आ गए थे। अस्सी का दशक शुरू होते होते गैर सी.पी.आई. वामपंथी लेखकों को यह जरूरत महसूस होने लगी थी कि लेखकों का 'स्वतंत्र संगठन' बनना चाहिए। एक वर्ष के भीतर ही 'जनवादी लेखक संघ' की जोरदार शुरूआत हुई। आपातकाल और नये चुनावो के बाद जो स्थिति सामने उभरी थी, उसे देखते हुए नए लेखकीय परिप्रेक्ष्य की परिभाषा एवं व्याख्या आवश्यक हो गई थी। लेखकों ने यह माना कि यह उत्सव की नहीं कठिन संकट की घडी है, क्योंकि लेखकों में बिखराव है। समय की चुनौतियों के साथ – साथ रचनाकारों को अपने वैचारिक आग्रहों का भी सामना करना होगा। यह सही भी है कि तीव्र वैचारिक विश्लेषण से ही सही परिप्रेक्ष्य विकसित किया जा सकता है।

जनवादी लेखक संघ के बनने के दो तीन वर्ष बाद ही कुछ अन्य संगठन भी बने। इन संगठनों का बनना क्या कहता है। ऐसा इसलिए कि कुछ जनवादी लेखकों की राय थी, कि लेखक संगठनों का मुख्य काम विचारधारात्मक होता है और उनका मंच की तरह उपयोग करके लेखन को अधिकाधिक सामाजिक हस्तक्षेप के लिए तैयार करना चाहिए। लेकिन वक्त के चलते ये संगठन केवल काव्य शास्त्र विनोद के 'क्लब' मात्र बनकर रह गये, जहाँ मित्रभाव से कोई भी आ जा सकता था। जब विचारात्मक निर्देश का काम इस अंदाज में होने लगा हो तो सामान्य रचनाकार की प्रेरणा और आदर्शशीलता के चरित्र की कल्पना की जा सकती है। इसके चलते विचारधारा के क्षेत्र में उक्त लेखकीय आवाजाही का असर यह पड़ा कि तीखे राजनीतिक मतभेद का स्थान 'आम सहमति' ने ले लिया। परिणाम यह हुआ कि लेखक के द्वारा लिये जाने वाले स्टेंड (''बशर्ते किस ओर हो तुम'') का अर्थ अमूर्त पूँजीवाद विरोध हो गया, और साथ ही लेखक के लिए पूँजीवादी संस्थानों में प्रवेश के रास्ते खुल गये। लेखकों एवं संगठनों ने प्रायः मान लिया कि सरकारी– अर्द्धसरकारी संस्थान की सदस्यता, वहाँ के पुरस्कार, अनुदान, आदि लेते हुए भी गंभीर लेखकीय भूमिका संभव है, चूँकि लेखकीय भूमिका का संबंध रचना से होता है, रचना बाहर व्यवहार से नहीं। प्रतिबद्ध लेखन की यह व्याख्या पचास, साठ, और सत्तर के दशकों में न की

जा सकती थी। अस्सी के बाद के दशकों में यह व्याख्या हतप्रभ करती है। यही कारण है कि अस्सी के दशक का लेखन अराजक हुआ, जहाँ भाषागत खिलवाड़, मुहावरों की आक्रामकता, यांत्रिकता विरोध के नाम पर दृष्टिकोण का लचीलापन आदि रचना को प्रभावित करने लगे।

2.1.5. नब्बे के दशक से अद्यतन

1990 के दशक के आरंभ में भारतीय बाजार ने भारतीय समाज को अपनी गिरफ्त में ले लिया। चारों तरफ बचाओ – बचाओं की प्रतिध्वनि सुनाई देने लगी। कोई कवि घर बचाना चाहता था, कोई संबंध, कोई मनुष्यता, कोई हल, कोई जाति इत्यादि। सब के सब कवि कुछ न कुछ बचाने में लगे हुए थे। 1992 में बाबरी मस्जिद से लेकर गुजरात के गोधरा में भी इन कवियों ने अपना कुछ ढूँढा। 'जहाँ समाज है, वहाँ कला है' का मुहावरा चला। यह वह समय था, जब राजनीति के पास आदर्श नहीं, धर्म के पास नैतिकता नहीं तो साहित्य से किस मुँह से उम्मीद की जा सकती थी। 1991 में सोवियत संघ का विघटन हुआ और दुनिया एक ध्रुवीय हुई। अमेरिका ने दुनिया के बाजार पर भूमंडलीकरण का आकर्षक नारा दिया। बहुराष्ट्रीय कंपनियों का भारत में आगमन हुआ। हमारे देश में भी खुले बाजार व प्रतिस्पर्द्धा के लाभों की निरंतर चर्चा के चलते वैश्वीकरण को पॉपुलर किया गया। सरकार को उद्यमो और उद्योगों से बाहर किये जाने का काम किया गया। पश्चिम के माल के साथ पश्चिम की भाषा का आगमन हुआ और पश्चिम की संस्कृति भी भारत में आ गई। क्रिकेटर भगवान बनना शुरू हो गए, टेलीविजन मनोरंजन का सबसे बड़ा साधन हो गया। आज एक नया समाज बन गया है, 'अपराधों में वृद्धि, मनोरंजन के व्यापार में शो बिजनेस के साथ – साथ मुक्त यौनाचार, उद्दाम संगीत और अश्लील साहित्य का हमारे यहाँ उद्योग बन चुका है। पूरी जीवन शैली का अमेरिकीकरण हो चुका है, दूर दराज के उन क्षेत्रों में जहाँ लोगों को साफ पेय जल या सड़के या अन्य मौलिक सुविधाएँ भी उपलब्ध नहीं हैं, टी. वी. की पहुँच के कारण लोग काल्पनिक दुनिया व यथार्थ में फर्क करना भूल गए हैं।'[7] अस्सी के दशक की अराजकता में वृद्धि हुई है। रचनाकार एकसाथ आत्मबद्ध भी है और समाज के प्रभावों का ग्रहणकर्ता भी। आत्मबद्ध होकर रचनाकार ने भूमिका की बात को सिरे से नकार दिया है। इसके विपरीत उसका रवैया एक तरह की अकादमिकता से परिचालित है। उसे अपने काम को अभ्यासजनित कुशलता से अंजाम देना है। उसका काम भी मात्र यह है कि प्रचलित विषयों पर प्रचलित दृष्किोण से टिप्पणी करे। नए दबावों के बीच आज का रचनाकार छपता है, चर्चित होता है, और इस तरह उत्तरोत्तर निजी सफलता की दिशा में बढ़ता है। उसकी लेखकीय सक्रियता

का मूल सिद्धांत स्वीकार्यता है। कवि यह समझने लगा है, कि कविता के लिए 'जीवन में धँसने की जरूरत नहीं है।' इन्हीं संदर्भो को केन्द्र में रखकर पी. रवि लिखते हैं– 'एक साधारण सा प्रश्न उठा रहा हूँ क्या कारण है कि इधर के तीन दशकों में तीस से ज्यादा महत्त्वपूर्ण कवि तो हमारे पास है। आप चाहें तो मैं इनका नाम गिना सकता हूँ, लेकिन तीस महत्वपूर्ण कविताएँ नहीं हैं? ।'[8]

आज विचारधारा का स्रोत ओझल हो रहा है कविता संकट की ओर है, ऐसे में हमें समस्या की जड़ की तलाश करनी होगी, तभी साहित्य बचेगा। 'समकालीन कविता के साथ एक अजीब बात हो रही है, कि एक पढ़ा – लिखा पाठक या श्रोता भी उसमें आये ब्यौरों को केवल सूचना के स्तर पर ग्रहण कर रहा है। कविता आज पढ़े – लिखे श्रोता या पाठक को झकझोर नहीं पा रही है, तो क्या कविता में कहीं कोई कमी है या यह श्रोता या पाठक ही किसी दूसरी मिट्टी का बना हुआ है।'[9]

इसका दूसरा समस्यामूलक पक्ष भी है। अब चूँकि सवाल पूर्व की अपेक्षा बहुत बदले हैं, इसलिए प्रस्तुत चुनौतियों का स्वरूप विचारधारात्मक से अलग बौद्धिक हो गया है। परिदृश्य का महत्त्व इतना बढा है, कि उसने वर्ग के प्रश्न को केन्द्र से निष्कासित करने की वृहत् योजना तैयार कर ली है। अंतर्राष्ट्रीय पूँजी के बढ़ते नियंत्रण, बाजार के वर्चस्व, भूमंडलीकरण का आकर्षण, संचार माध्यमों के अभूतपूर्व विस्तार और साम्राज्यवादी देशों की आक्रामक राजनीति ने सामान्य नागरिक की विवेकशीलता लगभग छीन ली है।

इस प्रकार आज के परिदृश्य में कविता में चिंतन और भावबोध की गहनता के स्थान पर यांत्रिक और अमूर्त बौद्धिकता ने जगह बना ली है।

2.2. हिन्दी के प्रमुख समकालीन कवि

हिन्दी कविता में आजादी के बाद जो बदलाव हुए उन्हें संवेदनात्मक स्तर पर अनेक कवियों ने आत्मसात किया। वह कवि जो आजादी से पहले राष्ट्रीय ताना बाना लेकर अपने रागात्मक संवेद के साथ कविता करता था, वह आजादी के बाद से परिवर्तित हो गया। कारण था कि जिस स्वतंत्रता का सपना सँजोए उस युवक ने इस देश की आजादी के लिए लड़ाई लड़ी वह केवल सपना होकर रह गया। सच्चा लोकतंत्र अब भी उससे दूर था। सन् 60 के दशक के साथ ही कवि बैचेन हो उठा और उस तलाश में जुट गया जिसके चलते उसका मन टूट गया था। ऐसे

में कवियों की एक विशिष्ट श्रृंखला हमारे सामने आती है, जिनके समकाल को लेकर हम क्रमशः विवेचन करेंगे। इस विवेचना के दो लाभ होंगें। एक हम कवि कर्म और उसके समकालीन संदर्भ को समझेंगे और दूसरा कविता में निहित जीवन संवेदना को जिसे कवि ने भोगा और अपनाकर कविता में पिरोया। यहाँ मूल्यांकन की दृष्टि नहीं है केवल परिचयात्मक विवेचन ही है।

2.2.1. नागार्जुन

हिन्दी कविता में आधुनिकता और उसके प्रतिमानों को चुनौती देने वाली नागार्जुन की कविता की अपनी एक अलग पहचान है। नागार्जुन कबीर, निराला और भारतेन्दु की परंपरा के वे कवि हैं, जिन्होने अपनी कविता को फक्कड़, प्रतिरोधी ओर लोक चेतना से संपन्न बनाया है। जनोन्मुख संवेदना और सहज लोकधर्मिता इनकी कविता की वह विशेषता है, जिसे आधुनिकतावादी कविता के दौर में हाशिए की कविता कहा गया। यह वह समय था जब कविता के सामाजिक आयाम सिकुड़ते जा रहे थे और एक तरह का खास 'रूपवाद' जन्म ले रहा था, जो हताशा, कुण्ठा, अकेलापन, अजनबीपन, व्यर्थताबोध जैसे आयातित अभिप्रायों की कलात्मक अभिव्यक्ति में ही सार्थक हो सकता था। इसके बावजूद जब जन आंदोलनों का उभार आया तो नागार्जुन की कविता गली, नुक्कड़ों से होकर बाजार ओर मैदानों तक गूँजने लगी। समकालीन कविता के इस पुरोधा कवि की कविता की खासियत, उसका ठेठ देहाती लहजा और भारतीय जड़ों से उसकी सम्बद्धता है। नागार्जुन प्रतिबद्ध कवि हैं। उनकी कविता पूँजीवादी व्यवस्था और पूँजीवादी राजनीति को चुनौती देती है। मनुष्य को विभाजित करने वाली व्यवस्था पर सीधे दबाव डालती है। अपनी कविता 'प्रतिबद्ध हूँ' में दो टूक लहजे में उन्होंने लिखा –

'प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, प्रतिबद्ध हूँ
बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित्त
संकुचित स्व की आपाधापी के निषेधार्थ
अविवेकी भीड़ की 'भेड़िया थसान' के खिलाफ
अंध बधिर व्यक्तियों को सही राह बतलाने के लिए
अपने आप को भी 'व्यामोह' से बारम्बार उबारने की खातिर
प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, शतधा प्रतिबद्ध हूँ।'[10]

इस प्रकार वे समाज तथा साहित्य में फैलती व्यक्तिवादी संकुचित, स्वार्थी प्रवृत्ति, अविवेक, अज्ञानता का निषेध करते हुए सामान्य मनुष्य को प्रगति के निमित्त अपनी प्रतिबद्धता घोषित करते हैं। वे अपने समय की सामाजिक, राजनीति और आर्थिक विसंगतियों को चित्रित करते हैं। समाज में व्याप्त बेरोजगारी, भुखमरी, अकाल, गरीबी, दरिद्रता तथा अभावभरी जिन्दगी का यथार्थ उनकी कविता में दिखाई देता है।

'खाली है हाथ
खाली है पेट
खाली है थाली
खाली है प्लेट।'[11]

नागार्जुन की कविता में कहीं भूखे खेतिहरों की संवेदना और व्यथा है, तो कहीं एक – एक पैसे के लिए गंगा में कूदने वाले बच्चों के जीवन संघर्ष है। कहीं वेतन के अभाव में भूख से लड़ते मास्टर की पीड़ा है तो कहीं मजदूर की वेदना है। जनता के प्रति इतनी संवेदना व्यक्त करने वाले कवि को विष्णुचंद्र शर्मा ने 'सक्रिय जनवाद का पक्षधर कवि' संबोधित किया है।'[12] आजादी के बाद जनतंत्र का ह्रास किया गया। पूँजीवादी ताकतों द्वारा समानता, बंधुत्व और स्वतंत्रता को कुचला गया। जिस जनतंत्र के लिए लोगों ने अपनी कुर्बानी दी, उस जनतंत्र में अपनी कोई भूमिका नही पाकर आमजन का मोहभंग हुआ और वह पूँजीपतियों के मायाजाल को समझा। उसे अहसास हुआ कि वह खादी और मलमल के बीच की शोषित कड़ी है। पहले गोरे शोषक थे अब काले शोषक है–

'खादी ने मलमल से अपनी साँठ गाँठ कर डाली है
बिड़ला, टाटा, डालमिया की तीसों दिनों दीवाली है
जोर जुलुम की आँधी चलती बोल नहीं कुछ सकते हो
समझ न पाता हूँ कि हुकूमत गोरी है या काली है।'[13]

नागार्जुन अपने दायित्व को भली भाँति समझते थे। अपने प्रारंभिक जीवन में उन्होंने भी कल्पना का काव्य लिखा, परंतु जनसाधारण के बीच जीवन निर्वाह करते नागार्जुन को मिथ्या कल्पना की

बातें अधिक दिन तक न रिझा सकीं। उनका मानना है कि कल्पना यथार्थ का सौन्दर्य नहीं है वे भावुक मन का पलायन है अतः उन्होनें जन गीत गाया और कहा –

'मैं भी तो पहले देखा करता था सपने
साथी, अब तो रंग – ढंग ही बदल गये हैं......
समझ गया हूँ
कैसे जनकवि जमींदार के उन अमलों का मार भगाता
हरे बाँस की हरी हरी वह लाठी लेकर।'[14]

संक्षेप में महेश चंद्र पुनेठा के शब्दों में – जन मन में ऊर्जा भरने वाले नागार्जुन उन कवियों में रहे हैं जिन्होंने कविता को पहले अपने जीवन में रचा, फिर कागज में। ये साधारण जनों की तरह सोचते तथा आचरण करते थे। इनकी कविता इनके जीवन से दूर नहीं रही। ये कविता में जिससे प्रेम करते हैं उससे जीवन में भी प्रेम करते रहे और जिससे कविता में नफरत की तो बस जीवन में भी नफरत की।'[15]

2.2.2. त्रिलोचन

समकालीन कविता में निराला की परंपरा के कवि, त्रिलोचन वे कवि हैं, जिन्होंने हिन्दी कविता में सॉनेट के माध्यम से अपनी उपस्थिति दर्ज करायी। सॉनेट जैसे विजातीय काव्यरूप को हिन्दी की छंद प्रकृति या भाषायी बनावट के अनुसार नया संस्कार देने की सामर्थ्य उनके अतिरिक्त और किसी में नहीं हो सकती। जीवन से गहरा लगाव, जन के साथ सहज तादात्म्य, संघर्ष में तप कर निखरते जीवन के प्रति निष्ठा इनकी कविता की विशेषता है। जब निराला ने 'वह तोड़ती पत्थर' लिखकर साहित्य में नयी चेतना का प्रसार किया था। तो त्रिलोचन ने उसी चेतना को विस्तारित कर लिखा –

'दीन हीन छवि क्षीण और व्याकुल ईश्वर को
आज सड़क पर हाथ पसारे मैंने पाया।'[16]

प्रगतिवाद में गरीबों के नाम पर बड़ा शोर शराबा हुआ स्वर्ग लूटने के लिए प्रेरित किया गया। नारेबाजी के शोर में गरीब की भूख का कोई समाधान नहीं निकला। तब त्रिलोचन को कहना पड़ा कि शब्दों की चकाचौंध से नहीं समाधान के चिन्तन से समस्या हल होगी–

'कोई भूखा हो तो उसको ला कर रोटी
दो, मत लंबी चौड़ी बात बनाओं इस की
उस की।'[17]

लोकतंत्र में कवि की आस्था है, परंतु जब लोकतंत्र केवल सत्ता पाने का जरिया बन जाए तो कवि ऐसी व्यवस्था से घृणा करता है–

'ये चुनाव के दिन हैं नाटक और तमाशे
नए नए होंगे, ठनकेंगे ढोलक ताशे।'[18]

वे ऐसी व्यवस्था को चुनौती देते हैं, जो जनता के गाढ़े पसीने के रूपयों से अपनी सुविधाओं के लिए लालायित रहते हैं। देश की जनता के प्रति जिनका कोई दायित्व नहीं है, उसे उखाड़ फैंकने के लिए जन को आह्वाहित करते हैं। वे उस ललकार को आवाज देते हैं, जिसने देश की आजादी में अपना खून समर्पित किया था। नेताओं को अपदस्थ करने के लिए वे पुकारते हैं–

'सड़ी व्यवस्था के विरूद्ध विद्रोह के लिए
मैं ललकार रहा हूँ उस सोई जनता को
जिसको नेता लूट रहे हैं।'[19]

त्रिलोचन की कविता का एक पक्ष लोक कल्याण भी है। उनका मानना है कि भारत में सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया की संस्कृति है जहाँ भेद का कोई स्थान नहीं है। इस संस्कृति में जाति, लिंग, देश, काल आदि सब मिथ्यावत हैं। अतः हम सभी को मिलकर इस पृथ्वी को सुंदर और सफला बनाने की ओर प्रयत्न करना चाहिए। कवि कामना करता है–

'हम तुम इसी जगत के प्राणी
इसी जगत ने दी है वाणी
इसको नव निर्मित करने में
हो हम तुम सक्रिय कल्याणी।'[20]

कवि अपने पराये के भेद को भुलाकर विश्व कल्याण की कामना को वाणी देता है। वह सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हुए समाज में फैले अंधकार को दूर करने और आन बान शान की रक्षा के लिए पुकारता है। सामाजिक समानता लाने के लिए साम्राज्यवाद, सामन्तवाद, और व्यक्तिवाद को उखाड़ फैंकने के लिए जनता का आह्वान करता है। कवि संघर्ष को सौन्दर्य मानता है। उसका मानना है कि दुख को गाने से कुछ नहीं होगा। हमें आघात सहन करके भी पुनः संभलना चाहिए। अपने अधिकारों और स्वाभिमान के लिए लड़ने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए।

इस प्रकार त्रिलोचन ने अपनी कविताओं में किसानी संस्कार को जिया है। भारतीय किसान के जीवन को आवाज दी है, उनकी कविताओं में निराशा दुख और पीड़ा है पर उसका समर्थन नहीं है बल्कि उसके स्थान पर इन सबसे लड़ने को हौंसला है। उनकी कविता हिम्मत और साहस की कविता है जो प्रत्येक काल में प्रासंगिक है।

2.2.3. केदारनाथ अगवाल

केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं का आरंभ मार्क्स लिखना शुरू करते है। कुछ आरंभिक रचनाओं में छायावादी प्रभाव भी दिखाई देता है, फिर भी उनकी कविताओं में वे आम जन की पीड़ा के अधिक नजदीक हैं। सामान्य जन की व्यथा और संघर्ष का चित्रण उन्हें साम्यवादी व्यवस्था की ओर ले आता है। इनकी रचनाओं में लाल किरन, लाल सबेरा, रूस और चीन की भरपूर प्रशंसा दिखाई देती है। लेकिन कालांतर में इनकी रचनाओं में गरीब, दलित, शोषित के संघर्ष की दास्ता, उनकी बदहाली, रोजी – रोटी के लिए दिन रात कड़ी मेहनत आदि के चित्र दिखते है। 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' में वे गरीब की जिजीविषा और जीवन संघर्ष को लिखते है–

'आदमी का बेटा

गरमी की धूप में भाँजता है फड़ुआ
हड्डी को देह को तोड़ता है
खूब गहराई से धरती को खोदता है
काँखता है, हाँफता है मिट्टी को ढोता है
गन्दी आबादी के नाले को पाटता है।'[21]

केदार के यहाँ मजदूर का संघर्ष, उनका मेहनतकश आदमी का संकल्प और पसीना उनके लिए बड़ी बात है। इसके आगे बड़े –बड़े दर्शन और सिद्धान्त फेल हो जाते हैं। जो किसान धरती का सीना फाड़कर अन्न उगाता है और जिससे मानव समाज अपने पेट की आग बुझाता है, वह किसान किसी भगवान से कम नहीं है। उसी किसान जीवन की दशा का चित्रण कवि करता है–

'जब बाप मरा तब पाया
भूखे किसान के बेटे ने
घर का मलवा, टूटी खटिया
कुछ हाथ भूमि वह भी परती
बनिया के रूपयों का कर्जा
जो नहीं – चुकाने पर चुकता
दीमक, गोजर, मच्छर, माटा
ऐसे हजार सब सहवासी
बस यही नहीं, जो भूख मिली
अब पेट खलाए फिरता है।
चौड़ा मुँह बाए फिरता है
वह क्या जाने आजादी क्या?
आजाद देश की बातें क्या?।'[22]

केदार की कविताओं में सर्वहारा के सभी चित्र है। पेट की आग बुझाने के लिए पलायन कर रोजी – रोटी को भटकने वाले, कल कारखानों में काम करने वाले श्रमजीवी, पैतृक सम्पत्ति में भूख को प्राप्त करने वाले, विपत्ति में जीवन पूरा कर देने वाले, रिक्शा चलाने वाले जैसे लोगों का चित्रण

करते है वे उनकी दुर्दशा पर मार्मिक संवेदना रखते है साथ ही उस पूँजीवादी मानसिकता को कोसते है जो देश के सभी सुविधाओं पर अपना हक जमा कर बैठै है।

'वह पुरानी सभ्यता के राजपथ पर
पेट के बल मंद गति से रेंगता
श्वान के संग भूख अपनी मेटता
शासकों के कटु दमन की यंत्रणा से
शोषकों के कटु अपहरण की यातना से
रक्त के कुल्ले उगलकर मर रहा है।'[23]

भारत की स्वाधीनता के बाद रामराज्य की परिकल्पना की गई थी पर रामराज्य नहीं आया। जहाँ दो जून की रोटी और पीने को पानी नसीब नहीं हो वहाँ आजादी की क्या उम्मीद की जा सकती है, ऐसे में त्रस्त होकर खिन्न मन से केदार 'आग लगे इस रामराज में' कहकर लोकतंत्र से निराश होते हैं –

'काट काट रात बड़ी काटे नहीं कटती
चाट – चाट ओस पड़ी प्यास नहीं घटती
सूँघ सूँघ शुष्क फूल भूख नहीं मरती
देख देख रामराज पीर नहीं तजती।'24

अंत में यह कहना समीचीन होगा कि केदारनाथ अग्रवाल हिन्दी की उस जनपक्षधर कविता के संवाहक हैं, जिन्होंने कविता को जन की कविता बनाया। उनके संघर्ष उनकी उम्मीदों को वाणी दी। भविष्य की उस आवश्यकता को बताया जो जीवन की जरूरत है और जिसका नाम समता और समाजवाद है।

2.2.4. सुदामा पांडे 'धूमिल'

1960 के बाद जिस काव्यधारा का विकास हुआ, उसकी एक धुरी धूमिल थे। उनका काव्य स्वस्थ एवं जनकेन्द्रीय काव्यधारा के विकास का समर्थक और प्रवर्तक रहा है। धूमिल ऐसे व्यक्तित्व है जिनका प्रभाव आगामी कवियों में किसी न किसी रूप में दिखाई पडता है। धूमिल की कविता का आरंभ वहाँ से होता है, जहाँ युवा लेखकों के बीच प्रखर सामाजिक चेतना व प्रतिबद्धता के कवि मुक्तिबोध की कविता व व्यक्तित्व की लोकप्रियता बढ़ने लगती है। कवि की रचनात्मकता का मानदंड जीवन हो जाता है और जीवन ही उसे दिशा प्रदान करता है।

धूमिल की कविता अपने निर्भय परिवेश की आलोचनात्मक पहचान कराती है। अधिकांश कविता प्रजातंत्रीय व्यवस्था में घुसे अप्रजातंत्रीय तत्त्वों के परिणामस्वरूप शोषित, जनता की मोहभंग मानसिकता ही नहीं, बल्कि तथाकथित सुराजियों के असली, भयावह चेहरों से हमारा साक्षात्कार कराती है, जिनकी बदौलत हमारी आजादी तीन थके हुए रंगो को ढोने वाले पहिये में तब्दील हो रही है –

'क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढोता है
या इसका कोई खास मतलब भी होता है।'[25]

और प्रजातंत्र 'एक ऐसा तमाशा / जिसकी जान मदारी की भाषा है / संसद भवन प्रवंचना भवन बनता जा रहा है।' क्योंकि रोटी से खेलने वाले बिचौलिये संसद भवन में बड़ी बड़ी कुर्सियों पर विराजमान हैं। राजनीतिक ढोंग, छल, पाखण्ड और उसकी मानव विरोधी हरकतों पर धूमिल की कविता प्रहार करती है।

'एक आदमी रोटी बेलता है
एक आदमी रोटी खाता है
एक तीसरा आदमी भी है
जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है
वह सिर्फ रोटी से खेलता है
मैं पूछता हूँ

वह तीसरा आदमी कौन है
मेरे देश की संसद मौन है।'[26]

धूमिल प्रजातंत्र का मखौल उड़ानें वालों के सख्त खिलाफ हैं, वे प्रजातंत्र में विश्वास करते हैं। आज आदमी ही आदमी का दुश्मन है। देश में लोकतंत्र के नाम पर गन्दगी जमा होती जा रही है। केवल तंत्र की शेष रह गया है। धूमिल प्रजातंत्र के विरूद्ध चल रहे इस षड्यंत्र का खुलासा करते हैं–

'न कोई प्रजा है
न कोई तंत्र है
यह आदमी के खिलाफ
आदमी का खुला सा
षड्यंत्र है।'[27]

साम्राज्यवादी ताकतों के चलते देश में पूँजीवादी सक्रियता बढ़ी है। स्वाधीन देश की जनता को इन ताकतों ने पालतू बना लिया है। आज आम आदमी इन ताकतों के आगे नतमस्तक है।

'सचमुच मजबूरी है
मगर जिंदा रहने के लिए
पालतू होना जरूरी है।'[28]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि धूमिल की कविता उन समकालीन मूल्यों के लिए आज भी संघर्षरत दिखाई देती है।

2.2.5. लीलाधर जगूडो

समकालीन कविता में धूमिल के बाद लीलाधर जगूड़ी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। जगूड़ी अपनी कविता का आरंभ अकविता से करते हैं, लेकिन धीरे – धीरे अकविता की प्रवृत्तियों से

अपने को मुक्त कर लेते हैं और सामाजिक दायित्व बोध उनकी कविता सृजन में दिखाई देने लगता हैं। समकालीन राजनीति, जनतंत्र, स्त्री – पुरूष सम्बन्ध, भाषा या कविता, जंगल और पेड़, पहाड़ और कभी – कभी प्रकृति उनके काव्य के प्रमुख विषय रहे हैं। व्यवस्था के आतंक और खतरे का विरोध और मुक्ति, स्वतंत्रता और अंकुर विकास की आकांक्षा यही जगूड़ी की बुनियादी काव्य चिन्ता है। भारतीय जनता की यातना उसके संघर्ष और उसके विद्रोह को जगूड़ी ने अभिव्यक्त किया है। राजनीतिक भ्रष्टाचार, सत्ता लोलुपता, तात्कालिक स्वार्थ, क्षेत्रीयता, जातिवाद, पूँजीवादी व्यवस्था और सामन्तवादी रूझान को जगूड़ी के काव्य ने बेनकाब किया है।

'ऐसी प्रधानमंत्री की इच्छा है – वे कहेगें तुम हमें चुनो
हम सब कुछ बदलकर रख देंगे
उसके बाद भी अगर भूख की बात करे तो यह प्रधानमंत्री को सहन नहीं होगा
सब कुछ बिल्कुल तैयार है
सडकें। घर। कपड़े। पौष्टिक आहार।'[29]

जगूड़ी ने जनयोजनाओं के वास्तविक क्रियान्वयन को लेकर प्रशासन की बेरूखी पर क्षोभ व्यक्त किया है। वे विश्व में फैले आतंकवाद से चिन्तित है उनकी मंशा है कि उदारता और सहृदयता का विकास हो और हम इस नासूर से निजात पाएँ। सहृदयता, कृतज्ञता, धन्यवाद और प्रेम जैसे शब्द हमारे जन जीवन में विकसित हों वे सभी मे प्रेम देखना चाहते हैं–

'यह मेरा सौभाग्य था कि मुझे प्यार मिला
मै उसे धन्यवाद देना चाहता था
कृतज्ञ होना चाहता था
और हर जगह यहाँ तक कि हमेशा उसे पाना चाहता था।'[30]

जगूड़ी ने समसामयिक विषयों पर भी अपनी चिन्ता जाहिर की है। स्त्री विमर्श में कन्या भ्रूण हत्या जैसी सामाजिक विकृति को देखकर उनका मन बेचैन होता है। वे विचार करते है क्यों और कैसे इस मसले को उनकी कविता में जगह मिले। वे इस विषय पर अपना दृष्टिकोण इस प्रकार रखते है–

'दुनिया की सबसे बडी लड़ाई आज भी एक बच्चा लडता है
पेट के बल, कोहनियों के बल और घुटनों के बल
लेकिन जो लोग उस लड़ाई के मार्फत बड़े हो चुके
मैदान के बीचों बीच उनसे पूछता
कि घरों को भी खंदकों में क्यों बदल रहे हो
जानते हो यह उस बच्चे का खेल का मैदान हे
जो आज की दुनिया की सबसे बड़ी पहली लड़ाई लड़ता है।'[31]

इस प्रकार जगूड़ी ने अपनी कविताओं समाज का हर एक छोटी बड़ी बात जो आदमी से जुड़ती है, या आदमीयत के लिए जरूरी है, उसका विवेचन और वर्णन अपनी कविता में किया है। उनकी अन्य कविताओं में 'नाटक जारी है', 'वहाँ जरूर कोई दिशा है', 'उच्चैश्रवा', 'बलदेव खटिक' आदि उल्लेखनीय कविता है जो अपनी प्रदीर्घता या लम्बाई के साथ साथ वैचारिक चेतना की दृष्टि से प्रासंगिक है।

2.2.6. चन्द्रकांत देवताले

अपने परिवेश को सूक्ष्म स्तर पर मूर्त कर उससे शोषित और संघर्षरत जन चेतना की संयत और स्वाभाविक अभिव्यक्ति करने वाले कवियों में देवताले का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। वे प्रतिबद्ध कवि हैं, इसीलिए उनके काव्य में जहाँ एक ओर सामाजिक विसंगतियों अन्तर्विरोधों से जूझने का प्रयास है, तो दूसरी और एकदम निजी अनुभवों की अभिव्यक्ति भी है। देवताले की कविता के संदर्भ में महाश्वेता देवी कहती हैं – 'देवताले के काव्य में उद्दाम जिजीविषा है कवि ने निजी, पारिवारिक और सामाजिक जीवन के बिखरते मूल्यों, विडम्बनाओं को भी एक खास तेवर व त्वरा में अभिव्यक्त किया है, इसलिए उनमें मौलिकता और वैयक्तिकता है और इसी कारण वे केन्द्रीय पहचान बनाये हुए है। उनकी प्रतिबद्धता आम जन से, निम्न वर्गीय, मेहनतकश – शोषित और शासित जन से है।'[32]

देवताले की कविता की विशेषता को समझने में विष्णु खरे के विचार भी सहयोगी है। वे लिखते हैं– 'मानव जीवन के साथ चंद्रकांत की कविता का रिश्ता सुख – दुख की संगति का जागरूकता का ऐन्द्रियता का है।'[33] वे वैश्विक स्तर पर अपनी कविता का कथ्य आम आदमी से जोड़कर प्रस्तुत करते है। विश्व सम्मेलनों में आम के यथार्थ को दरकिनार कर खास के प्रति आत्मीयता से खिन्न इस कवि ने लिखा है–

'विश्व सण्डास सम्मेलन में क्यों नहीं
दिखाएँ शहरों के हाशियों, झुग्गी झोंपडियों
और गाँवों की औरतों के मुसीबतों वाले दृश्य
सत्तर प्रतिशत से आधी धरती
यानि गरीबों के मुकद्दर पर
कूड़ा करकट कचरा फैंकने वाले
मना रहें है अपनी बस्ती को अगाड़ी करने का महोत्सव
और बजट तैयारी और सपने दिखाने के दौरान ही
चमकती पर पोत कर डामर काट रहें है चाँदी के पहाड़।'[34]

देवताले देश में व्याप्त अनेक समस्याओं में साम्प्रदायिकता के प्रति अत्यन्त चिन्तित है। आस्था के नाम, जाति के नाम, धर्म के नाम फैले इस मायाजाल से आम आदमी का जीवन प्रभावित हो रहा है। गाँवों और शहरों में क्षेत्रवाद और जातिवाद के नाम पर झगड़े आम बात है। आजादी के सही मायनों को ढूँढ़ते हुए कवि कहता है–

'इतनी लूटपाट आगजनी
नदियों तक में लपटें
नर कंकाल और मछलियों तक की लाशें
क्षणभंगुर तहलकों घोटालों की आतिशबाजी
हमने भी दिया चंदा अपना हिस्सा दे सकते जितना
फिर भी हमारी बस्तियों में अँधेरा
घरों में भय फैलाती भूख के दानव की छाया

बताओं तो किन किन सितारा होटलों में।'[35]

भारतीय समाज में नारी की स्थिति पर होने वाले व्यवहार को चित्रित करते हुए उसके गौरवमयी होने के झूठे दम्भ को कविता में अभिव्यक्ति दी है–

'जो धक्के खा रहे हैं और भूखे हैं
बरसात उन पर भी रहम नहीं खाता.....
कूड़े करकट के बीच जितने बच्चे जने
क्या कुछ पता होगा उन औरतों को
पेट से होने का गर्व
और प्रसूति के सुख के बारे में।'[36]

इस प्रकार देवताले की कविता आम आदमी के सरोकारों को चित्रित करने वाली कविता है। सपाट बयानी और निर्मम भाषा का कविता में बैलौस इस्तेमाल करने वाले इस कवि ने अपनी मिट्टी और जन के लिए अपनी कविता को समर्पित किया है।

2.2.7. उदय प्रकाश

उदय प्रकाश जन सामान्य के कवि के रूप में विख्यात हैं। जन सामान्य के सुख – दुख को अभिव्यक्त करते हुए इनकी कलम मजदूर किसान, वृक्ष, पक्षी, और संसार की प्रत्येक रचनात्मक वस्तु को अपनी कविता में जगह देती है। आदमीयत और सादगी के पर्याय इस कवि के बारे में सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने लिखा है – 'सादगी उदयप्रकाश की कविताओं की जान है। जो हर उस आदमी से तुरंत रिश्ता कायम कर लेती है जो सामाजिक अन्याय शोषण की मार खाये उन लोगों के बीच बैठा रहा हैः, जिनके पास आन्दोलन और नारे नहीं हैं सिर्फ खाली अकेले न होने का अहसास भर है ये कविताएँ पाठक की संवेदना में बहुत कुछ ऐसा तोड़ – फोड़ कर जाती है, जिनके सहारे वह फिर कुछ नया रचने की जरूरत महसूस करने लगता। किसी भी यातना के कवि बिना उस यातना से मानसिक रूप से गुजरे हुए प्रेषित नहीं कर सकता। उदय प्रकाश की कविताएँ काफी कुछ इकी दुर्लभ मिसाल है।'[37]

आज़ादी की आधी सदी से अधिक बीत जाने के बाद भी देश से विपत्तियाँ जाने का नाम ही नहीं लेती। गरीब दिन रात अथक परिश्रम करने के बावजूद और अधिक गरीब होता जा रहा है। जिजीविषा का सपना पाले आम आदमी आज भी छोटी – छोटी खुशियों के लिए तरसता है–

'यह कच्ची
कमजोर सूत सी नींद नहीं
जो अपने आप टूटती है
रोज रोज की दारूण विपत्तियाँ है
जो आँखें खोल देती है अचानक.....।'[38]

आज के समकालीन परिवेश में भ्रष्ट प्रशासन ने आम आदमी को थका रखा है। भूखी जनता अपनी भविष्य की चिंता में डूबती उतरती इन्हीं के बीच हाँ में हाँ मिलाने को मजबूर है। सत्ता और पूँजी के इस खेल में आम आदमी हाशिये पर चला गया है। आज भी चुनाव और लोकतंत्र पूँजीवादियों के हाथों में है। खौफ के साये में जनता अपनी दैनिक आवश्यकताओं के लिए इनकी तरफ देखती है–

'राज्य सत्ता
अस्सी प्रतिशत लोगों की आँख में
बूट और बारूद की सत्ता है
पाँच प्रतिशत लोगों के हाथ में
मनमाना राज्य.......
अंततः राज्य सत्ता, सीसे की ढली हुई
दो औंस की गोली है।'[39]

लोकतंत्र में संवैधानिक समानता प्राप्त स्त्री को उदय प्रकाश ने अनुभव करते हुए लिखा है कि पुरूषवादी मानसिकता के चलते सामाजिक स्तर पर दूसरे पायदान पर है। इस पर भी पुरूष उसे अपने जीवन में केवल भोग के लिए ही देखना चाहता है। शिक्षित भारत में आज भी पुरूषों के

द्वारा महिलाओं पर होने वाले अत्याचार, यहाँ तक की कोख में ही मार देने का घृणित काम आज के युग में हो रहा है कवि ने इसका यथार्थ चित्रण करते हुए लिखा है–

'एक औरत तेजाब से जल गई है खुश है कि बच गई है
उसकी दाँयी आँख
एक औरत तंदूर में जलती हुई अपनी उँगलियॉ धीरे से
हिलाती है जानने के लिए कि बाहर कितना अँधेरा है....
हजारों लाखों छुपती हैं गर्भ के अँधेरे में
इस दुनिया में जन्म लेने से इन्कार करती हुई
वहॉ भी भ्रूण में उतरती है हत्यारी कटार।'[40]

उदय प्रकाश की कविताओं का एक अन्य पक्ष देश में फैला वर्ग भेद भी है। गरीब और गरीब होता जा रहा है और अमीर और अमीर। साम्राज्यवादी ताकतें अमीरों के पोषण में लगी हैं। कवि के मन में एक अकुलाहट है, कि कर्ज भी उसी को मिलता है जिसके पास पैसा हो ऐसे में गरीब की कौन सुनेगा। देश में फैली इस व्यवस्था के प्रति आक्रोशित होकर पूछता है–

'चलिए मै भी पूछता हूँ
क्या माँगू इस जमाने से मीर
जो देता है भरे पेट को खाना
दौलतमंद को सोना, हत्यारे को हथियार,
बीमार को बीमारी, कमजोर को निर्बलता
अन्यायी को सत्ता
और व्यभिचारी को बिस्तर।'[41]

इस प्रकार हम संक्षेप मे कह सकते हैं कि उदय प्रकाश की कविता में समकालीन समय में बढ़ रहे अन्याय, अव्यवस्था, अनाचार और अनमेल व्यवहार को अभिव्यक्ति मिली है।

2.2.8. राजेश जोशी

राजेश जोशी विपक्ष की संवेदना के कवि हैं। राजनैतिक, सामाजिक अन्तर्विरोधों को अपने परिवेश की द्वन्द्वात्मक शक्तियों की विरोधी सृजनाओं को पहचानने की कोशिश उनकी कविता में जरूर पायी जाती है, लेकिन उनकी कविता में आक्रोश, घृणा, संघर्ष, द्वन्द्व का वैसा स्वर नहीं मिलता जैसा जिज्ञासु मानवीय और कोमल भावों का मिलता है। उनकी कविता उन सब के विरोध में है जो परंपरा को नकारते है। केवल नयापन रचने वालों के वे खिलाफ है। वे चाहते है कि कवि कर्म में गंभीरता को भी स्थान मिले। वे लिखते हैं –

‘यह मूर्तियों को सिराये जाने का समय है
मूर्तियाँ सिराई जा रही हैं
दिमाग में सिर्फ एक सन्नाटा है
मस्तिष्क में कोई विचार नहीं
मन में कोई भाव नहीं
काले जल में मूर्ति का मुकुट
धीरे – धीरे डूब रहा है।’[42]

जोशी अपनी गुरूत्वाकर्षण नामक कविता में तीखे व्यंग्य के साथ देश के गिरते मानव मूल्यों के प्रति चिन्ता जाहिर करते है। न्यूटन के गुरूत्वाकर्षण के सिद्धांत को लक्ष्यकर वे कहते है कि आज दुनिया में गुरूत्वाकर्षण कम हो रहा है। मर्यादाओं का ह्रास, नैतिकता का पतन, बढती संवेदनहीनता, महिलाओं पर होने वाले अत्याचार, आजादी के बाद आज तक देश में पीने के पानी को तरसते लोग रोजगार के लिए पलायन जैसी समस्याएँ जस की तस है। इतना ही नहीं संसद में नेताओं की जबान फिसल रही है, संवाद समाप्त हो रहा है। इसे बचाना होगा –

‘न्यूटन जेब में रख लो अपना गुरूत्वाकर्षण का नियम
धरती का गुरूत्वाकर्षण खत्म हो रहा है।
अब तो इस गोलमटोल और ढलुआ पृथ्वी पर
किसी भी एक जगह पाँव टिकाकर खडे रहना भी मुमकिन नहीं
फिसल रही है हर चीज अपनी जगह से
कौन कहाँ तक फिसल कर जायेगा

किस रसातल तक जायेगी यह फिसलन
कोई नहीं कह सकता
हमारे समय का एक ही सच है
कि हर चीज फिसल रही है अपनी जगह से।'[43]

राजेश जोशी ने चिड़िया के माध्यम से अपने परिवेश में व्याप्त उन समकालीन सरोकारों को आवाज दी है जिनके लिए आज तक आम आदमी संघर्षरत है। आजादी के बाद अपने वजूद के लिए संघर्ष करते स्त्री की स्थिति को आवाज देने का काम उनकी कविता करती है। आज यह आधी आबादी अपने अस्तित्व को स्थापित करने के लिए कोशिश कर रही है, परंतु विकृत मानसिकता के चलते वह अपना सपना पूरा करना कठिन मान रही है। आज स्त्रियाँ देश में पूरी तरह सुरक्षित नहीं है। कामकाजी महिलाओं के प्रति भी पुरूष मानसिकता किसी से छुपी नहीं है। अपने घर में अपनों से प्रताड़ित होकर भी वह अत्यन्त सहनशील होकर परिवार की जिम्मेदारी निभाती है –

'एक चिड़िया
एकदम आसपास
हमारे साथ – साथ
अपने गीत और अंडे की हिफाजत
के लिए लड़ रही है
अपने दाने और तिनके के लिए लड़ रही है।'[44]

कवि चकाचौध को ही अपना जीवन मानने वाले और विकसित भौतिक जीवन को ही अपना ध्येय बना लेने वाले विचारकों के प्रति अपनी कविता 'प्रौद्योगिकी की माया' लिखते है। कवि का मानना है कि संवेदना शून्य होकर जीना वास्तविक जीना नहीं है। पारिवारिक, और मानवीय जीवन मूल्यों को ताक पर रखकर केवल आधुनिकता के दर्शन करना नवीन हो सकता है, परंतु जीवंत नहीं हो सकता। आज के परिवेश के घुटन, दबाव, संत्रास कहीं न कहीं आधुनिक भागदौड़ के कारण ही है। हमें अपने जीवनमूल्यों और खासकर घर परिवार को महत्त्व देना होगा।

'अचानक ही बिजली गुल हो गयी
और बंद हो गया माइक
ओह उस वक्ता की आवाज का जादू
जो इतनी देर से अपनी गिरफ्त में बाँधे हुए था मुझे
कितनी कमजोर और धीमी थी वह आवाज
एकाएक तभी मैंने जाना
उसकी आवाज का शासन खत्म हुआ
तो उधड़ने लगी अब तक उसके बोले गये की परतें।'[45]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि राजेश जोशी की कविताएँ समकालीन कविता की वह धुरी है जो अपने समय के उस आवाज का प्रतिनिधित्व करती है, जिसकी आज आवश्यकता है। मशीनी दौड़ में अपने आप को झौंक देने वाले मानव के जीवन की अनेक विडम्बनाओं के साथ साथ स्त्री के समानता के प्रश्न को भी वे अपनी कविता में रखते हैं। वे परिर्वतन के आकांक्षी कवि हैं।

2.2.9. मंगलेश डबराल

अतिक्रान्तिकारिता और बड़बोलेपन से अलग निहायत संजीदगी तथा मानवीय सरोकार के बुनियादी सवालों से जूझते जनचेतनावादी कवि के रूप में अपनी पहचान बनाने वाले कवि मंगलेश डबराल हैं। समकालीन कविता में मनुष्य को प्रकृति के साथ आत्मीयता से जोड़ने वाले कवि मंगलेश की कविताओं में सामान्य जन के दुख, नैराश्य, पीड़ा और अनेक विसंगतियों के चित्र मिलते हैं। आजादी के बाद आम आदमी के जीवन में आज भी अंधकार है, ऐसे में वे 'पहाड़ पर लालटेन' नामक रचना में यह प्रश्न करते हैं, कि इस आम आदमी के जीवन में कब बसंत आयेगा? आज भी आमजन त्रस्त है। उसके सपने आज भी सपने भर हैं। 'मुक्ति' नामक कविता में वे इस जन के आक्रोश को कहते हैं –

'मैंने नारों और वादों के लिजलिजे जाल में
उनकी भूख को एक मुस्तैद और नुकीले
पंजे में बदलते देखा है.......

अब भी जमीन हरी है दरारों में पानी की छरछराहट है
और हमारी भूख
जिसे हम सबसे ज्यादा मानते हैं।'[46]

कवि आम जन की जरूरत में रोटी, कपड़ा और मकान मानते है। लेकिन कवि जानता है कि आज भी न जाने कितने लोग अच्छे जीवन की आशा में अपने मूल स्थानों से पलायन कर गए हैं, तब भी उनको रोटी नसीब नहीं हो पा रही है, रोटी के चलते उनके सपने दब रहे हैं।

'यहाँ आते जाते मैंने
भूख के बारे में सोचा जो
दिन में तीन बार लगती थी
और चाहती थी थोड़ा सा अन्न
कर जाती थी थोड़ा सा पराजित
हर बार एक स्वप्न दब जाता था उसके नीचे।'[47]

मंगलेश इस भूखे जन की विवशता को जानकर भी उसे नीरस और अवसादित नहीं होने देता। आत्महत्या जैसे कदम उठाने वालों को वह जूझने की प्रेरणा देते है। वे उस जन को साहस प्रदान करते हैं, हिम्मत बँधाते हैं और उसे घर की ओर जाने के लिए कहते हैं। कवि कहता है कि कभी भी घर को नहीं भूलना चाहिए, जीवन में विपदाएँ आती हैं, परंतु उनका साहस के साथ मुकाबला करना चाहिए।

'मैं अपनी उदासी के लिए
क्षमा नहीं माँगना चाहता था
मैं नहीं चाहता था मामूली
इच्छाओं को चेहरे पर ले आना
मैं भूल नहीं जाना चाहता था
अपने घर का रास्ता।'[48]

मंगलेश ने उस स्त्री की आवाज को अपनी कविता में जगह दी, जिसे आज भी पुरूष के अहं का शिकार होना होता है। महिलाओं का जीवन पुरूषवादी मानसिकता के चलते स्वतंत्र नहीं रह पाता। सामाजिक मर्यादाओं के नाम पर और कभी – कभी धर्म के नाम पर उसका शोषण आम बात है। उसे हिदायत दी जाती है कि वह अपने पति के हर उस आदेश आँख बंद कर स्वीकार करे जिसे उसे कहा गया है। स्त्री की इस अनदेखी को वे इस प्रकार कहते हैं–

'एक आदमी के पीछे
चुपचाप एक स्त्री चलती है
उसके पैरों के निशान पर
अपने पैर रखती हुई
रास्ते भर नहीं उठाती निगाह।'[49]

अंत में मंगलेश डबराल कें कवि व्यक्तित्व को व्यक्त करती हुई विष्णु खरे की ये पंक्तियाँ उद्धृत की जा सकती हैं– 'आज की हिन्दी कविता में मंगलेश डबराल की कलात्मक और नैतिक अद्वितीयता इस बात में भी है कि अपनी शीर्ष उपस्थिति और स्वीकृति के बावजूद उनकी आवाज में उन्हीं के संगतकार की तरह एक हिचक है, अपने स्वर को न ऊँचा उठाने की कोशिश है लेकिन हम जानते हैं वे ऐसे विरल सर्जक हैं जिनकी कविताओं में उनकी आवाजें भी बोलती गूँजती हैं, जिनकी आवाजों की सुनवाई कम होती है।'[50]

2.2.10. अरूण कमल

जीवनधर्मी कवियों में अरूण कमल का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे केवल आशा, विश्वास, आस्था की स्वीकृति में ही जीवनधर्मिता को नहीं पहचानते, कठिन निराशा और अन्धकार में भी जीवनधर्मी लगावों को प्रकाश में लाते हैं। जीवनधर्मी काव्य में प्रेम, मानवीय करूणा, संघर्ष, उत्साह, आवेग जीवट, कर्म सौन्दर्य की पहचान, साहस, प्रकृति से लगाव, समय की चेतना, इतिहास बोध, वर्ग चेतना, जनपक्षधरता आदि के साथ वह विश्व दृष्टि भी निहित होती है, जो समाज के क्रांतिकारी बदलाव के लिये प्रेरणा देती है। सत्ताधीशों द्वारा नित नये तरीकों से जनता का शोषण किया जा रहा है, जनता त्रस्त है, न्यायाधीश जनता से सबूत माँगते हैं–

‘कहीं एक बूँद खून नहीं
जितना पवित्र है पहले थे
उतने ही पवित्र हैं आज भी, निष्कलुष
उनके खिलाफ कुछ भी सबूत नहीं
जो निर्दोष हैं वे दंग है, हैरत से चुप हैं
शक है उन पर जो निर्दोष हैं क्योंकि वे चुप हैं
क्योंकि वे चुप हैं।’[51]

अरूण कमल ने जन जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार के प्रति अपनी बेचैनी व्यक्त करते हुए कहा है, आज गली से दिल्ली तक सारा प्रशासन भ्रष्टता के दलदल में फँसता ही जा रहा है। लोकतंत्र में साफगोई के लिए पहचाने जाने वाले नेताओं की इस आगामी पीढ़ी ने केवल तंत्र और षडयंत्र पर ही अपना जोर दिया है –

‘मंत्रिमंडल की बैठक हमेशा देर रात
हर जरूरी फैसला आधी रात के बाद
फौज की तैनाती का हुक्म ढाई बजे रात
विरोधियों की नजरबंदी का आदेश मध्य रात्रि के इर्द गिर्द
विदेश मेहमान का विमानपतन पर स्वागत तीन बजे
हत्यारों से मंत्रणा किसी भी क्षण जीवन में नींद नहीं।’[52]

कहने को हमारा देश सुजलाम्, सुफलाम् है, परंतु देश में कुछ लोग आतंक, भ्रष्टाचार, अनाचार फैला रहे हैं। देश के अंतर्गत गुटबाजी तथा भयावह परिस्थिति निर्मित हुई है। इन स्थितियों से आम जन त्रस्त हैं। रोजगार की तलाश में गाँव से पलायन की समस्या को रेखांकित करने वाले कवि अरूण कमल लिखते हैं–

‘पंजाब तो बहुत खुशहाल है, निहाल सिंह?
सुनते हैं लोग वहाँ दूध और मट्ठे से तर हैं, निहाल सिंह

फिर तुम क्यों जाते हो पश्चिम बंगाल
बोलो निहाल सिंह?
कौन नहीं चाहता जहाँ जिस जमीन उगे
मिट्टी बन जाये वहीं
पर दो मट नहीं, तपता हुआ रेत ही है घर
तरबूज का,
जहाँ निभे जिन्दगी वहीं घर वहीं गाँव।'[53]

इस प्रकार अरूण कमल जीवन यथार्थ के मध्य, आम आदमी की विवशता और बेचैनी को अपनी कविता में जगह देकर देश के वास्तविक हालात से परिचय कराते हैं।

2.2.11. भगवत रावत

निम्न वर्ग की आशा, आकांक्षा को अपनी कविता में अभिव्यक्त करने वाले कवि के रूप में भगवत रावत स्मरणीय है। जन सामान्य के जीवन, श्रमिक और दलित की पीड़ा को आवाज देते हुए इनकी कविता उस जन का प्रतिनिधित्व करती है जो प्रतिदिन संघर्षरत है। इनकी एक कविता 'कचरा बीनने वाली लड़कियाँ' में इन्होंने सुबह के समय बीच चौराहों पर कचरा, कागज झूठे पत्तलों के बीच कुछ ढूँढने वाली लड़की का दृश्य अत्यंत मनोवैज्ञानिक रीति से किया है। कूड़ेदान से कचरा उठाने वाली लड़की, उसका काला मिट्टी जैसा बदन, उलझे बाल, फटे कपड़े, बेझिझक, अपने बदन को खुजलाती हुई इस लड़की को देख कवि को स्वाधीन भारत के सपनों की याद आती है–

'अपनी त्वरा पर कालिख की परतों पर चढ
बालों को जटा जूट की तरह
फैलाती बढ़ाती
बिना शरम लिहाज
शरीर को चाहे जहाँ खुजलाती
पसीने और पानी के छींटे से बनी

मैल की लकीरों वाले चेहरे पर
पीले दाँतों से
न जाने किसको मुँह चिढ़ाती
अपने पेट में
बच्चे तक उठा ले आती है
ये कचरा बीनने वाली लड़कियाँ।'[54]

रावत ने मानवीय और नैतिक मूल्यों के ह्रास पर भी अपनी चिंता व्यक्त की है। सड़क के बीच गटर में पड़े हुए एक बच्चे के रोने की आवाज सुनकर लोग इकट्ठे तो हो जाते हैं, परंतु कोई भी इस अभागे की सहायता को आगे नहीं आता। वसुधैव कुटुम्बकम् की बात करने वाले इस भारत में इससे सभी दूरी बना लेते हैं, क्योंकि यह गरीब, दलित, अनाथ और अस्पृश्य है।

'बच्चे का रोना पैदा करता है दिल में दया
इसलिए इस तरफ लोगों का ध्यान जाना जरूरी था
कुछ लोग फुरसत में यह दृश्य दूर से देख रहे थे
और उनके ऐन सामने देश के भविष्य का सवाल था।'[55]

पूँजीवादी समाज की तानाशाही, गरीब की मजबूरी, और व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार के साथ साथ रावत की कविताओं में निम्न मध्यवर्ग की त्रस्त जिन्दगी का चित्रण है, कोल्हू के बैल के समान जीवन भर संघर्ष करने वाले इन लोगों के जीवन को देखकर कवि को बेचैनी होती है–

'हमने चलती चक्की देखी
हमने सब कुछ पिसते देखा
हमने चूल्हे बुझते देखे
हमने सब कुछ जलते देखा
हमने देखी सूखी आँखे
हमने सब कुछ बहते देखा
कोरे हड्डी के ढाँचों से

हमने तेल निकलते देखा।'56

संक्षेप में कहा जा सकता है कि भगवत रावत आम आदमी की पीड़ा और व्यवस्था से सवाल करने वाले कवि है। आजादी के 67 वर्षो के बाद भी जनता मूलभूत आवश्यकताओं के लिए तरस रहे मानुस की व्यथा को आवाज देने वाले कवि हैं।

2.2.12. कुमार अंबुज

भ्रष्ट व्यवस्था का पर्दाफाश करते हुए आज के परिवेश में गिरते नैतिक और मानवीय मूल्यों के प्रति खिन्नता जताकर विरोध प्रकट करने वाले कवि के रूप में अंबुज का नाम उल्लेखनीय है। इनकी कविता में बाल मजदूरी, क्रूरता, हिंसा, अवसाद, अकेलापन जैसे मनोविकार दिखाई देते हैं साथ ही साथ इन मनोविकारों के कारणों को भी कवि ने अपनी कविता में व्यक्त किया है। कवि अपनी कविता में यह चिन्ता व्यक्त करता है कि किस प्रकार आज का मनुष्य बढते भौतिकतावादी मूल्यों के प्रति लालायित है। अपने मानवीय मूल्यों और गरिमा से युक्त व्यक्तित्व का उल्लंघन करते हुए आज मानव किस तरह एक दूसरे से प्रतिस्पर्धी होकर आगे बढने में मशगूल है। उसे केवल अपनी परवाह है अपने परिवेश की उसे कोई भी चिन्ता नहीं है। इन गिरते मानवीय मूल्यों से साबित हो जाता है, कि देश विकास नहीं पतन की ओर अग्रसर है। मॉल और होटल संस्कृति ने आम आदमी का जीना दूभर कर दिया है। बेहतर जिन्दगी की तलाश में भटकते हुए ग्रामीण लोगों के पलायन की व्यथा को भी अंबुज ने अपनी कविता में स्थान दिया है। कवि कहता है –

'नई ऊँची इमारतों का भय रोज चार कदम आता है करीब
जिनकी चमक दमक में ही छिपी
मेरे उजड़ने की दास्तान
यही है मेरा समाज
छिनती जा रही है जिसमें
एक मनुष्य के लिए खड़े होने के लिए भी जगह।'[57]

भूख इन्सान को पलायन के लिए मजबूर करती है। आज देश की लगभग आधी आबादी रोटी, कपड़ा और मकान जैसी मूलभूत आवश्यकताओं की प्राप्ति हेतु जूझ रही है वही पूँजीपतियों के कुत्तों तक के लिए विशिष्ट आवास और खान पान के माकूल इंतजामात देखकर आजादी और समाजवाद जैसे शब्दों के अर्थ बेमानी हो जाते है। यहीं से क्रांति का आगाज होता है और यहीं से कविता होती है।

कवि का मानना है कि आज भी पूँजीपतियों का शोषण निरंतर है। देश में फैली बेरोजगारी, पलायनवादी विवशता, भुखमरी, महँगाई, दरिद्रता, कुपोषण शोषण के विविध रूप हैं। पेट की आग के लिए मानव की त्रासदी का चित्रण अंबुज की कविता के ये शब्द करते हैं–

'एक रूपये में जूते चमका जाता है एक छोटा सा बच्चा
रिक्शे वाला चढाई पर भी उतरने नहीं देता रिक्शे से
एक स्त्री अपनी गोद में रखने देती है, उदास और थका सिर
फकीर गाता है सुबह का राग और भिक्षा नहीं देने पर भी,
गाता रहता है।'[58]

अंबुज का असंतोष इस बात को लेकर भी है कि भारत के विकास में अपना योगदान देने वाले आज के बच्चे बाल मजदूरी में फँसे हैं। जो बाल वर्ग कल का भविष्य है। देश का सपना है उसकी दुर्दशा को देखकर क्षोभ होता है। कवि कहता है–

'एक छोटा लड़का। आठ गिलास का छीका उठाकर
आस पास के कार्यालयों में देता है चाय
सबको चाय पीने तक देखता है सदा आँखों से
सबका चाय पीना
मैं एक नागरिक देखता हूँ नागरिक की तरह
धीरे धीरे अनाथ होता हूँ।'[59]

आज भारत का विकास इन समाजवादी जिम्मेदारियों में ही अवरूद्ध नहीं है, उसके सामने आतंकवाद क्षेत्रवाद जातिवाद नस्लवाद जैसे वाद और इनसे उपजे विवाद मुँह चिढ़ाते से दिखाई देते है। नस्लवाद और क्षेत्रवाद के चलते आज पूरा विश्व आतंकित है, अमरीका में अनेक बार इस्लामिक मूवमेंट के द्वारा हमले किए जाते रहें हैं। कवि ने इस विकृत मानसिकता और वीभत्स स्थिति को इस प्रकार बयान किया है–

'अफ्रीकी होता तो कितना सताया जाता है
यहूदी होता तो कितना दूर भागता गैस चैम्बर से
आदिवासी होता तो जी पाता कितने साल
मछली होता तो किस समुद्र में बच पाता
चुप रहकर कब तक बचता आतंकवादियों से।'[60]

कवि की इस चिन्ता के संबंध में विष्णु खरे के विचार महत्त्वपूर्ण है – 'कुमार अंबुज की ये कविताएँ भारतीय राजनीति, भारतीय समाज, और उसमें भारतीय व्यक्ति के सांसत भरे वजूद की अभिव्यक्ति है।'[61]

इस तरह संक्षेप में कहा जा सकता है कि अंबुज की कविताओं में वर्तमान का परिदृश्य है, उसका यथार्थ चेहरा है, उसका भविष्य कैसे बेहतर हो, यह प्रश्नात्मक रूप से मौजूद है। इस संबंध में संतोष कुमार तिवारी का कथन उल्लेखनीय है– 'कुमार अंबुज की कविता, अतुकांत जीवन की तुकें तलाशने की बेचैन कोशिश है, ताकि ठीक लय – ताल के साथ ज़िन्दगी और बेहतर बन सके। कवि विभिन्न दर्दभरी आवाजों की सोच को अपने सीने में लिए हुए है।'[62]

2.2.13. लीलाधर मंडलोई

आदिवासी विमर्श को लेकर समकालीन कविता में दस्तक देने वाले कवि के रूप में मंडलोई का नाम लिया जाता है। अपने बचपन में आदिवासी समाज के बीच रहकर उनकी समस्याओं, उनके जीवन के संकट, जंगल का दर्द, और उनके कोयला खदानों में मजदूर होने के फलस्वरूप होता शोषण उनकी कविताओं में प्रमुख रूप से उभरा है। इस संबध में मदन कश्यप ने लिखा है –

‘लीलाधर मंडलोई शायद पहली बार उसके जीवन में संघर्ष को, उसकी ‘सफरिंग’ को उसकी करूणा को अपनी कविता में दर्ज करने में सफल हुए हैं। वे अपने बचपन को याद करते हुए मध्यप्रदेश की कोयला खदानों के उस यथार्थ को सामने लाते हैं जो श्रमिक संगठनों के दस्तावेजों तक में शामिल नहीं है। अपने जीवन के सच को समय के सच से जोड़ देने की कला की व्याप्ति उनकी अन्य कविताओं में भी देखी जा सकती है। अंडमान की जन जातियों के जीवन संघर्ष को पहली बार कविता में लाने का श्रेय भी उन्हें जाता है।’[63]

पर्यावरण का ह्रास आज हमसे अनदेखा नहीं है। विकास के नाम पर औद्योगिक घराने नित नये प्रोजेक्ट लगा रहे हैं, और इसके लिए बडी उद्विग्नता से पृथ्वी का दोहन करते है। अपना घर भरने वाले लोगों को केवल अपना स्वार्थ दिखता है। प्रकृति का नुकसान और आम जीवन का असंतुलन नहीं दिखता। आज जंगल, पहाड़ और प्रकृति नष्ट हो रही है। जो आदिवासी समाज इस कृत्य के विरूद्ध अपनी संस्कृति और सामाजिक मूल्यों को दुहाई देकर विरोध करता है उसे रास्ते से हटा दिया जाता है।

‘उद्विग्नता इस कदर कि कराह उठे पेड़ की कटीली देह तक
छलक पडता था जरा सी रगड़ से रक्त.........
अल मस्ती में डूबा हुआ मदकाल का मुहुर्त्त
निर्द्वन्द्व घूमते झुंडों में बढ रहा है बेकाबूपन और
बिखर रहा पत्थरों, पत्तों, चट्टानों पर रक्ताभ।’[64]

आम आदमी का जीवन कितना संघर्ष और कष्ट भरा है इसे देखने के लिए आम जन जीवन के मध्य जाना चाहिए। सवाल पूछना चाहिए उन योजना आयोगों के अधिकारियों से जिन्होने जन कल्याण की योजनाओं को बनाया। उनसे यह भी पूछना चाहिए कि आज आजादी के लगभग 70 वर्षो के बाद भी जन का कल्याण क्यों दूर है? राशन की कतार लगाकर दिन भर राशन का इंतजार कर चुकने के बाद भी शाम ढले खाली हाथ घर निराश लौट आना किस समाजवाद और मानवीय संदर्भो से युक्त कल्याण है। यह प्रश्न उठता है।

‘वह देख सकता है कि भूख से लड़ने के लिए

सौ से अधिक कल्याणकारी योजनाएँ हैं
रोज नए नए दफ्तर खुल रहे हैं
सरकार और गैर शासकीय संगठनों में
पैसा बह रहा है भूखों की पहुँच से बाहर
कि ऐसा ही होता है 'अकाल उत्सव' में।'[65]

आज देश में स्त्री सुरक्षित नहीं है। यह तब है जब देश विकासशील है। लोग शिक्षित हो रहे है। पर पता नहीं क्यों शहरों और पढे लिखों की बस्ती में नारी शोषण के दृश्य आम है। बलात्कार ओर शील हनन की खबरें अखबारों में रोज़ाना आती है। कवि कहता है–

'एक सुबह पता चला कि कुछ लोग
जबरन जा घुसे रात गए उसकी खोली में
कि जब वह थकी हारी गहन नींद में थी
क्या हुआ बाद उसके सही सही मालूम नहीं
सिवाय इसके कि पाई गई वह मृत.......
लेकिन न कोई पंचनामा, न ही पोस्टमार्टम
हो चुके थे सब लामबंद कोतवाल से लेकर दरोगा तक
बावजूद उनके विरोध के, जला दी गई वह।'[66]

इस प्रकार मंडलोई देश से स्त्री अस्मिता के लिए सवाल करते हैं साथ ही साथ उस मानसिकता का पर्दाफाश करते हैं जहाँ प्रशासन भी उन्हीं का होता है, जो शोषक और दूषित मानसिक हैं। वे आम जन के कवि हैं और व्यवस्था से ग्रसित व्यक्ति के उत्थान के लिए आवाज उठाते हैं।

2.2.14. अनामिका

समकालीन कविता में अनामिका स्त्री संघर्ष को अभिव्यक्ति देने वाली कवयित्री है। महादेवी वर्मा के दुखित पीड़ित नारी को समकालीन परिदृश्य में चित्रित कर देने वाली इस कवयित्री की कविता में स्वाधीन देश के दमित, शोषित, प्रताड़ित, गिरते – पड़ते जीवन को संभावने वाली स्त्री की

व्यथा छुपी है। नारी के अपार दुख सहन करने के बावजूद मौन रहने और दुख सहने के चित्र भी इनकी कविता में मिलते हैं। अनामिका की कविता के सम्बन्ध में मदन कश्यप ने लिखा है– 'स्त्री विमर्श के इस दौर में स्त्रियों के संघर्ष और शक्ति का चित्रण और करूणा को अपनी कविता के केन्द्र में रखा था, उसका विस्तार केवल अनामिका ही कर पाती हैं। वह सहज ही स्त्री के दुख को वंचित जनों के दुख से जोड़ लेती है।'[67] वह अपने कोमल भाव, विवेक और संवेदनशीलता के कारण विशेष रूप से जानी जाती हैं। कवयित्री मानती है कि नारी का शोषण रामायण, महाभारत काल से होता आ रहा है। इसी परंपरा को वर्तमान अत्याचारी लोगों ने आज भी कायम रखा है। आज स्त्री का घर के बाहर निकलना असुरक्षित है।

कभी धर्म के नाम, पर कभी जाति के नाम पर, कभी पुरूषवादी अहं के नाम पर स्त्री का शोषण होता है। यहाँ तक कि अपने ही घर में अपने पतियों के द्वारा पीडित होने पर भी वे अपना मौन रखती हैं। वह चाहकर भी विरोध नहीं कर पाती है। घुटन और विवश होने के बावजूद वह केवल स्त्री बनकर ही रह जाती है। मॉडलिंग के क्षेत्र में आई हुई स्त्री या टेलिविजन पर एंकरिंग करने वाली स्त्री के पीछे की विरूद्ध परिस्थिति का चित्रण करती हुई अनामिका लिखती है–

'हँसती हुई दिखती हैं वे
हर ओर
टी. वी. में
सारे मुख पृष्ठों, चौराहों पर!
पिट कर भी निकली हो घर से
तो जाहिर नहीं होने देती
नए जमाने का घूँघट।'[68]

गरीबी स्त्री का दूसरा संकट है जिस पर अनामिका चर्चा करती है। आज गरीबी के चलते पुरूष के साथ दिहाड़ी मजदूरी से लेकर नामी कंपनियों में स्त्री काम करती है। अपने परिवार को सुखी और सफल बनाने के लिए दिन रात मेहनत करने के बावजूद उसका सम्मान नहीं है। स्त्री के जीवन में ताउम्र अपने लिए समय नहीं होता इसका चित्रण अनामिका इस प्रकार करती हैं–

'तुम्हारा भी अम्मा
इतना सा ही बस रहा जीवन
खाली घर सा ढना ढन
ढ से ढाई
ढ से ढोल – ढक – ढिठाई
और मूलतः ढ से ढोना ढोना केवल ढोना
इसीलिए तो अम्मा
दूर की ढोलकिया
लगती नहीं मुझको सुहावन – सुहावन।'[69]

समकालीन कविता में आमजन के प्रति संवेदना व्यक्त हुई है। इस संवेदना का आधार उसका जीवन और वे जरूरते हैं जिन्हें वह आमजन कभी भी पूरा नहीं कर पाता है दिन भर हाड़ – तोड़ मेहनत करने के बावजूद वह कर्महीन है। दिल्ली और बम्बई जैसे महानगरों की ओर पलायन करने वाले ये जन मेहनत, मजदूरी रिक्शा और चौकीदारी जैसे कार्य करते है। शिक्षित लोग इन्हें केवल इनके काम से पहचानते हैं उन्हें इनकी संवेदना से कोई भी लेना देना नहीं होता। बावजूद इसके वह जन बुरा नहीं मानता उसके लिए यह काम ही उसका साध्य है और यही खाली पेट को भरने का एक मात्र साधन।

'रिक्शा वालों को पुकारते रिक्शा
साधक की साध्य से ऐसी तल्लीन एकात्मता
बिरले ही मिलती है धर्मशास्त्रों में भी।'[70]

अनामिका शहरी संस्कृति में कच्ची बस्तियों में रहने वाले गरीब मजदूरों के परिवार को नजदीक से देखती हैं। अपने पेट पालने को लेकर अपने गांवों से पलायन करने वाले ये लोग दो जून की रोटी के लिए संघर्ष करते है। अपने बच्चों के लिए बेहतर भविष्य का केवल सपना देखने वाले ये लोग उन्हें भी अपने काम में जोड़ देते है। जिससे बच्चे अपना विकास नहीं कर पाते। ये बच्चे कूड़ा – करकट बीनते हैं, कप प्लेट धोते हैं, छोटे – मोटे काम करते हैं, तब जाकर परिवार का पालन होता है । कवयित्री इस विवशता के संबंध में लिखती हैं–

'उन्हें हमेशा जल्दी रहती है
उनके पेट में चूहे कूदते हैं
और खून में दौड़ती है गिलहरी
बडे बडे डग भरते
चलते हैं वे तो
उनका ढीला ढाला कुर्ता
तन जाता है फूलकर उनके पीछे
जैसे हो पाल कश्ती का
बोरियों में टनन – टनन गाती हुई
रम की बोतलें
उनकी झुकी पीठ की रीढ़ से........
बना देते हैं माचिस के खाली डिब्बों के
छोटे छोटे कई घर
खुद तो कहीं नहीं रहते
पर उन्हें खूब पता है घर का मतलब।'[71]

अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि समकालीन समस्याओं से लेकर अनामिका की चिन्ताएँ उनकी कविता में दिखाई देती है।

2.3. हिन्दी की समकालीन कविता और विजेन्द्र

विजेन्द्र की कविता हिन्दी साहित्य में 70 के दशक में आती है। मार्क्स साहित्य से प्रभावित इस कवि ने जनवादी मूल्यों की वकालात करते हुए अपनी कविता आरंभ की। गाँधी और मार्क्स के समाजवाद के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारत के लोकतंत्र को देखा जाना और समझा। उन लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता जाहिर की, जिसके लिए लोगों ने अपनी कुर्बानी दी। विजेन्द्र ने अनुभव किया कि आजादी के दीवनों ने जब इस देश को आजाद कराया तो अपने विकास को अपने लोगों के द्वारा देखने का सपना सँजोया। जनता का जनता के द्वारा शासन

का सुखद पाठ की संवेदना महसूस की, पर यह संवेदना अधिक दिनों तक नहीं टिक सकी। देश में विकास और बदलाव हुए, परंतु ये बदलाव किसानों मजदूरों और श्रमिक के पक्ष में नहीं होकर पूँजीवादी ताकतों के लिए हुआ। आमजन इससे ठगा सा महसूस करने लगा। ऐसे में विवश होकर विजेन्द्र ने अपने क्षोभ को कविता में व्यक्त किया। उन्होंने कविता में सर्वहारा के शोषण, उसकी विडम्बनाएँ, उसका जातीय संघर्ष, उनके द्वन्द्व, उनकी त्रासदी के दृश्य चित्रित किये। वे फिर से परिवर्तनकामी हुए। उनको लगा कि आज का भारत किसान, मजदूर और श्रमिक का भारत नहीं है। आज भी इन दलित और श्रमिक के प्रति सहानुभूति नहीं है। कोई भी सरकार और साम्राज्य इन्हें अपना नहीं स्वीकार रहा है। जनशक्ति को फिर से चैतन्य करना होगा। विचारधारा में परिवर्तन लाए बिना ये संभव नहीं होगा। लोकतंत्र को लोक तक ले जाना होगा। कविता को व्यक्तिवादी से जनवादी बनाना होगा। इसी भावना को लेकर कवि ने कविता लिखी और प्रश्नाकुल होकर अपनी बेचैनी प्रदर्शित की। समकालीन कविता में ये सवाल कितने सारगर्भित और समीचीन है, इन सबका विजेन्द्र की समकालीन कविता में निरूपण हुआ है।

यह सच है, कि समकालीन कविता अपने राजनैतिक आशयों से प्रेरणा लेती रहती है। यह प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूपों से होता है। इस प्रेरणा को वस्तुगत यथार्थ से अतिक्रमण कर कवि संभावना या भविष्यगत यथार्थ की कल्पना को सँजोता है। विजेन्द्र की कविताओं में राजनीति को इसी नजरिये से देखने का प्रयास है। वे राजनैतिक संकटों को अनेक रूपों में देखते हैं और राजनीति में प्रयुक्त होने वाले शब्दों यथा समाजवाद, उदारतावाद, जनतंत्र आदि के सच्चे अर्थ को तलाश करते नजर आते है।

'नहीं बँधता भरोसा
निरे शब्दों पर
खो रहें हैं अर्थ जिनके।'[72]

लोकतांत्रिक मूल्यों को दरकिनार कर केवल जनता को लूटने वालों के प्रति विजेन्द्र के मन में खिन्नता है। वे अवसरवादी राजनीति और देश में नेताओं के गिरते नैतिक आचरण से चिन्तित हैं।

‘सारे मजमे वालों की जमात एक है
भोले भाले लोगों की गाँठ कटती है
इसका रंग अब राजनीति में
हुआ है गाढ़ा और गहरा
जो अपना उल्लू सीधा कर
पाँच साल बाद चाटती है तलवे।’[73]

जब तक शासन वास्तविक रीति से जनता के प्रति जवाबदेह नहीं होगा, तब तक हम लोकतंत्र के समर्थक नहीं हो सकते –

‘सर्वहारा के हाथ में सत्ता
लोकतंत्र की अंतिम विजय है।’[74]

विजेन्द्र लोक के प्रति पूर्ण जवाबदेह कवि हैं । वे अभिनवगुप्त के *लोकानां जनपदवासी जनः* तक सीमित नहीं है। उनकी कविता का जन महानगर से लेकर गाँव तक है। वे अपनी कविता में माटी के सौधेपन को महसूस कराते हैं। दोआब से लेकर मरू प्रदेश के उन क्षेत्रों तक पाठक को ले जाते है, जहाँ तक कवि ने अपने जन को अनुभव किया।

‘अपने जनपद से ही पता लगता है
दूब का रंग
फूल की गन्ध
ओस की दमक
दिल की धड़कन
इन्हीं में दिखता है मुझे
चेहरा विश्व का।’[75]

वे अपने कवि कर्म को लोक को समर्पित करते हैं। उनका लोक महानगरों के मिल मजदूरों, कामदारों से लेकर धरती से अन्न उपजाने वाले किसानों, कठोर परिश्रमशील श्रमिकों का है। यह

लोक हिम्मतपस्त असहाय और नैराश्य का नहीं वरन् साहस और पराक्रम से संघर्ष करने वाला है, वह परिस्थितियों को बदलने का माद्दा रखता है। वह उत्सवधर्मी और भरोसेमंद है।

'मुझे भरोसा अपने बल पर
देख रहा हूँ
ये पेड खड़े हैं
घोर तपन सूखा आतप में
मेरे अपने भले सगे हैं।'[76]

विजेन्द्र श्रमशील के प्रति आस्था रखते हैं, उनका मानना है कि श्रमिक के श्रम से ही दुनिया में उजाला है, सभ्यता का विकास है। इतिहास वर्ग संघर्ष का साक्षी है। इसे खत्म करके ही सही मायनों में विकास संभव है। इस भेद को मिटाने के लिए श्रम की प्रतिष्ठा करनी होगी। श्रमिकों को सम्मान देना होगा। हम सब जानते हैं, कि श्रम के द्वारा ही मनुष्य ने अनेक आविष्कार किये हैं। ताजमहल जैसे विश्वस्तरीय इमारत श्रम के कुशल संयोजन का परिणाम है, पर दुख की बात यह है कि क्रूर व्यवस्था ने हाथों के महत्त्व को कम करके आँका है। श्रमिक दो जून की रोटी के लिए संघर्ष करते देखे जाते हैं। कवि एक कुम्हार द्वारा चाक पर बनाये जा रहे मिट्टी के पात्रों का सूक्ष्मनिरीक्षण कर कुम्हार के माध्यम से श्रमिक के श्रम सौन्दर्य को निरूपित करते है।

'मुझे देखने दो
पहले पहल कुम्हार को
पकाते कच्चे बर्तन अवाँ में
कितनी सुन्दर है कलाकृति
रची गई उसके सधे हाथों से
ओ कवि यह भी जानो
पहले मिट्टी भीग कर गारा बनी
अब पानी सेंतने को चित्रोपम घड़ा
खून चूसने वालों को
सुन्दर कृति दिखाई देती है

उसमें रचा गया श्रम नहीं।'[77]

कवि सर्वहारा चेतना का पक्षपाती है। हम सब जानते हैं कि बिना श्रम के विकास की बुनियाद नहीं रखी जा सकती है, और बिना श्रमिक के श्रम कैसे संभव है। फिर भी हम श्रमिक की अवहेलना करते हुए देखे जा सकते है। पूँजी के आगे श्रम बौना साबित होता रहा है। कवि कहता है –

'जिन्होने कमाई है अपने पसीने से
वे ही हैं मुकुट के अधिकारी सच में।'[78]

वे लोग जो अपने श्रम से इस दुनिया को सुंदर बनाते हैं, वे ही उस सुंदरता का उपभोग नहीं कर पा रहे हैं। वे अभावों में जीवन यापन कर रहे है। उनका जीवन सौंदर्य अभावों में पिस रहा है। वे अपने तीक्ष्ण दुख में कठोर यातनाएँ सहने को मजबूर है। कवि उनकी संवेदना से आहत होकर लिखता है –

'क्यों न हो उनका हक उपज पर
जो कमाते हैं साल भर अपने पसीने से
क्यों न हो धूप सघन उनको
जो ठण्ड से काँपते हैं कँप – कँप
क्यों न मुकुट पहने वो
जो जड़ता है इसमें नगीने नये – नये।'79

विजेन्द्र की कविताओं को पढ़ते हुए हमेशा यह लगता रहा है, कि कवि मानवीय प्रेम और प्रकृति के निष्कपट एवं निर्दोष सौन्दर्य को उसके जैविक रूप से प्रस्तुत करते हुए एक ऐसे संवेदना जगत का सृजन करते हैं जो परिवर्तित रोमांटिक बोध की ओर संकेत करता है, जिसमें रूढ़ रोमांस नहीं है वरन् यह रोमांस एवं सौन्दर्य उत्पादन की संस्कृति से गहरे संबंधित है। यदि यह कहा जाए कि कवि के रचनालोक में श्रम एवं संवेदना का सौन्दर्य इतना सहज एवं ऊर्जा से

प्लावित है कि उसका निखार संघर्ष और द्वंद्व के मध्य होता है। इस द्वंद्व और संघर्ष में 'आस्था' का स्वर निहित है, एक ऐसी आस्था जो 'धरती की जड़ों' से जुड़ी हुई है।

'नहीं सुखा पाओगे मुझको
ओ सप्त अश्वधारी भगवान भास्कर
सजल स्रोत जीवन से! गुँथी हुई है
धरती में जड़ मेरी।'[80]

कवि विजेन्द्र के कविताओं में प्रेम कल्पनाप्रसूत नायक और नायिका की भावातिरेक वासना का प्रतीक रूप में नहीं होकर जनपक्षधर श्रृंगार के व्यापक सौन्दर्य को धारित करते हुए अट्टहास करता है। वह श्रम संस्कृति की जुगलबंदी में गाता है, तान छेड़ता है। वह जीवन की क्रियाशीलता में है। वह किसी परकीया नायिका के आँचल की वस्तु नहीं है, बल्कि अपने घर के आँगन में ही कर्म के रूप में उगता और खिलता है। जो लोग जनपक्षधरता के प्रति शुष्क धारणा रखते हैं, वे चाहें तो देख सकते हैं, कि यह प्रेम भाव की उस रससिक्त धारा के प्रवाह की परंपरा में बहता है जो निराला से शुरू होती है और नागार्जुन, केदार, त्रिलोचन से बहती हुई विजेन्द्र तक आती है और विजेन्द्र इसमें सभी को अवगाहन भी कराते है। विजेन्द्र अपने प्रेम का सर्वप्रथम परिचय किसानी रूप में देते हैं —

'प्रिय, आज मैं तुम्हें
सरसों की फुनग देता हूँ
यह ताजा फुनग तुम्हारे जूड़े में उजासित है।'[81]

विजेन्द्र की कविताओं में प्रेम प्रकृति के साथ मानवीय सौन्दर्य और जीवन संघर्ष के बीच रचा बसा है। जिसकी पृथक विवेचना करना कठिन है, कारण बस इतना है कि विजेन्द्र का प्रेम ऐहिक है, दैहिक नहीं। आमतौर पर कवि प्रेम को प्रकृति में मानवीकरण के साथ प्रस्तुत करते हैं। परंतु विजेन्द्र के यहाँ प्रेम एकान्तिक रूप में है। यह प्रकृति कभी मानवीय सौन्दर्य का सादृश्य रचना विधान रचती है तो कभी मानवीय सौन्दर्य स्वयं प्रकृति का सादृश्य बन जाता है। विजेन्द्र की एक कविता है — 'मेवात की धरती' इस कविता के केन्द्र में मेवात अंचल की 'सरसों' है। कवि इस

सरसों को प्रिया के रूप में देखता है। यहाँ धरती और मानवीय सौन्दर्य एकरूप हैं। सरसों का यह रूप न केवल नया है वरन् यथार्थ के निकट है –

'सरसों
तुम्हारे घने बालों की तरह छितराई
सरसों
इस मेवात की धरती पै
उठी सरसों
तुम्हारी सुडौल बाहों की तरह खूबसूरत है
वह
पानी पै उठी लहरों की तरह खूबसूरत है।'[82]

कवि अपने प्रेम को कविता का कच्चा खनिज मानता है, यह प्रेम उसकी प्रेरणा है जो जन के साथ उसे जोड़ती है वह उसके भोलेपन को रेखांकित कर उसे सार्वकालिक बना देना चाहता है

'प्यार मेरे लिए
पहले जैसा ही कच्चा खनिज है
मैं उसे इसी तरह अनपका रहने दूँ
जिससे उसका भोलापन न खोये।'[83]

विजेन्द्र की 'ओ एशिया' नामक कविता सोवियत संघ के विघटन के बाद वैश्विक स्तर पर अमरीका की एक ध्रुवीय ताकत के बेजा इस्तेमाल को रोकने के प्रतिरोधस्वरूप एशिया के एकीकरण के लिए लिखी गई कविता है। कवि एशिया महाद्वीप को संगठित देखना चाहते हैं। अमरीका साम्राज्यवादी ताकतों को बढ़ावा देने वाला देश है। अतः एशिया को दूसरी महाशक्ति के रूप में जागना होगा। कवि एशिया को अपने जनपद से देखता है, और जागने का आह्वान करता है –

'ओ एशिया के विशाल महाद्वीप तुम जागो
दुनिया देखती है तुम्हारी तरफ, जागो............

ज्योतिस्तंभ बुझे पडे हैं
कहाँ है वह रोशनी।'84

अमरीका सारी दुनिया पर प्रभुत्व जमाना चाहता है। उसकी नियत लोकतंत्र के मूल्यों पर प्रहार करने की है वह उन ताकतों को पुष्ट करना चाहता है, जो फिर से एशिया के देशों को आत्मनिर्भर बनने से रोकती है।

'दुनिया के तेल खनिज पर
जमाना चाहता है अपना प्रभुत्व
एकध्रुवीय सम्राट
बार बार होते है लोकतंत्र पर प्रहार।'[85]

कवि परिवर्तनकामी है वह समाज की विद्रूपताओं को समाप्त कर देने का हिमायती है। कवि और नेतृत्व करने वाले व्यक्तियों को वह ज्योतिस्तंभ की संज्ञा देता है। लेकिन कवि महसूस करता है कि आज ज्योतिस्तंभ बुझे हुए हैं –

'ढह गए ज्योतिस्तंभ सभी,
जो राह दिखाते घने तमस में।'[86]

यह बुझना साम्राज्यवादी ताकतों के कारण है। कवि इस अँधेरे को दूर हटाना चाहते हैं। कवियों को कमर कसनी होगी। अपनी कविता की धार तेज करनी होगी। उजाले और अँधेरे का फर्क दिखाना होगा। विजेन्द्र को दुख है, कि कुछ कवियों ने अवसरवादी कविता करके राजभवन में जगह पायी, और जड़ कविता करने लगे। परंतु कवि स्वयं को जड़ता की ओर नहीं ले जाना चाहता। उसका मन है कि चाहे जितनी भी यंत्रणाएँ मिले पर सत्तामुखी कवियों के समान वह प्रदूषित नहीं होगा।

'देखा एक दिन कुछ कवियों को
उड़ते पतझरे पत्तों की तरह हवा में

वे चहके, फुदके, बेपरवाह
हवा चाहे जहाँ ले जाये उड़ाकर।'[87]

कवि अपना पथ नहीं बदलेगा। वह उन नदियों की तरह नहीं जिनका आगे अस्तित्त्व समाप्त हो जाता है। उसका मन है कि चाहे जितनी भी यंत्रणाएँ मिले पर वह अपना पथ नहीं बदलेगा।

'मैं क्यों बदलूँ अपना पथ
उन नदियों की तरह
जो आगे जाकर होती हैं लुप्त।'[88]

कवि जानता है कि एक ही समय में कविता रचने वाला प्रत्येक व्यक्ति अपनी कालचेतना से संपृक्त नहीं हो सकता। जो जन का कवि है वही कालचेतना से युक्त होकर कविता कर्म की गंभीरता को समझ पाता है। विजेन्द्र ने नदियों का रूपक बनाकर इस भाव को चित्रित किया है

'कहाँ कर पाती हैं सभी नदियाँ
निर्माण डेल्टाओं का
जैसे लिख कर कविता
नहीं होते सभी कवि।'[89]

विजेन्द्र का मानना है कि जो कवि अपनी जनता से कटा होता है वह कवि पद को कलंकित करता है –

'संघर्षशील जनता से कटा लेखक और सत्ता,
दोनों बहुत कमजोर होते हैं।'[90]

भारतीय समाज में स्त्री को अनेक प्रकार से सामाजिकता और सांस्कृतिक मर्यादाओं और नियमों का पालन करना होता है। पहले माँ – बाप, भाई – बहिन, फिर सास – ससुर, पति और उसका परिवार आदि। यदि घर में नहीं निभ पाई तब भी स्त्री दोषी। बच्चे नहीं हुए तो उसे सामाजिक दृष्टि से अच्छा नहीं माना जाता है। पुरूष प्रधान समाज में पुरूष को कोई दोष नहीं है। कवि

इस सड़ी हुई व्यवस्था का प्रतिरोध कर इसे हटा देना चाहता है जिसमें सब कुछ स्त्री को ही भोगना होता है –

'कैसा समाज है पिछड़ा, मरियल
इसमें सहना है केवल स्त्री को
बच्चे के जनम हुये को
स्त्री ही क्यों दोषी।'[91]

विजेन्द्र के काव्य में श्रम के द्वारा मानव समाज को सतत् उपकृत करने वाले जन का संघर्ष चित्रांकित हुआ है। अपने लिए ज्यादा कुछ की अपेक्षा करता हुआ भी टकटकी लगाए अपने उन सवालों के अनुत्तरित जवाबों में उलझता रहता है, जो सदैव से केवल प्रश्न की शक्ल में ही है। उनका जवाब न सरकार के पास है और न ही किसी भगवान के पास। अपने जीवन को समाज के उस हिस्से के विकास के लिए देने वाले मजदूरों के मन में एक बात गहरे से बैठी होती है कि हम दिन–रात मेहनत मजदूरी करते हैं, पर गुजारे लायक ही कुछ कमा पाते हैं, यह हमारा दुर्भाग्य है या पूर्व जन्म के कुछ कर्म। लेकिन वह मजदूर उस वास्तविकता से परे है, जिसमें अन्यायपूर्ण शोषण का साम्राज्य है। जहाँ सामाजिक विषमता है। श्रमशील समाज की 'तस्वीरन' रोज फूलों से माला बनाती है, जो देवों और मानवों के सौन्दर्य का हिस्सा है, पर उसके निजी जीवन में सौन्दर्य का अभाव है, वह एकालाप करती हुई बोलती रहती है –

'चुनती हूँ/मै/ फूल धूप में/ जाने किसके जूड़े सजते हैं/ कुछ हैं/ जो पैसे के बल/ देवों पै चढ़ते हैं/ क्या है उमर बीतती यों ही/ यही समय आ गया / अब्बा/ बाग रखते बुढ़आए/ कमर झुक गई / मैं स्यानी हूँ/ माँ को फालिज मार गई है/आधा मुँह खुलकर/ होठ कँपकँपाता है/ ऊपर का / भाई हैं छोटे/ बहनें हैं नादान अभी /किलो अढ़ाई आटा सिकता है हर दिन।' [92]

वह मुसलमान है और उसके समाज में जहाँ अल्लाह किसी में भेद नहीं देखता, वहाँ उसके खुद मजहब के लोग सिया – सुन्नी के मसले में पड़े है। वह उसकी आलोचना करती है –

'क्या है यह मुलक
ऊँच –नीच का सड़ता मलबा
घिन का गारा।'[93]

'तस्वीरन' हिन्दू– मुस्लिम वैमनस्य के उस संदेह को शब्द देती है, जो मुल्क में बाबरी से लेकर दादरी तक फैला है।

'फिर भी हम पर शक करते हैं
अहमद भैया को कटुआ कहते
अब्बा से बेगार कराते
कहाँ जाए
यह मुलक हमारा भी है
क्या।'[94]

कवि अपने जनपद के साथ है। उसकी भाषा के साथ है और सदैव अडिग खड़ा रहेगा। वह सत्य का पक्षपाती है। वह लोगों को अन्याय और असत्य के विरूद्ध बोलने की ताकत देता है।

'क्यों डरते हो सत्य बोलने से, बोलो
पथरीला सन्नाटा टूटता है
बोलने से, बोलो बेदखल
अपने इलाके के साथ
बोलो, बोलने से बढता है साहस
अपने जनपद के साथ, बोलो एक साथ।'[95]

कवि प्रतिरोध चेतना को जाग्रत करना चाहता है, उनका मानना है कि कुशासन, या कदाचार के विरूद्ध बोलने से प्रतिरोध जन्म लेता है, जिससे सन्नाटा टूटता है–

'ऐसी बानी बोलो

जिससे सन्नाटे में दहल पैदा हो सके
शब्द आकाश को गुँजा दे
मन में अपार लहरें उठें।'[96]

विजेन्द्र की कविता के केन्द्र में मनुज है। यह सर्वहारा है। यह लोक का है। यह आमजन है। इसकी भाषा ही कवि की भाषा है। कवि रोमानी और वायवीय भाषा से दूर होकर लोक की भाषा के साथ तादात्म्य बनाना चाहता है। वह किसान और श्रमिक की भाषा का पक्षपाती है। वह दरबारी कवि नहीं होकर जन का कवि होना पसंद करता है –

'रीति की अपंग उँगलियाँ नहीं
मूजकूटा शब्द चाहिए अलख।'[97]

वह मन के शब्दों के साथ कविता करते हैं। कवि की कविता का प्रयोजन समता के लिए है। अन्य कुछ भी नहीं। इसलिए वे अपनी भाषा में लिखते है –

'अपनी भाषा में जो रचा गया
वही मेरा ज़िन्दा जनपद है।'[98]

वे अपने लोक से परे नहीं हैं। किसानों ओर मजदूरों के साथ जुड़े हैं, उनसे संवेदित है, उनके संघर्ष को अनुभव करते है। उनकी दरिद्रता को खुली आँखो से प्रत्यक्ष देखते हैं, और उनकी भाषा में ही लिखकर संतोष का अनुभव करते है।

'जड़ों से दूर कैसे रहूँ
वे मुझे सींचती हैं हर बार।'[99]

2.4. निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है, कि विजेन्द्र की कविता में समकालीन बोध उनके जनपक्षधर भाव के साथ प्रस्तुत होता है, जहाँ श्रम की महत्ता है। श्रम सौन्दर्य है। श्रम की प्रतिष्ठा है।

किसान का दर्द है। जीवट जिजीविषा है। वर्गीय चरित्र हैं। उनका संघर्ष है। दाम्पत्य प्रेम का सामाजिक रूपांतरण है। स्त्री की वर्तमान स्थिति और सामाजिक संरचना में उसका योगदान का निरूपण है। लोक के प्रति प्रतिबद्ध चेतना है। मानव की क्रियाओं का प्राकृतिक परिवेश से संबंधों का दर्शन है। जनशक्ति में आस्था है। आत्ममुग्ध कवियों की भर्त्सना है। कवि कर्म और उसकी रचना प्रक्रिया की चर्चा है। समकालीन भाषा है। भाषिक संरचना में लय हैं। विजेन्द्र की सभी कविताएँ सहज और संप्रेषणीय है। इनमें मुक्तिबोधी दुरूहता नहीं है। कहा जा सकता है कि विजेन्द्र का कृतित्व समकालीन कविता में ज्योतिस्तंभ की भाँति है। उनकी कविता समकालीन और मानवीय धरातल पर आम जन के साथ खड़ी हुई है। इन सभी समकालीन कारकों के कारण हम मुक्त कंठ से कह सकते हैं, कि विजेन्द्र का हिन्दी की समकालीन कविता के महत्त्वपूर्ण कवि हैं।

संदर्भ

1. संपा. नेमिचंद्र जैन, मुक्तिबोध रचनावली, भाग – 5, संपा. पृ. 318
2. शिव कुमार मिश्र, नया हिन्दी काव्य, पृ. 35
3. अज्ञेय, असाध्य वीणा, पृ. 6,
4. संपा. नेमिचंद्र जैन, मुक्तिबोध रचनावली, भाग – 5, पृ. 192
5. वही, पृ. 67
6. संपा. परमानंद श्रीवास्तव, समकालीन हिन्दी कविता, पृ. 12
7. संपा. पी. रवि, समकालीन कविता के आयाम, पृ. 39
8. वही, पृ. 41
9. विजय कुमार, कविता की संगत, पृ. 26
10. संपा. डॉ. प्राची, वाग्प्रवाह पत्रिका, पृ. 18
11. संपा. शोभाकांत, नागार्जुन रचनावली, खण्ड – 1, पृ. 119
12. विष्णुचंद्र शर्मा, नागार्जुन एक लम्बी जिद, पृ. 89
13. संपा. शोभाकांत, नागार्जुन रचनावली, खण्ड – 1, पृ. 133
14. वही, पृ. 38
15. महेशचंद्र पुनेठा का लेख, जनपथ पत्रिका, पृ. 81
16. त्रिलोचन, शब्द, पृ. 49
17. त्रिलोचन, उस जनपद का कवि हूँ, पृ. 87
18. त्रिलोचन, ताप के ताए हुए दिन, पृ. 52
19. त्रिलोचन, अनकहनी भी कुछ कहनी है, पृ. 87
20. त्रिलोचन, धरती, पृ. 12
21. केदारनाथ अग्रवाल, गुलमेंहदी, पृ. 28
22. केदारनाथ अग्रवाल, फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. 74
23. वही, पृ. 81
24. संपा. अशोक त्रिपाठी, कहे केदार खरी – खरी, पृ. 70
25. धूमिल, सुदामा पांडे का प्रजातंत्र, पृ. 21
26. धूमिल, कल सुनना मुझे, पृ. 33
27. धूमिल, सुदामा पांडे का प्रजातंत्र, पृ. 28

28. धूमिल, संसद से सडक तक, पृ. 62

29. लीलाधर जगूडी, कवि ने कहा, पृ. 56

30. वही, पृ. 66

31. वही, पृ. 114

32. चंद्रकात देवताले, पत्थर फैंक रहा हूँ, कविता संकलन के फ्लैप से,

33. चंद्रकात देवताले, उसके सपने, कविता संकलन के फ्लैप से

34. चंद्रकात देवताले, पत्थर फैंक रहा हूँ, पृ. 28

35. वही, पृ. 53

36. चंद्रकात देवताले, उजाड़ में संग्रहालय, पृ. 35

37. उदय प्रकाश, कवि ने कहा, संकलन के फ्लैप से

38. वही, पृ. 9

39. वही, पृ. 69

40. वही, पृ. 98

41. उदयप्रकाश, सहानुभूति की कविता(रात में हारमोनियम), उदय प्रकाश के ब्लॉग से

42. राजेश जोशी की कविताएँ, asuvidha.blogspot.in/2013/02

43. वही

44. राजेश जोशी, एक दिन बोलेंगें पेड़, पृ. 24 – 25

45. राजेश जोशी, प्रौद्योगिकी की माया (राजेश जोशी की कविता), hashiya.blogspot.com

46. मंगलेश डबराल, पहाड़ पर लालटेन, पृ. 69

47. वही, पृ. 11

48. मंगलेश डबराल, कवि ने कहा, पृ. 63

49. वही, पृ. 20

50. वही, कवि ने कहा, कविता संग्रह के फ्लैप से

51. अरूण कमल, सबूत, पृ. 65

52. अरूण कमल, अपनी केवल धार, पृ. 66

53. वही, पृ. 12

54. भगवत रावत, कवि ने कहा, पृ. 75

55. वही, पृ. 7

56. वही, पृ. 59

57. कुमार अंबुज, अनंतिम, पृ. 64

58. कुमार अंबुज, क्रूरता, पृ. 74

59. वही, पृ. 74

60. वही, पृ. 57

61. कुमार अंबुज, अनंतिम, कविता के फ्लैप से

62. संतोष कुमार तिवारी, अज्ञेय से अरूण कमल तक, पृ. 270

63. लीलाधर मंडलोई, कवि ने कहा, कविता संकलन के फ्लैप से

64. वही, पृ. 63

65. वही, पृ. 105

66. वही, पृ. 74

67. अनामिका, कवि ने कहा, कविता के फ्लैप से

68. वही, पृ. 70

69. वही, पृ. 96 – 97,

70. वही, पृ. 98 – 99

71. वही, पृ. 108

72. विजेन्द्र, पहले तुम्हारा खिलना, पृ.114

73. विजेन्द्र, बुझे स्तंभों की छाया, पृ. 36

74. विजेन्द्र, बेघर का बना देश, पृ.61

75. विजेन्द्र, मैंने देखा है पृथ्वी को रोते, पृ. 140

76. विजेन्द्र, कवि ने कहा, पृ. 65

77. विजेन्द्र, कठफूला बाँस, पृ. 108

78. विजेन्द्र, बेघर का बना देश, पृ.15

79. विजेन्द्र, मैंने देखा है पृथ्वी को रोते, पृ.102

80. विजेन्द्र, धरती कामधेनु से प्यारी, पृ. 56

81. विजेन्द्र, धरती जग गई है, कवि ने कहा (कविता संग्रह), पृ. 26

82. विजेन्द्र, मेवात की धरती, कवि ने कहा (कविता संग्रह), पृ. 31

83. पहले तुम्हारा खिलना, विजेन्द्र, पृ. 89, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली 2004

84. विजेन्द्र, कठफूला बाँस, पृ. 191 – 92

85. वही, पृ. 103

86. विजेन्द्र, पहले तुम्हारा खिलना, पृ. 64

87. विजेन्द्र, कठफूला बाँस, पृ. 92

88. वही, पृ. 94– 95

89. विजेन्द्र, मैंने देखा है पृथ्वी को रोते, पृ. 72

90. विजेन्द्र, बुझे स्तंभों की छाया, पृ.75

91. विजेन्द्र, मैंने देखा है पृथ्वी को रोते, पृ. 37

92. विजेन्द्र, उठे गूमडे नीले, पृ. 58 – 59

93. वही, पृ. 61

94. वही, पृ. 61 – 62

95. विजेन्द्र, कठफूला बाँस, विजेन्द्र, पृ. 99

96. विजेन्द्र, बुझे स्तंभों की छाया, पृ.10

97. विजेन्द्र, ढल रहा है दिन, पृ. 16,

98. विजेन्द्र, पहले तुम्हारा खिलना, पृ.84

99. वही, पृ. 99

अध्याय – 3

कवि विजेन्द्र का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

भूमिका

3.1. कवि विजेन्द्र का व्यक्तित्व

3.1.1. जन्म, बचपन एवं पारिवारिक परिवेश

3.1.2. उच्च शिक्षा एवं प्रेरणा

3.1.3. वैवाहिक जीवन और प्रसंग

3.1.4. स्वभाव

3.1.5. संघर्ष और साधना

3.2. कवि विजेन्द्र का कृतित्व

3.2.1. कविता संग्रह

3.2.1.1. त्रास

3.2.1.2. ये आकृतियाँ तुम्हारी

3.2.1.3. चैत की लाल टहनी

3.2.1.4. उठे गूमड़े नीले

3.2.1.5. धरती कामधेनु से प्यारी

3.2.1.6. ऋतु का पहला फूल

3.2.1.7. उदित क्षितिज पर

3.2.1.8. घना के पाँखी

3.2.1.9. पहले तुम्हारा खिलना

3.2.1.10. वसंत के पार

3.2.1.11. आधी रात के रंग

3.2.1.12. कवि ने कहा

3.2.1.13. दूब के तिनके

3.2.1.14. पकना ही अखिल है

3.2.1.15. आँच में तपा कुंदन

3.2.1.16. भीगै डैनों वाला गरूण

3.2.1.17. जनशक्ति

3.2.1.18. बुझे स्तंभों की छाया

3.2.1.19. कठफूला बाँस

3.2.1.20. बनते मिटते पाँव रेत में

3.2.1.21. मैंने देखा है पृथ्वी को रोते

3.2.1.22. बेघर का बना देश

3.2.1.23. ढल रहा है दिन

3.2.2. काव्य नाटक

3.2.2.1. अग्नि पुरूष

3.2.2.2. क्रौंच वध

3.2.3. डायरी

3.2.3.1. कवि की अन्तर्यात्रा

3.2.3.2. धरती के अदृश्य दृश्य

3.2.3.3. सतह के नीचे

3.2.4. आलोचना ग्रंथ

3.2.4.1. कविता और मेरा समय

3.2.4.2. सौन्दर्यशास्त्र : भारतीय चित्त और कविता

3.2.5. संपादन : कृतिओर पत्रिका

3.3. सम्मान एवं पुरस्कार

3.4. निष्कर्ष

अध्याय – 3

कवि विजेन्द्र का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

भूमिका

'अपारे कवि संसारे कविरेकः प्रजापति।
यथास्मै रोचते विश्वं तथा विपरिवर्तते।।'[1]

आनंदवर्द्धन ने कवि को ब्रह्मा और उसके काव्य संसार को उसकी सृष्टि के रूप में वर्णित किया है। आचार्य मम्मट इनसे भी एक कदम आगे बढ़कर कवि की सृष्टि को ब्रह्मा की सृष्टि से उत्कृष्ट मानते हैं। उनके अनुसार ब्रह्मा की सृष्टि नियतिकृत, नियमयुक्ता, सुख दुख स्वभावा और छः रसों से युक्त होती है, किन्तु कवि की सृष्टि केवल आनंदमयी अनन्यपरतंत्रता तथा नवरसरूचिरा होती है।

'नियतिकृत नियम रहिताह्लादैकमयीमनन्य परतंत्राम्।
नवरस रूचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति।।'[2]

वस्तुतः काव्य सृजन सत्कवि की महान आत्मा का निदर्शन, कवि की उद्दीप्त उच्छ्वसित वाणी और कवि के उदात्त व्यक्तित्त्व की संघटनात्मक सृष्टि है। कवि अपने काव्य के माध्यम से लौकिक तथा अलौकिक, प्रत्यक्ष एवं परोक्ष भावों की अभिव्यक्ति कर उन्हें जन संवेद्य कर देता है। इसीलिए काव्य, साहित्य की लोकमंगलकारी, रसमयी और रमणीय रूपाकृति है। रमणीयता के साथ – साथ काव्य की चिरन्तनता और सनातनता कवि को महान् और अमर बना देती है।

इसी भावना का प्रतिफलन हमें हिन्दी कविता के समकालीन कवि विजेन्द्र में दिखाई देता है। वे जनसंवेद्यी व्यक्तित्व के धनी होने के कारण जन – मन के कवि बन गये हैं। विद्रोही और क्रांतिकारी घटकों से निर्मित इनके व्यक्तित्व ने कभी भी गलत और गलित से समझौता नहीं किया। जमींदार और उच्च मध्यम श्रेणी के परिवार में पैदा होने के पर भी परिस्थितियों के घात प्रतिघात से मोर्चा लेते हुए, आदर्श के लिए सब कुछ लुटा देने वाले इस कवि ने हर कीमत पर कविता को निरपेक्ष और निर्व्याज रखते हुए 'कविता' बनाया। इनकी कविता सनातनी गंगा की भाँति समाज और राष्ट्र की परिसीमा से परे जन के लोकरूप को प्रकाशित और प्रचारित करती हुई निराला और त्रिलोचन की परंपरा का प्रतिनिधित्व करती है। लोक अंचल की विभिन्न झलकियों को मूर्त रूप प्रदान करती इनकी कविता सामाजिक यथार्थ के उस

श्रमसाध्य कर्म का भी सजीव चित्रण करती है, जो श्रेष्ठ कवि के सामाजिक दायित्व और संवेदनशील कवि कर्म के लिए अनिवार्य है। इनका समूचा कार्य उनके संघर्ष की व्याख्या है, जो उन्होने भोगा, जाना, और अनुभव किया।

इस अध्याय में विजेन्द्र के निजी जीवन के साथ – साथ उनके कवि जीवन का अध्ययन और विवेचन का संक्षिप्त प्रयास है।

3.1 कवि विजेन्द्र का व्यक्तित्व

कवि विजेन्द्र के व्यक्तित्व को जानने के लिए उनके जीवन के विभिन्न पहलुओं को जानना और समझना आवश्यक है, जिसके कारण वे समकालीन कविता में लिखते हैं। उन पक्षों की चर्चा करनी आवश्यक है जिसके चलते वे समकालीन साहित्य में अपने उदात्त और गरिमामय लेखन के लिए जाने जाते हैं।

3.1.1. जन्म, बचपन एवं पारिवारिक परिवेश

अपनी लोकसंस्कृति के लिए प्रसिद्ध बदायुँ जनपद की तहसील सहसवान के अंतर्गत दहगवाँ कस्बे के पास एक छोटे से गाँव धरमपुर में श्री लाखन सिंह एवं श्रीमती वीरवती देवी के घर कवि विजेन्द्र का जन्म दिनांक 10 जनवरी 1935 को हुआ। पिता में सामंती परिवार के संस्कार थे, लिहाजा कवि का लालन – पालन भी उसी के अनुरूप हुआ। पिता की दो निजी पसंद थी। खेती के लिए अच्छे नागौरी बैल, शिकार के लिए बेहतरीन घोड़े। पिता विजेन्द्र को अपने जैसा बनाना चाहते थे। उनकी दृष्टि में पढ़ाई – लिखाई केवल दुनियादारी के हिसाब को समझने के लिए जरूरत भर थी, यही कारण रहा कि उन्होने विजेन्द्र को स्कूल में नहीं भेजकर घर पर ही गाँव के प्रसिद्ध मौलवी श्री रफीक अहमद को रख लिया। अरबी – फारसी के विद्वान रफीक साहब ने उन्हें शुरूआती तौर पर उर्दू से परिचय करवाया। उर्दू उनकी पहली जुबान थी। गणित विजेन्द्र की कमजोरी थी और गणित के सवाल को ठीक तरीके से हल नहीं करने पर मौलवी साहब के द्वारा की गई धुनाई उनके अंदर एक खौफ पैदा करती थी। विजेन्द्र कहते है कि जितनी वे धुनाई करते उतना ही पढाई के प्रति अरूचि उत्पन्न होने लगती। कुछ समय के बाद इन्हें पास के स्कूल में दाखिल करवा दिया गया और चार दर्जे तक इन्होने वहीं पढ़ाई की। पिता अब भी विजेन्द्र को आगे नहीं पढ़ाना चाहते थे। पर माँ ने अपने इस लाड़ले को अपने पिता की मर्जी के खिलाफ उझियानी के अंग्रेजी स्कूल में आगे की पढ़ाई के लिये भेज दिया। यहीं से विजेन्द्र के मन को पढ़ाई रूचने लगी। वे सदैव अपनी कक्षा में प्रथम आये, पर इसी बीच में कभी – कभी विजेन्द्र के पिता, विजेन्द्र को अपने साथ शिकार के लिए ले जाते थे। कुत्तों को हिरन, खरगोश, गीदड़, लोमड़ियों के पीछे दौड़ाना,

उनका शिकार करना, उन्हें पसंद था। विजेन्द्र को भी इस काम को करने में बड़ा मजा आता था। विजेन्द्र दिन में घर की बैठक के ठीक सामने तालाब में बंशी से मछलियाँ पकड़ते थे। अमरूदों के बाग में हमउम्र बच्चों के साथ लवेसादिया (एक प्रकार का खेल, जो पेड़ पर चढकर खेला जाता है) खेलने में बड़ा मजा आता था। लट्ठमार और गिल्ली डंडे का चाव भी कोई कम नहीं था। यद्यपि ये सब करने के लिये सब मना करते थे, परंतु मन इसी खेल को खेलने में लगता था। पिता ने विजेन्द्र को बैल हाँकना, घुड़सवारी और शिकार जैसी अपनी अभिरूचियों में विजेन्द्र को ढालना चाहा, पर माँ के द्वारा पढ़ाई की पैरवी की जाने के कारण विजेन्द्र उझियानी के नीदरसोल स्कूल में दाखिला लेकर पढ़ाई के प्रति दिलचस्पी दिखाने लगे।

3.1.2. उच्च शिक्षा एवं प्रेरणा

विद्यार्थी जीवन के आरंभिक वर्षो में उझियानी में छात्रावास में रहे। उर्दू जुबान में कुछ अधिक मिठास जान पड़ती थी और अपने मौलवी साहब के मुँह से कई तरन्नुम सुने। मुशायरे देखे। कवियों को सम्मान मिलते देख इन्हें भी यह मन हुआ, कि कुछ लिखा जाये, और इसी के चलते विजेन्द्र ने उर्दू में कुछ लिखना शुरू किया। 'पहले पहल लिखकर तकिये के नीचे छुपा दिया करता परंतु ऐसा कब तक चलता। कुछ समय के बाद छात्रावास के लड़कों को पता चला। उन्होनें शरारत करना शुरू किया। एक दिन तकिये के नीचे से कॉपी निकाल ली। और लगे मजाक उडाने। 'कवि महाराज' नाम से नामकरण कर दिया गया। आये दिन परेशान करने लगे। गाने सुनाने के लिये कहने लगे।'[3] जब कभी नहीं सुनाया तो हाथापाई भी की गई। इस व्यथा को संकोची स्वभाव के चलते किसी से कहा भी नहीं।

सातवीं कक्षा पास कर लेने के बाद आगे पढाई के लिये विजेन्द्र खुर्जा आ गये। यहाँ उन्हें आज के प्रसिद्ध कवि अशोक चक्रधर के पिता श्री राधेश्याम शर्मा से पढ़ने को अवसर मिला। सुरीले कंठ के धनी इन गुरूजी के कवि मन को अनुभव करके कुछ लिखने को मन होता था, परंतु छात्रावास के लड़कों की करतूत के चलते कुछ करने का मन होने के बावजूद कुछ नहीं लिख सके। खुर्जा में ही इन्हें 'प्रज्ञाचक्षु' गुरू श्री भूपगिरि से अंग्रेजी पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इन्हीं से 'मार्क्सवाद का बीज विद्यार्थी विजेन्द्र के चित्त में अनायास पैठ गया।'[4]

खुर्जा में दसवीं तक शिक्षा हुई। इसके बाद काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रवेश हुआ। काशी, विजेन्द्र के लिए वह जगह थी, जिसने विजेन्द्र को तराशने में अपनी महती भूमिका निभाई। यहाँ विख्यात कवि और आलोचक केदारनाथ सिंह और विश्वनाथ त्रिपाठी इनके वरिष्ठ सहपाठी थे। प्रख्यात समीक्षक नामवर सिंह और प्रसिद्ध कवि उपन्यासकार रामदरश मिश्र ने इनको

कक्षा में पढ़ाया। बहुत बड़े कथाकार शिवप्रसाद सिंह और त्रिलोचन का स्नेहिल सानिध्य इन्हें प्राप्त हुआ। त्रिलोचन ने काव्य गुरू बनकर इन्हें संस्कृत साहित्य, काव्यशास्त्र, भारतीय दर्शन तथा संस्कृति का विपुल मौखिक ज्ञान बातों ही बातों में दिया। 'लगातार चार वर्षों तक वह मुझे कविता की प्रविधि, कवि कर्म का महत्त्व, निरंतर संवाद शैली समझाते रहे। कुछ बातों में गाँठ बाँधने को कहा गया, जो मेरे कवि कर्म के लिए अत्यन्त आवश्यक थी। उनमें से एक बात यह कि – 'कवि कर्म प्रारंभ करना सरल है, परंतु अंतिम सांस तक उसका निर्वाह कर पाना अत्यंत विरल। कवि को एक योद्धा की तरह तैयारी करनी पडती है। कविता करना मनोरंजन का काम नहीं है इसका काम बीहड पथ पर चलना है।'[5] त्रिलोचन जैसे कवियों ने ही इन्हें कवि कर्म को ऊँचाई दिखाई और परंपरा के रूप में संस्कृत और काव्यशास्त्र की समझ को जरूरी बताया।

3.1.3. वैवाहिक जीवन एवं प्रसंग

लगभग 18– 19 वर्ष की अवस्था में आज्ञाकारी पुत्र की भाँति ऊषा देवी से विवाह हुआ। विवाह के आरंभिक दिनों में वे इनसे ज्यादा बात नहीं करते और यदि करते तो केवल अपनी कविता से संबंधित। विवाह के दूसरे मायने जिनमें घर परिवार वंश इत्यादि की बातें इनसे कोसों दूर थी। कहते है कि जब विजेन्द्र बनारस में अपनी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, उन दिनों में जब इनकी पत्नी इन्हें पत्र लिखती थी तो ये उन पत्रों में पता काटकर वापस कर देते थे। उन्हें भय था, कि पत्नी के चक्कर में कहीं पढाई लिखाई चौपट न हो जाये। 'गाँव में सब इन्हें काशी का पंडित नाम से संबोधित करते थे। ऐसे पंडित को समझना, समझाना मेरे बूते की बात न थी। कई बार सिर ठोका। कैसे पति से पाला पड़ा। पर धीरे – धीरे सब बदला। विवाह के तेरह वर्ष बीत जाने पर भी जब घर में किसी बच्चे की किलकारी नहीं गूँजी तो माँ को चिन्ता हुई और विजेन्द्र के दूसरे विवाह की चर्चा ने जोर पकड़ा। परंतु विजेन्द्र ने इस तेवर के साथ माँ को जवाब दिया 'आपका वंश तो चल रहा है मेरे की आप चिंता न करें।'[6] विजेन्द्र के ये तेवर इतने तीखे रहे, कि माँ ने कई दिनों तक विजेन्द्र से बात नहीं की। विजेन्द्र की पत्नी बताती हैं, कि, 'विजेन्द्र को मैने एक आज्ञाकारी पुत्र और सख्त पति के रूप में पाया। छोटी – छोटी बातों पर झुँझलाना। गुस्सा होना। माँ जब कुछ कहे तो चुप हो जाना। घर में रहें तो किताबें। बाहर खेतों में घूमना। बाग बगीचों में निकल जाना।'[7]

3.1.4. स्वभाव

विजेन्द्र जी अत्यंत प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं, वे जीवन और कर्म के प्रति अत्यंत संयम और अनुशासन के साथ पेश आते रहे हैं। उनके जीवन में कवि कर्म महत्त्वपूर्ण है और इसी कवि

कर्म का साधने में उन्होंने अपने जीवन को एक आकार दिया है। निजी जिंदगी में विजेन्द्र सांसारिक सरोकारों से दूर ही रहते हैं। घर परिवार और रिश्तेदारों से केवल मिलते भर हैं, पर साहित्य प्रेमियों के लिए घण्टों चर्चा करते हुए भी नहीं थकते। साहित्य जगत् में कविता की जिम्मेदारी स्वयं विजेन्द्र के कंधो पर है तो सांसारिक जगत् की जिम्मेदारियों का निर्वहन उनकी पत्नी ऊषा जी, पुत्र राहुल नीलमणि एवं बेटी अनामिका द्वारा निभाई जाती रही है। 'घर का सारा काम – धाम मैंने अपने ऊपर ओढ़ लिया। विजेन्द्र का काम रहा पढना – लिखना, कविताएँ लिखना।'[8]

पिता के रूप में विजेन्द्र से उनके बच्चे पढ़ाई के मामले में डरते रहे हैं। श्रुतिलेखन, शुद्धलेखन पर उनका बहुत ध्यान रहता था। पढ़ाई के मामले में वे किसी भी प्रकार की कोताही नहीं बरतने की सलाह भी देते रहे हैं। उनका मानना है अच्छी पुस्तकें आपकी अच्छी मित्र और सहायक होती हैं। किसी साहित्यिक बहस में अपना पक्ष रखने के लिए पुस्तकों का अध्ययन विश्वासपात्र सहायक की भूमिका अदा करता है।

किसी साहित्यिक बहस में विजेन्द्र बहुत ही संवेदनशीलता के साथ अपने संदर्भ और तर्क रखते हैं। ऐसा करते हुए वे कभी – कभी उत्तेजित हो जाते हैं। कभी कभी ये बहसें इस हद तक होती हैं, कि विजेन्द्र खाने, पीने और सोने को भी भूल जाते हैं। एक खास बात यह भी है, कि कवि को इन बहसों के लिए किसी मुकम्मल समय या स्थान की आवश्यकता नहीं होती। घर पर, सड़क पर घूमते हुए, या घना में सैर करते हुए या फिर किसी चाय की थड़ी पर भी।

विजेन्द्र बहुत सादगी से रहना पसंद करते हैं। सामान और वस्तुओं से उन्हें लगाव नहीं। सिनेमा, सस्ती पत्र पत्रिकाएँ पढ़ना या फैशन और सज – धज की बातें उन्हें नहीं सुहाती। वे आधुनिकता को विकृति मानते है। खादी उनकी प्रिय पोशाक रही है। बनारस में अपने गुरू रामअवध द्विवेदी के खादी अनुराग और संस्कार के चलते उन्होंने खादी को अपनाया। घर में भी विजेन्द्र दिखावा पसंद नहीं करते। नौकरी लगने पर जो साधारण सोफा विजेन्द्र के घर में आया वह आज तक काम में ले रहे है। कितनी ही बार परिजनों के कहने पर भी वे उसे नहीं बदलते। विजेन्द्र को अपनी डायरी, पैन, किताब, कोई कागज या और कोई चीज जहाँ उन्होने छोड़ा है, यदि वह नहीं मिले तो एकदम बेचैन होकर झुँझलाते हैं। कारण संभवत यह है, कि चिंतन करते हुए यदि कोई विचार स्फुरण हो तो इन सबके बिना कैसे लिखा – पढ़ा जाए।

विजेन्द्र अध्ययनशील व्यक्ति हैं। सदैव पढते – लिखते या चित्र बनाते रहना उन्हें पसंद है। बहुत ही कम लोग जानते है कि विजेन्द्र कवि होने के साथ साथ भावों के चितेरे भी है। उनका 'आधी रात के रंग' कविता संग्रह आने के बाद लोगों को जानकारी हुई कि वे चित्रकार भी है। 'वागर्थ' और 'कृतिओर' के मुख पृष्ठ पर उनकी पेंटिंग्स वर्षो से प्रकाशित होती है।

विजेन्द्र अपनी धुन के पक्के और दृढ़ी व्यक्ति है। निजी जीवन हो चाहे साहित्यिक जीवन उनकी कथनी और करनी में कहीं भी लेशमात्र अंतर नहीं है। वे व्यर्थ की मान्यताओं और दिखावों से कोसों दूर है। उनकी माँ का देहान्त होने पर 'परिवार व समाज वालों के लाख उकसाने पर भी उनके दाह संस्कार के बाद अन्य कर्मकाण्डों को नहीं किया। न दसवाँ, न मृत्यु भोज।' इसी प्रकार अपने इकलौते पुत्र का विवाह जैसे उत्सवी माहौल मे भी अत्यंत सादगी की बानगी कामेश्वर जी के इस कथन से स्पष्ट हो जाती है– 'विवाह के एक दिन पूर्व भी कविवर के आवास पर किसी प्रकार की हलचल या धूमधाम नहीं दिखी। घर के सदस्य दिल्ली गये और बहू लेकर आ गए।'[9]

साहित्यिक जीवन में विजेन्द्र को उन लोगों से घृणा है जिनका स्वभाव दोहरा होता है। यही कारण है कि विजेन्द्र के बहुत ज्याद मित्र नहीं है। यहाँ तक कि वे लोग जिनका व्यक्तित्व अवसर की ताक में रहता है वे भी विजेन्द्र को पसंद नहीं करते। 'विचारधारा से विचलित होकर अवसरवाद के शिकार हो रहे लेखकों के प्रति उनके मन में गहरी घृणा है।'[10] भटके हुए कवियों को भी अनेक बार उन्होने सत्य से परिचित कराया है। विजेन्द्र के संपर्क में आने के बाद कामेश्वर त्रिपाठी गजलें लिखना भूल गए। कविता की ओर उन्मुख हुए।'[11]

ठकुर सुहाती बात करना विजेन्द्र को पसंद नहीं है। सत्य और सिर्फ सत्य के प्रति प्रतिबद्ध विजेन्द्र को आज तक कोई भी पराजित नहीं कर सका। ज्ञानेन्द्रपति ने उन्हें 'विजयी नहीं पर अपराजेय' कहा है। कितने ही झंझावात आये परंतु वे कभी नहीं डिगे। आलोचना का दौर चला पर वे इंच भर भी नहीं डिगे। कई दोस्त इस वजह से छूट गये, पर कोई गम नहीं। विचार आज तक नहीं छूटे। यह एक बड़ी वजह भी है कि साहित्य क्षेत्र में उनके विरोधी अधिक और मित्र कम हैं। विजेन्द्र कहते है कि 'अगर कोई सृजन कर्म करना चाहता है तो वह पूरी गंभीरता के साथ करे नहीं तो उसे करने को बहुत से काम है। सृजन कर्म में खोना ही खोना है। यह काम कठिन है।'[12]

'कृति ओर' के माध्यम से नये और संभावनाशील लेखकों के प्रति भी विजेन्द्र की पूरी हमदर्दी है, भले ही वह कोई भी हो, कहीं का भी हो। बस शर्त इतनी ही है कि वह सत्य का

अनुसंधित्सु और प्रतिबद्ध हो। केशव तिवारी, महेश चंद्र पुनेठा और सुरेश चंद्र सेन निशांत जैसे नाम इसी स्वभाव का परिणाम है।

3.1.5. संघर्ष और साधना

विजेन्द्र अपने फक्कड़ स्वभाव के लिए जाने जाते हैं। यह फक्कड़ाना अंदाज कबीर की तर्ज पर है। मतलब यह है कि जैसे कबीर यथार्थ को जानकर सत्यानुसंधान को पकड़ने के लिए किसी भी कीमत पर जाने को तैयार थे, ठीक उसी प्रकार विजेन्द्र ने भी कभी अपने सिद्धांतो से समझौता नहीं किया। उन्होने हर कीमत पर अपने को चुका कर भी उन महामनाओं की कोई बात नहीं मानी जो साहित्य की नौका पर सवार होकर भव से पार जाने के युक्ति युक्त तरीके बताने और उन पर अमल करने में माहिर थे। कविता के लिए विजेन्द्र संघर्षी रहे। रोजी रोटी के लिए नौकरी मिली। अंग्रेजी के व्याख्याता बने। भरतपुर में पोस्टिंग हुई, पर फिर भी अपनी कविता के लिए लगातार चिंतित रहना इनके स्वभाव में था। अनेक बार अपने घर से गायब रहने लगे। भरतपुर के घना में सैर करना। घंटो प्रकृति को निहारना। प्रकृति का पोर– पोर देखना। उन पौधों की ओर ज्यादा देखना जिन्हें कोई नही देखता। उन लोगों की ओर ताकना, जिन्हें कोई फूटी आँख नहीं देखना चाहता। श्रमसाध्य कामगर उनकी पहली पसंद और उपेक्षित फूल – पौधे उनकी कविता का कच्चा सामान। भरतपुर के मशहूर वायलिन वादक के घर रात भर वायलन सुनना। 'ओर' एवं 'दिशाबोध' के लिए प्रहलाद सिंह के पास दस – दस घंटों बैठे रहना। उनकी पत्नी के अनुसार जब 'विजेन्द्र की माँ जीवन के अंतिम क्षण के करीब थी तब भी उन्हें प्रेस से बुलाया गया।'[13]

लेखन में पूर्ण रूप से समर्पित विजेन्द्र उत्सव, रिवाज या रिश्तेदार से महत्त्वपूर्ण अपने कवि कर्म को मानते हैं कोई चूक न हो इसलिए सबसे ज्यादा ध्यान कविता पर ही रहा। उन्हें दुनियादारी में घुटन महसूस होती थी। कवि का आलम यहाँ तक है कि अपने कवि कर्म को साधने के चलते शादी के बाद वे कभी अपने ससुराल नहीं गये। बीमार हुए बच्चों की देखरेख करने के साथ साथ कविता भी लिखते रहे। सदैव त्रिलोचन, नागार्जुन, नामवर सिंह, रामदरश मिश्र, वेणु गोपाल, डॉ. जीवन सिंह, निर्मल शर्मा और अनेक ऐसे लोग जो साहित्य के काम से जुड़े थे। वे ही विजेन्द्र के सब कुछ थे।

विजेन्द्र 'कृतिओर' पत्रिका निकालते थे, पर एक समय ऐसा आया जब पत्रिका को बंद करने की स्थिति आ गई। उनकी आँखों में आँसू थे, पर विजेन्द्र को उनकी पत्नी ने ढाँढ़स बँधाया कि चिंता नहीं करो, किचन का खर्च कम करके पत्रिका निकालेंगे। इस साहस और संघर्ष के बाद आज तक पत्रिका बदस्तूर जारी है।

3.2 विजेन्द्र का कृतित्व

किसी भी रचनाकार की स्वानुभूति तथा प्रतिभा उसकी रचनाओं के द्वारा समाज के सामने आती है। कवि विजेन्द्र ने अब तक तेईस कविता संग्रह, दो काव्य नाटक, तीन डायरी, और दो आलोचना ग्रथों का निर्माण किया है। जिनका संक्षिप्त परिचय हम निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से करेगें।

3.2.1. कविता संग्रह

3.2.1.1. त्रास

'त्रास' विजेन्द्र का सर्वप्रथम काव्य संग्रह है, जो 1966 में प्रकाशित हुआ। इसमें कुल 55 कविताएँ संगृहीत हैं। त्रिलोचन को समर्पित इस काव्य संग्रह में मिश्रित संवेदना की कविताएँ संकलित है। इसमें आत्मान्वेषण और प्रकृति पर्यवेक्षण का मिला – जुला स्वर वृहत्तर संभावनाओं की आहट के साथ लक्षित होता है। आकार की दृष्टि से कुछ कविताएँ बड़ी तो कुछ छोटी है। 'संक्रमण', 'बोध', 'अग्निचक्र' जैसी अपेक्षाकृत कुछ लंबी कविताओं के अतिरिक्त वे छोटी कविताएँ विशेष ध्यानाकर्षण करती है, जिनमें कवि प्रकृति की छोटी बड़ी गतिविधियों का चित्र खींचना चाहता है। इनमें 'अबाबीलों के झुंड' हैं तो 'पहली वर्षा' की विचारशील स्थिति भी। 'सूर्यनमन' और 'घास के सफेद फूल' का बिम्ब विधान कुछ कम प्रभावित नहीं करता, फिर भी ऐसा लगता है जैसे कवि दृष्टि में 'प्रत्येक आकृति खिन्न' है। एक गहरे क्षोभ, उदासी और अवसाद की मनोदशा के भीतर त्रास की अधिकांश कविताएँ महसूस की जा सकती है। इसमें स्पष्ट न होने पर भी प्रेम, जीजिविषा, और प्रकृति के सौन्दर्य के बरक्स जनचेतना के व्यापक होते सरोकार है। यथा –

'तुम्हारे प्रेम को अनुध्वनित करने वाला संगीत
दुर्दम समय सा
उस आंदोलित समुद्र पर छा जाता है
वह समुद्र
अंतरंग और अंतर्विरोधों धाराओं से समाकुल
और विक्षुब्ध है
जिसके अभेद्य कालेपन में
जनसमूह की प्रत्येक आकृति खिन्न
और प्रताड़ित फेन की तरह उद्भ्रान्त है
मस्तिष्कों में एक तटीय लहराघात

सुनाई पड़ता है
और पथ केन्द्र में
स्फुलिंग उछटता है वह संगीत।'[14]

कवि के त्रास का कारण कहीं प्रेयसी के पास सदेह न होना, तो कहीं स्वानुभूत की अमूर्त और अनाघ्रात व्यंजना में बाधा पड़ना। जो भी हो विजेन्द्र की इन शुरूआती कविताओं में जो वस्तु बीजाभाव के रूप में दिखाई देती है, वह है 'अस्पष्ट जनाकुल रव'। वहाँ उनके पद्याकाश में –

'एक अशम और दुर्दान्त आकृति कराह उठती है
और तब यह व्यंजना देह धरते – धरते अधूरी ही रह जाती है।'[15]

3.2.1.2. ये आकृतियाँ तुम्हारी

1980 में प्रकाशित इस कविता संग्रह को युवा आलोचक कर्णसिंह को समर्पित किया गया है। 38 कविताओं के इस संग्रह में श्रम और सौन्दर्य का गान है। कवि श्रम के 'श्र' और श्री के 'श्र' में लौकिक समानता देखता है–

'चेहरों पर दमकतीं
चाँदनी सी तीखी दंतुलियाँ
दिन – भर के श्रम से
गलपटों पर
छलक आई हैं
पसीने की श्री : कनियाँ।'[16]

इस कविता संग्रह में प्रकृति और मनुष्य की स्वाभाविक दिनचर्या में उन प्राणियों को भी शामिल किया गया है जिनके आकर्षक चित्र हमारी जातीय कविता, खास तौर से कालिदास की कविता में मिलते है। ग्राम्य संस्कृति के प्रति गहरी आत्मीयता है। इस काव्य संग्रह की एक खास बात यह है, कि कवि अपनी आस्था और पक्षधरता में बिल्कुल स्पष्ट है। उसका सौन्दर्य बोध जनसाधारण के श्रम और संघर्ष के भीतर कुछ मूल्यवान पाता है, जो परिणति में कविता

बनता है। विजेन्द्र पूरी तत्परता से अपने आस पास के घटना क्रम और दृश्य प्रसार को आलोचनात्मक यथार्थवाद के भीतर व्यक्त करते है।

'यह समाजवाद किनके लिए है?
वे जो हाथ बाँधे खड़े हैं उनके लिए या
वे जो झूठे अपराध में मार खा रहे हैं
जनांदोलनों में जिनकी मौत हो गई है
जो फौज में भरती होने के लिए अपने सीने
का नाप दे रहे हैं।........
यह समाजवाद कैसा है
जिसकी टहनियों पर
कौवे पंचायत लगाते हैं।'[17]

विजेन्द्र ने ऐसी कविताएँ अधिक लिखी हैं, जो सपाट बयानी की सीमा को पार करके अपने समय की चेतना को अभिव्यक्त करती है। कवि समाजवाद के खोखले आवरण को हटाने की कोशिश में है। वे श्रमिक और अस्पृश्य कहे जाने वाले शोषित जन की आवाज है 'रूपवर्णना', 'तीसरी आँख', 'स्थलाकृति', 'आबोहवा', और 'मुखपृष्ठ' जैसी कविताएँ इसी श्रेणी की है।

3.2.1.3. चैत की लाल टहनी

विजेन्द्र का तीसरा कविता संग्रह 'चैत की लाल टहनी' 1982 में प्रकाशित हुआ। यह संग्रह इन्होने अपनी पत्नी श्रीमती ऊषा जी को समर्पित किया है। 21 कविताओं से संकलित इस संग्रह में कवि के राग बोध की वह सघन सामाजिक अभिव्यक्ति है, जिसे कविता के टुकड़े उठाकर दिखा पाना थोडा मुश्किल है। जीवन की समग्रता और निरंतरता इन कविताओं की विशेषता है। 'धरती जग गई है' से शुरू होकर 'चैत की लाल टहनी' तक कवि की केंन्द्रीय चिंता में प्यार का महज बखान नहीं बल्कि प्यार के लिए उस सुदृढ आधार की तलाश है। जिसका नाता – रिश्ता, उत्पादकता, स्वाभिमान और मानवता से है। पहली नजर में कवि घरेलु रोमान की गिरफ्त में दिखेगा, कि वह जूड़े में लगे फूल पर मुग्ध है, लेकिन यह फूल किसी बगीचे का नहीं सरसों का है। कवि इस संग्रह की प्रथम कविता 'धरती जग गई है' के आरंभ में कहते हैं–

'प्रिय
आज मैं तुम्हें
सरसों की फुनग देता हूँ।
कविता का अंत इस प्रकार है –
तुम्हारा दिल एक पिंडुक की तरह भोला है
यह दुनिया तुम्हारे लिए क्रूर होती जा रही है
जहाँ रोशनी है चारों तरफ
वहाँ धरती जग गई है
मैं अभी मुक्त नहीं हो पाया
प्रिय
आज मैं तुम्हें सरसों की फुनग देता हूँ।'[18]

इसमें रिज्जी को समर्पित पाँच वात्सल्य कविताएँ है पर 'चावलों की गंध', 'मेवात की धरती', 'भूरे बादल' और 'तपा चेहरा' जैसी कविताएँ अपनी उपस्थिति से इस संग्रह को समकालीन भाव बोध के भीतर लाती है। इस परिप्रेक्ष्य में विजेन्द्र का कवि व्यक्तित्व भी स्पष्ट आकार लेता है एक ऐसा कवि व्यक्तित्व जो ऋतुओं की समय के भीतर की गहरी समझ रखता है और उन्हें प्रकृति जगत् में घटित होते गहरी आत्मीयता से देख सकता है, दिखला सकता है। उनके अनुभूति क्षेत्र के विस्तार में श्रृंगार को वात्सल्य और करूणा के संश्लेष में मध्यकालीन भाव बोध से मुक्ति मिलती है साथ ही श्रम का सौन्दर्य इसमें समकाल का विवेक भर देता है।

3.2.1.4. उठे गूमड नीले

'उठे गूमड़े नीले' 1983 में प्रकाशित लंबी कविताओं का संग्रह है। इसमें चार कविताएँ है। संग्रह की पहली कविता है 'टूटती हैं ढाएँ'। इस कविता में इस तथ्य को बताया गया है कि समकालीन काव्य – परिदृश्य में जगह बनाने के लिए एक कवि को कितने श्रम और शिल्प की जरूरत है। इस कविता में विजेन्द्र दिखाते हैं, कि इस दुनिया को सुंदर और बेहतर बनाने का दायित्व सिर्फ मनुष्य पर है, उस मनुष्य पर जो धमनभट्टियों पर इस्पात ढालता है। पूँजीवाद के आरोपित अँधेरे में उस मनुष्य की शक्ल दिखाई नहीं देती, लेकिन वह सघन अँधेरे में भी झाऊ की जड़ों के समान धरती पर गहरे स्तर पर जुड़ा है। मनुष्य निर्मित मशीनों

ने विविधता का जो सजीव संसार रचने में भूमिका निभाई है, विजेन्द्र उसे गहरी संवेदना में प्रस्तुत करते है। –

'रात दिन
अग्निचक्र, दाँतदार पहिए
पता लगता है
मनुष्य की शक्ति का
जब कटते हैं गाटर
नबती है छड़ें
बनकर निकलती
बडी बडी स्पाती चादरें
कांटेदार तार
रेल के डिब्बे, पटरियाँ फिश प्लेटें।'[19]

इस कविता में विजेन्द्र यह भी दिखाना चाहते हैं, कि आधुनिक और सभ्य कही जाने वाली दुनिया के निर्माण में भी उत्पादक वर्ग का कितना और कैसा योगदान है। उनके अनुसार सर्वोपरि मनुष्य के मस्तिष्क और श्रम के मेल से ही खडी होती है 'नई अधिरचना'।
'अधिरचना होती है फौलादी चोट से।'[20]

इस कविता संग्रह की दूसरी महत्त्वपूर्ण कविता 'तस्वीरन अब बड़ी हो चली' फूलों की दुनिया से संबद्ध तस्वीरन की काव्य – कथा है, जो अस्पृश्य समझी जाती है, पर उसके बनाये फूलों की माला से किसी को परहेज नहीं। उसकी फूलों से गहरी आत्मीयता है, स्नेहिल संवाद है। उसकी दिनचर्या में अहमद भाई, अब्बा और उसकी माँ शामिल है। तस्वीरन का परिवार चौराहे पर गजरे और फूलों की माला बेचने का काम करते हैं इसके बिना उनका गुजारा नहीं। वह सब समझती है –

'आते हैं सज – धज
फूलों का भाव – ताव करने
रोज– रोज ताँता लगता है
लखकर मुझको कोरों से कह जाते कही – अनकही।'[21]

लोगों के कुत्सित मनोभावों का जानते हुए भी वह केवल अपने पेट के कारण इस दिनचर्या से बँधी है। लोग उसे मुस्लिम होने के चलते नफरत और तिरस्कृत दृष्टि से देखते हैं। उसका परिवार देवी देवताओं और रसिक समाज को खुशबू देकर सुख देता है पर वे आज तक उन फूलों से सुख प्राप्त नहीं कर पाये। विडंबना है कि –

'जुग बीता फूलों को चुनते चुनते
जिनका
वे उनकी गंध ले नहीं पाए
गजरे गूँथे
हार बनाए
जब जाके घर में
ये दाने आए
लेकिन उपर से यह दुनिया रंग रंगीली
फूल सुहावन औरों को।'[22]

इसी संग्रह की कविता 'खड़ा मेड़ पर कुकुर भाँगरा' निराला के कुकुरमुत्ता से कला मूल्यों में अपनी समानता रखती है। इसका कारण भी यही है कि निराला और विजेन्द्र दोनों एक ही सौन्दर्य दृष्टि रखते है। जिसका नाम है श्रम सौन्दर्य। कुकुर भाँगरा की आपबीती में उत्पादन के कार्य में लगे लोगों की नियति से साक्षात्कार है।

'बार बार उखाड़ देता है
जड से भू स्वामी
उगि आता है निर्लज्ज
फिर भी
खड़ा मूतता कुत्ता टाँग उठाए
उस पर
पावन धरती चुप्प पडी है ....
पड़ा अकाल भयानक
सूखे सारे ताल पोखरे

डिग्गी
फिर भी उगि आया
यह पत्थर के नीचे।'[23]

इस कविता में विजेन्द्र ने प्रकारांतर से नए लोकतांत्रिक समाज में रचनाकारों की छद्‌म प्रगतिशीलता को भी बेनकाब करते हैं। साथ ही साथ 'कुकुर भाँगरा' अज्ञात कुलशील प्रतिभाओं के प्रतिरूप का भी प्रतिनिधित्व करता है।

3.2.1.5. धरती कामधेनु से प्यारी

सन् 1990 में प्रकाशित इस संग्रह में 40 छोटी कविताएँ और 9 लंबी कविताएँ संकलित है। इस कविता संग्रह में जनपदीय वैशिष्ट्‌य की गंध हैं। किसान, मजदूर, फसल, खेत और न जाने कितने संस्कार अपनी नूतनता में रचे बसे हैं। कवि का किसानी संस्कार इन कविताओं के फलक पर विकास को दिखाता है। विजेन्द्र की कविता का जनपद फैला हुआ है। बदायूँ, बनारस, खुर्जा, भरतपुर, आगरा, चूरू और जयपुर की जमीनी वास्तविकता और लोक संवेदना को उन्होंने गंभीर रूप से रचनात्मक बनाया है। 'धरती कामधेनु से प्यारी' में ऐसी कविताएँ ज्यादा है, जिनमें स्थानिक उपकरणों की चर्चा है। कवि अपने पूर्वकथन में कहता है 'लंबे समय के बाद भरतपुर छूटा। मरूप्रदेश के अंतरंग में जाना पडा। यहाँ जन जीवन, प्रकृति, मुहावरा और संस्कृति का जो तीखा अनुभव हुआ, वह इन कविताओं की भंगिमाओं में ध्वनित है।'[24] कविता संग्रह के आरंभ में संकलित छोटी कविताओं को संवेदनात्मक ज्ञानधारा के भीतर समझा जा सकता है मुक्त छंद में होकर भी लयात्मक आरोह अवरोह इनमें सुरक्षित हैं। यथा –

'इच्छा से
नहीं बहा करते निर्झर
कहाँ टूट पाती चट्‌टानें
काले पत्थर।
समूहगान सा उठता स्वर
फोड़ तमस का अंतर।
फिर भी
जागो जागो
प्रिय जन भारत के

तपते हलधर

जागो।'[25]

विजेन्द्र की कविता एक जीवन पद्धति है, जो कलावादी व्यक्तिवादी संरचना का सार्थक सही विकल्प भी है। इसमें जनपक्षधर कला की विविधता और बहिर्मुखता हमेशा ही आश्वस्त करने वाली रही है। स्वभावतः प्रगतिशील कविता में प्रयोगों की नवीनता को भी समाजोन्मुख बनाने की कोशिश है। 'ऊषा' नामक कविता में –

'खेत जोतकर बोया

जौ गेहूँ

सरसों की माँग भरी

ऊषा ने अंग बसन बाँधे

अलकें खोली

जल की कलशी हाथ धरी

कृषक मेरे युग का नायक है

श्रमिकों के संग जननायक है।'[26]

इस कविता संकलन की लंबी कविताओं में 'मुर्दा सीने वाला' और 'नत्थी' दो ऐसी कविताएँ है जो सर्वहारा वर्ग का मजबूत प्रतिनिधित्व करती हैं। 'मुर्दा सीने वाला' कविता में जो नायक – नायिका संवाद है, वह अपूर्व है। यह कविता हिन्दी साहित्य की प्रबंध परंपरा (लम्बी कविता) में केन्द्रीय स्थान पर प्रतिष्ठा की हकदार है। इसी प्रकार 'नत्थी कविता' में विजेन्द्र सर्वश्रेष्ठ चरित्राभिव्यंजना करते है। संगीत शास्त्र और वनस्पतियों की दुनिया से ली गई शब्दावली अपने अंतर्जीवन से इस कविता को हिन्दी साहित्य की अद्वितीय वस्तु बना देती है। इसमें नत्थी का कथन –

'सब मरजों की दवा

मुझे लगती पौदों की दुनिया

संगीत स्वरों का कंपन

कोई भी जन हो चाहे

इसके बिन लगता है

बंड बैल कोल्हू का।'[27]

संगीत और वनस्पतियों के प्रति विजेन्द्र का लगाव समकालीनों में उन्हें असाधारण बना देता है।

3.2.1.6. ऋतु का पहला फूल

1994 ई. में प्रकाशित इस संग्रह की कविताएँ अपने भिन्न भावबोध और अंतर्वस्तु से पाठकों का यह महसूस कराती है कि कवि की प्रगतिशील विचारधारा रचनात्मक स्तर पर लोकचेतना को आत्मसात् कर चुकी है। आंचलिकता की खूशबू पूरी क्षमता के साथ प्रकट हुई है। विजेन्द्र अपने समय के शिल्प संबंधी रीतिवाद से भी टकराते है पर वे विनम्र भाव से कहते हैं –

'मैं सर्वज्ञ नहीं
वह मेरे लिए शाप है
मेरी जीवित मृत्यु
मैने जीवन चुना है
जितना खोज पाऊँ
रंग और ऋतुओं से
वह सब मेरा है
संगीत की तरंगों में
झंकृत संसार मेरा है।'[28]

इन कविताओं में कवि ने अपनी प्राथमिकताओं में मनुष्य, समाज, और विश्वजीवन को समेटा है जो प्रकृति और दाम्पत्य प्रेम के लौकिक प्रसार में भी दिखाई देता है। पर्यावरण और संगीत विजेन्द्र की कविता के अजस्र स्रोत हैं। जिन नैसर्गिक सान्निध्यों से बौद्धिकता सदैव चेतना के स्तर पर समृद्ध होती है, उनका गम्भीर सर्जनात्मक आग्रह विजेन्द्र की कविताओं में शुरू से ही परिलक्षित होता है। इसमें सन्देह नहीं कि विजेन्द्र अपने समय के ताप से अपनी कविता से जो आलोक रचते हैं, उसका बड़ा आत्मीय संबंध हमारी जातीय संवेदना से है। ऋतुओं को, फूलों, पेडों, पौधों, पशु पक्षियों, नदी नालों पहाडो, के मानवीय प्रेम, और करूणा से संसिक्त कर विजेन्द्र विचारशील कविता का एक समकालीन और जीवंत संसार रचते है। कविता संग्रह के उत्तरार्द्ध में लंबी कविताओ से साक्षात्कार है। 'सुनो कवि सुनो', 'दिनका

राजा', और 'गंदला नीर यमुना का' उल्लेखनीय कविताएँ है, जिनमें आत्मालोचन मार्मिक और प्रासंगिक बना है।

3.2.1.7. उदित क्षितिज पर

इस काव्य संग्रह का प्रकाशन सन 2000 ई. में हुआ। सॉनेट छंद में लिखा गया यह काव्य संग्रह त्रिलोचन के बाद विजेन्द्र के कविता में दिखाई देता है। विजेन्द्र इस छंद को एक रूपगत व्यवस्था के रूप में ही इसे स्वीकारते है। 'अपनी बात' में उन्होंने स्वीकारा है कि परंपरित छंद अब हूबहू वैसे ही अपनाए जाए – मुझे संदेह है। उस तरह उनकी अपरिहार्यता भी नहीं लगती। उनमें अगर प्रयोग भी किए जाए तो भी बुरा नहीं, पर उनकी अनम्यता में किंचित ढील देनी होगी। कविता में व्यापक लय और अर्थवान नाद सौन्दर्य जरूरी है पर इस कविता की लय अब संगीत की लय से भिन्न होगी। सॉनेट में रूपगत संक्षिप्तता और संरचनात्मक कसावट के कारण हम वाक्चातुर्य शब्दाडंबर से बच सकते हैं। यही नहीं इस काव्य रूप से हम रूप की अतिशयता से भी मुक्ति पा सकेगे।'[29]

इस कविता संग्रह में प्रगतिशील काव्यधारा का प्रवाह है जो क्रमशः स्थायी होता चला जाता है कवि अपने निजी मान्यताओं को साथ लेकर प्रगतिवादी होना चाहता है, जिसके कारण कविताओं में कविता प्राप्त संस्कारों एवं आधुनिक जीवन संदर्भो की द्वंद्वात्मकता देखी जा सकती है। विजेन्द्र का कहना है –

'जो सौन्दर्य प्रतिमान रचे हैं जग ने
नहीं नाप पाऊँगा तुमको उन से
न कहाऊँगा कवि न सही
मनचित्र खिचें हैं हृदय पटल पर वे सच्चे हैं...... ।'[30]

प्रारंभिक कविता कवि कर्म में उन्होने कवि कर्म को अत्यंत सावधानी के साथ किया जाने वाला कर्म स्वीकार किया है ।

'कवि कर्म निभाना बहुत कठिन होता है
चाहे जो कहकर अपने को यश कामी
फूला न समाए होना होगा हामी

जीवन का – वह उसका गायक होता है।'[31]

'असुंदर' और 'उपेक्षित' विजेन्द्र के काव्य के नायक हैं। कितने ही पेड़ – पौधे, घास – पात, फूल – पत्ते आदि उनकी कविता में अपनी महक बिखरते हुए देखे जा सकते हैं।

3.2.1.8. घना के पाँखी

2000 ई. में प्रकाशित इस कविता संग्रह में 93 कविताएँ हैं, जिनमें कवि ने प्रकृति और गीत के धुँधले होते स्वरूप को प्रकाशित किया है। कवि कहता है कि भारतीय काव्य सदानीरा है। कोई भी कविता अपने प्रगीत स्वभाव को कभी भी पूरी तरह नहीं छोड़ सकती है, अतः प्रगीत कविता का वह सहज रूप है, जो उसे सहज और पूर्ण बनाता है। 'घना के पाँखी' मूलतः भरतपुर के घना पक्षी विहार को केन्द्र में रखकर लिखा गया कविता संग्रह है, जिसमें कवि ने अपने घना के अनुभवों को मैथिलीशरण या अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध की भाँति नहीं, बल्कि गहरे पानी पैठ कर रचा है।

'जहाँ उगे हैं आक – ढाक शर्मीले
तिनके गहरे पीले, कण कण गीले
वहाँ आज छाया है भूरी
तेज धूप में चटकी तूरी
सरसों की फसल घनी है
जो जोते धरती, वही धनी है।'[32]

3.2.1.9. पहले तुम्हारा खिलना

44 कविताओं का यह संग्रह भारतीय ज्ञानपीठ से सन् 2004 में प्रकाशित हुआ है। कवि की धरती पर लोक है और कवि उस लोक से जुड़कर जन से जुड़ता है अखिल विश्व से जुडता है। कवि का जीवन बोध उसे बताता है कि –

'उगना जीवन है
फूल आगे की काम्य इच्छाएँ।'[33]

कवि अपनी प्रतिबद्धता के क्षेत्र को भी फैलाता हुआ उसमें सबको समेट लेना चाहता है –

'कोई फूल ऐसा नहीं
जिसमें गंध न हो
धरती से अंकुरित होने वाला हर कल्ला
गंधवान होता है
भले ही मेरे नसपुट उसे न पकड़ पाएँ।'[34]

विजेन्द्र 'धीरज और उगान' के कवि हैं और ये दोनों वरदान उन्हें प्रकृति, धरती और जीवन से मिले है। अपने पर्यवेक्षण में उन्होने पाया है कि पके फल के बीज से अंकुर का फूटना और शाखा पत्र पुष्प से होते हुए पुनः फलप्राप्ति तक पहुँचने में जीवन की जो शक्ति और गति है वह अजेय है। इस यात्रा में बहुत जोखिम है, परंतु विजेन्द्र 'घने गाढ़े बादलों के बीच खिली धूप' की भाँति प्रतिरोध की इच्छा से भरपूर है। 'पकना' 'ढलान' 'वसन्त' आदि कविताओं में बीज से फलदार वृक्ष बनने की प्रक्रिया में अनगिनत बिंबों से विजेन्द्र की कविताएँ अटी पड़ी हैं। 'मुक्त प्यार' 'सिर उठाकर निडरता से चलना' सुंदर चीजों से जीवन को सुंदर बनाना आदि सहज मानवीय इच्छाएँ इन कविताओं को लोकजीवन से अनायास ही जोड़ देती हैं। कवि जानता है कि 'बाहर की दुनिया से ही बड़ा और समृद्ध होता है कवि का मन'। अतः कवि के लिए तमाम दृश्यों, जीवन स्थितियों में सौन्दर्यानुभव करना संभव है। विजेन्द्र न तो 'समय से मुँह चुराने वाले' हैं, और न ही वे समय को समर्पित हो जाने वाले जल्दबाज लुब्धक हैं। वे काल के विरूद्ध भी होते हैं। इसे वे प्रेम कहते हैं, उनके अनुसार यह प्रेम है, जो स्वभाव से ही काल के विरूद्ध होता है। बुढ़ापे का प्रेम वर्णित करते हुए वे कहते हैं –

'कभी कभी चित्त उल्लसित होता है
कि धरती पर प्रस्फुटित बसंत को
तुम्हारी ढली देह के साथ देखूँ
सब......
धीरे धीरे साथ छोड़ रहे हैं
पर बबूल के पत्ते झरने पर
काँटों ने टहनियाँ नहीं छोडी.....
इस कठिन ढलान में
हम

एक दूसरे का हाथ
कसकर
पकड़े रहना चाहते हैं।'[35]

विजेन्द्र के इस काव्य संग्रह में कहीं भी आरोप नहीं है। सभी जगहों पर कवि सहज है। कवि किसी भी जानकारी को आँख मूँदकर स्वीकार नहीं करता, बल्कि समुचित परीक्षण या यह कहें कि गुन कर आयत्त करने का पक्षधर होता है। 'गुना ज्ञान ही साथी होता है'। शब्दाडंबर से परे कवि ने अपनी कविताओं में सरलता को ठोसपन के साथ प्रस्तुत किया है। वे कहते हैं –

'यह भी कि भाषा की दरिद्रता शब्दों से नहीं
विश्वास की कमी से पहचानी जायेगी।'[36]

इस प्रकार यह काव्य संग्रह लोक और जीवन प्रेम को संसार से परे नहीं ले जाता, वरन् संसार की हद में उसे महसूस करता है। 'अन्न' 'उगान' 'जो रचता है' आदि कविताएँ कवि कर्म पर प्रकाश डालती है।

3.2.1.10. वसंत के पार

2006 में प्रकाशित इस कविता संग्रह को अपने गुरू डॉ. रामदरश मिश्र को समर्पित किया है। कवि ने प्रेम और मर्म को कविता की शक्ल में नयी शैली के साथ रूपायित किया है। कवि ने अपनी बात कहते हुए कहा है कि 'मैं यहाँ लोक के और निकट आया हूँ। अपने आस पास के उन चरित्रों से सीधा संवाद किया है, जिन्हें हम अक्सर आँख ओट किए रहते हैं, पर वे होते बहुत जीवंत हैं।'[37] कवि ने लोकपक्षधरता को चुनकर अपनी कविता की संरचना में भी कुछ बदलाव किया है यह बदलाव छंद के स्तर पर, शिल्प के स्तर पर और कही कहीं कथ्य के स्तर पर भी है। कवि कर्म के प्रति आजकल के लेखकों की उदासीनता और सत्तामुखी लेखकों के प्रति भी कवि ने गहरी नाराजगी दिखाई है –

'साँच झूँठ को बना रहे हैं
नाम बड़े हैं
दर्शन छोटे
खोटा सिक्का चला रहे हैं

जिधर हवा का रूख होता है
उधर हमारा मुख होता है।'[38]

कवि कविता की भाषा के प्रति भी चिन्तित हैं –

'अर्थवान शब्द बिना
तुतलाती है भाषा
तलवों में चुभता है
कंकड़ जोर से।'[39]

3.2.1.11. आधी रात के रंग

बहुरंगीय चित्रों तथा उन पर स्वरचित कविताओं (हिन्दी व अंग्रेजी) का संग्रह 2006 'आधी रात के रंग' कवि विजेन्द्र की 24 कविताओं का संकलन है, जिसमें उनका अंग्रेजी अनुवाद भी दिया गया है। संग्रह की एक विशेषता बड़ी अनूठी है कि कवि ने जिन चित्रों को बनाया है कविता भी उन्हीं चित्रों पर लिखी है। विजेन्द्र की दो कलाओं (कविता और चित्रकला) का संगम यह संग्रह अर्थगर्भित सौन्दर्य का सर्जक है। कवि निर्द्वंद्व होकर घोषणा करता है, 'मैं लिखता नहीं हूँ कुछ बाते हैं जो निकल कर सामने आ जाती हैं।' 'शिखर की ओर' कविता में कुछ पंक्तियाँ इस भाव को कहती हैं–

'मेरे पंख कहाँ
जो आकाश में उड़ूँ
उबड़ खाबड़
पृथ्वी चल कर ही
चढ़ूँगा पहाड़ और मँगरिया
ओ दैत्य
हर बार तू मुझे
धकेलेगा नीचे
जीवन ही है सतत् चढ़ना
और मेरे जीवन में

कभी नहीं हो सकती अंतिम चढ़ाई।'[40]

कवि अपने एक नागफणी नामक चित्र पर कविता लिखकर यह मनोभाव प्रकट करता है कि आज भी उसके लिए सर्वहारा वर्ग की चेतना का महत्त्व है। कवि की दृष्टि में नागफणी सृजन का प्रतीक है। इसी तरह 'आद्याशक्ति दुर्गा' शीर्षक कविता में कवि ने लिखा है –

'तुम केवल मिथक या रूपक ही नहीं हो
बल्कि वह सत्य हो : जो मेरी आत्मा ने धारण किया है
मैं तुम में
उभरती जनशक्ति देखता हूँ।'[41]

अन्य कविताओ में यक्ष, और अर्द्धनारीश्वर जैसी कविताएँ सम्मिलित है। इनमें अशिव पर शिवत्व की जीत, प्रकृति के संतुलन और जन में पौराणिक भावों को नयेपन के साथ रोचक और रहस्य से भरकर कवि ने एक नवीन रचनात्मक कार्य किया है।

3.2.1.12. कवि ने कहा

'कवि ने कहा' कविता संग्रह 2008 ई. में किताबघर प्रकाशन से प्रकाशित हुआ, जिसमें कवि की ग्यारह कविता संग्रहों से चुनी हुई रचनाएँ संकलित हैं, साथ ही विजेन्द्र की लिखी पहली वह कविता, जो ज्ञानोदय में सन् 1956 में 'फाँसोगे गीत' नाम से प्रकाशित हुई, यहाँ भी पहली कविता के रूप में छपी है। डॉ. रमाकांत शर्मा को समर्पित इस कविता संग्रह में कवि ने स्वयं वरिष्ठ आलोचक डॉ. जीवन सिंह की मदद से अपनी चुनिंदा कविताओं को इकट्ठा किया है। इस काव्य संग्रह में विजेन्द्र के गाँव से लेकर आगरा, भरतपुर का घना, राजस्थान के मरूस्थल के भूगोल, परिवेश, प्रकृति, मानवीय क्रियाओं, अनुभवों तथा भाषा मुहावरों की निकटता है। इस संग्रह की कविताएँ हमें अपने परिवेश से इतर उस मानवीय चेतना के साथ जोड़ती है जिसे जन कहते हैं। लोक के ताने – बाने में अनेक कविताओं के जन चरित्रों के माध्यम से मानवीय संवेदनाओं को मार्मिक रीति से वर्णित करने वाले इस कवि ने निराला, नागार्जुन और त्रिलोचन की परंपरा को समृद्ध किया है। इस संग्रह की कविताएँ कवि की उस रचना प्रक्रिया का भी परिचय कराती है, जिसमें कवि अपने कवि कर्म में प्रवृत्त होकर अपनी भावनाओं को बहुआयामी बनाते हुए विकसित करता है।

कविता संग्रह की पहली कविता 'फाँसोगे गीत' में कवि घोषणा करता है, कि मैं साम्राज्यवादी ताकतों का पिछलग्गू कवि नहीं, और न ही उनके प्रलोभनों में फँसने वाला हूँ। मैं कविता में मजबूत इरादों के साथ आया हूँ। इतना ही नहीं कवि चुनौती भी देता है, कि कोई मुझे फाँस कर दिखाए –

'फाँसोगे
सोने के फंदे में
वो उड़ते भोले पंख नहीं
फाँसो......... ।'[42]

कवि जनपक्षधर है, और श्रम की महत्ता का उपासक है। 'स्थलाकृति' कविता में कवि ने पीड़ा व्यक्त की है, कि आज तक श्रमिक को उसका उचित स्थान नहीं मिला, जबकि उसके श्रम से ये दुनिया सुंदर बनी है–

'मैं जिन रास्तों से गुजर कर आया हूँ
वहाँ कहीं भी
तुम्हे मेरा नाम नहीं लिखा मिलेगा।'[43]

श्रम ही सर्वहारा का सौन्दर्य है। पूँजीवाद सर्वहारा के बिना अपने अस्तित्व को नहीं बचा सकता। श्रम की उपयोगिता को समय रहते पहचाना जाना चाहिए। श्रमिक को सतर्क रहना चाहिए क्योंकि पूँजीवादी उन्हें मंच के लिए इस्तेमाल करते रहे है।

'लोग मुझे
फिर मंच बनाने की टोह में है।'[44]
'मुझे सतर्क रहना चाहिए
देहरियों पर और घर में
क्योंकि
मेरे पास अब एक ऐसा औजार है
जो खोखे को छीलकर
गिरी को

अलग उचाल लेता है
और लोग उसे हडपना चाहते हैं।'[45]

'कविता का प्रश्न' नामक कविता में कवि यह चिन्ता प्रकट करता है, कि आज आदमी की पहचान खत्म होती जा रही है। कविता से आम आदमी गायब है। ऐसे में कवि दृढता के साथ उस आदमी को पहचान दिलाने के लिए लड़ाई लड़ना चाहता है। 'धरती जग गई है', 'आँच खिल उठी' 'सूखा पत्ता' 'मेवात की धरती' जैसी कविताओं में प्रकृति के चित्र संजोएँ हैं। कवि ने मेवात क्षेत्र की प्रमुख फसल 'सरसों' को सर्वहारा का प्रतीक बनाकर एक नये लोक शिल्प की शुरूआत की है।

'कोहरा सरसों का दुश्मन है
वह
हमारे मुलायम रोयों का दुश्मन है।'[46]

लोक में सरसों का दुश्मन कोहरा है, और दुनिया में श्रमिक का शत्रु साम्राज्यवादी कुलीन लोग है। कवि ने अपने जनपद की प्रकृति में से चैत, कृषक, वृक्ष, थूहड़, भटकटैया, खार, घना, बुई, कोहरा जैसे चित्रों के साथ अपने जन्म स्थल धरमपुर के अल्लादी, आगरा और भरतपुर जनपद में जन चरित्रों में से मीना, तस्वीरन, मुर्दा सीने वाला, मिस मालती, बैनी बाबू, रूक्मिनी आदि के माध्यम से लोक में व्याप्त विसंगतियों को उकेरा है।

विजेन्द्र के इस कविता संग्रह की एक खास बात यह भी है कि लोक संस्कृति और उसके संस्कार उनके द्वारा बनाए बिंबों में इस कदर रचे बसे हैं, कि पाठक उस यथार्थ से सीधे संवाद करता है। कवि ने इन सब के माध्यम से उन बने बनाये ढाँचों को तोड़ा है जो कविता को सच्ची कविता से दूर रखकर कविता रचने का झूठा दम्भ भरते हैं।

3.2.1.13. दूब के तिनके

2009 ई. में प्रकाशित विजेन्द्र का यह कविता संग्रह दोहा और बरवै छंद में लिखा गया है। कवि ने पूरा कविता संग्रह में इन दो छंदो के सहारे अपने कथ्य को कहा है। यहाँ यह महत्त्वपूर्ण है कि ये कथ्य अत्यंत और व्यापक है। लोक में प्रचलित जीवन संघर्ष, जिजीविषा,

जनपद उसका भूगोल, वनस्पति, सामान्य जन की क्रियाएँ, अंतर्विरोध और नवीन सौन्दर्यशास्त्र का विवरण और वर्णन भली प्रकार से किया है। कवि ने दोहा छंद और बरवै छंद के माध्यम से अपनी बात कहने के पीछे यह कारण बताया कि 'दोहा हमारी बोलचाल के बिल्कुल करीब है इसमें तुकों का आतंक नहीं है।'[47]

दूसरी बात यह अनुभव की जा सकती है कि दोहा और बरवै कबीर और तुलसी के काव्य का प्राण रहा है। दोनों ही लोक कवि हैं, और दोनों को ही अपनी बात इन छंदों में कहने में आसान लगी। मर्म को संयम और सामासिक शैली के साथ कह देने में दोहा छंद का कोई सानी नहीं। कवि ने कविता को जीवन से अलग नहीं किया है। कवि स्वयं अनुभव करता है कि जिस प्रकार कबीर के दोहे आज भी प्रासंगिक हैं समकालीन है, ठीक उसी प्रकार मेरा कहा भी प्रासंगिक और समकालीन है। दोहा गहराई में गोते लगवाता है –

'दोहा छंद अचरज भरा,
सार बिंब गहि लेय।'[48]

लयात्मकता के साथ पाठक सामाजिक गहराई और उसके ताने बाने में जीवन को देखता है। श्रमिक, दलित और किसान इस कविता संग्रह के प्रमुख विषय हैं। पर कवि ने आरंभ में कविता और कवि की मानसिक दयनीयता को आवाज दी –

'कविता बिकती हाट में
कवि बिकता दरबार ।
आलोचक गिरवी धरे,
प्रकाशक के द्वार।'[49]

कवि ने वानगॉंग जैसे कलाकार के संदर्भ में अपनी संवेदना को व्यक्त किया –

'जीवन भर जलती रही
चित्र कला की आँच।
विनसिट की रेखान में
ढला दुखों का ढाँच।'[50]

और अंग्रेजों के खिलाफ आदिवासी संथालों का नेतृत्व करने वाले तिलका माँझी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि दी है।

'जीने से मिरतु भली,
झुका रहे यदि भाल।
विजय श्री उसको मिले
चीरे धरती फाल।
तिलका माँझी जी रहा
उन्हीं नसों में आज
खड़े हो रहे जाग कर
संथाली सरता–ज।'[51]

इस प्रकार उक्त काव्य संग्रह कवि के उस अंतर्मन को व्यक्त करता है, जिसमें वह लोक के किसान, श्रमिक और दलित की स्थिति को देख विकल होता है, और कामना करता है कि आने वाला समय इनके लिए उद्धारक हो। लोकतंत्र में लोक को विकल देखकर कवि अनुभव करता है कि अभी सच्चा लोकतंत्र नहीं आया है, और यह तभी आएगा जब श्रमिक किसान और दलित संगठित होकर मुकाबला करेंगें।

3.2.1.14. पकना ही अखिल है

विजेन्द्र के काव्य गुरू त्रिलोचन हैं। हिन्दी में सर्वप्रथम सॉनेट छन्द में कविता लिखने की शुरूआत त्रिलोचन ने ही की। त्रिलोचन के बाद, विजेन्द्र संभवतः एकमात्र कवि है, जिन्होंने इस छंद को अपना काव्य छंद बनाया। 'पकना ही अखिल' 2009 में प्रकाशित हुआ है। विजेन्द्र के लिखे इन सॉनेट्स में शेक्सपीयरी रूपगत व्यवस्था है, जिनमें श्रम–सौन्दर्य, और प्रकृति के परिदृश्यों का अंकन कर अपनी कविता को चित्रात्मकता से समन्वित किया है। इस संग्रह में धरती पर उगी हर वह वनस्पति, फल, फूल, पेड पौधे, खेत, सूर्योदय, सूर्यास्त आदि समस्त प्राकृतिक उपादान हैं जिनका वे अपनी कविताओं में उल्लेख करते हैं। 'गुलखेरा' एक ऐसा पादप है जो जंगली है, पर विजेन्द्र को यह गुलाब की भाँति आकर्षित करता है, इसके आकर्षण से प्रभावित होकर विजेद्र अपने सौन्दर्य बोध को पौधे के माध्यम से व्यक्त करते है।

'हुआ और कुछ खिलने पर गुलखैरा
बडा कुछ और चिकना
फिलहाल
हुआ
छैल छबीला अन्दर – बाहर नम खिला हुआ........
मैं चाहे अन्दर से टूटा, ढब
उसका बना हुआ है
जो नहीं किसी पर निर्भर होता है
वही विजयी है शशिधर।'[52]

कवि निराला और त्रिलोचन की भाँति ही 'मैं' का उल्लेख करते हैं। सॉनेट में यह मैं कभी विस्थापन के दर्द को बयां करते हुए तो कभी आत्मसमीक्षा और कभी जीवनधारा में दिखने वाले विरोध के रूप में दिखाई देता है। विजेन्द्र स्वाभिमानी और सहनशील कवि है। अपने गहरे दंश को एक सॉनेट में वे अभिव्यक्त करते हैं –

'गहरा दंश लिये फिरता हूँ, मन के अन्तरतम में
नहीं जानता कोई कितना अवसाद छिपा
शब्द शब्द में। कहते हैं जीवन को अर्थ दिया
है हँसता हूं सिर्फ दिखाने को
दिखे तम में भी उज्ज्वल धारा बहती है यही धर्म मेरा
अभिशप्त रहूँ अपनी विपदाओं में, न माँगूँ
कभी कुछ किसी से जैसे धरती, क्यों माँगूँ
अपने पथ से जिसे बनाया मैंने
तेरा संग क्या है खाली बादल जैसा। सुनकर भी
व्यथा भीतर की कौन बाँटता है। पीछे से हँसते इठलाते हैं ?......।'[53]

कवि अपने कवि कर्म को निष्ठायुक्त मानता है साथ ही यह इच्छा भी रखता है कि अन्य कवि भी इस कर्म को खेल न समझे। उनकी मान्यता है कि कविता समय साध्य और श्रमसाध्य होती है। वे जानते है कि आज के युग में श्रेष्ठ साहित्यकार की उपेक्षा हो रही है। सच्चे और अच्छे काव्य के पारखी कम होते जा रहे है। इसका कारण कवि पूँजीवादी व्यवस्था को बताता

है, जिसने अनेक कवियों को अपने समर्थन में खड़ा कर रखा है। कवि ने ऐसे कवियों को कुत्सित मानसिकता का कवि बताया है। अपने एक सॉनेट में 'कुत्ते' के माध्यम से ऐसे कवियों की आलोचना की है–

'क्या तुमने देखा है उस पशु को, देखो उसे
ध्यान से देखो । तुमको वह क्या लगता है ....
क्यों जीभ लपलपाता सुर्ख, डरा वह
हाँफ रहा है
खड़ा तेज धूप में प्यासा, जिसे
सिर्फ चिन्ता है अपने मालिक की वह देता है
टुकड़ा भर जीने को। सिखा पढ़ा कर किया
उसे अनुकूलित ढर्रे में रहने को। जिया......
उसे तो मुक्ति का अर्थ
रहा है सुख से रहना दूजे चाहे तो व्यर्थ।'[54]

कवि उपदेशात्मक रीति का अनुगामी होकर सॉनेट रचता है उसका मानना है कि उपदेशपूर्ण कविता अपना प्रभाव छोड़ती है। कवि जनशक्ति के प्रति आस्थावान है। वे समाज को मानवीय रीति से एक देखना चाहते है परंतु कोई दीवार है जो टूटती ही नहीं है। बडे बडे धर्मगुरू और दार्शनिक कहते है कि मानव – मानव समान है, पर कवि प्रश्न करता है फिर यह भेदभाव क्यों नहीं मिटता? उत्तर आता है धन केन्द्रित व्यवस्था। लोकोन्मुखी कवि विचलित होकर इस भेदभाव की दीवार की चर्चा करता है –

'दीवारे हैं, दीवारें है, दीवारें हैं, नहीं दिखाई देती आँखो से,
हम सब को बाँट रही है।'[55]

3.2.1.15. आँच में तपा कुंदन

2010 ई. में प्रकाशित यह कविता संग्रह रामकुमार कृषक को समर्पित है। इसमें प्रेम, सौन्दर्य, और उल्लास के कवि विजेन्द्र ने वर्तमान मे उपजी असंवदना का प्रतिरोध प्रेम से किया है। कवि असंवेदना के मरूस्थल में अंतस् के प्रेम पर भरोसा करता है। 'आँच में तपा कुंदन' कविता संग्रह में रचनात्मक प्रतिरोध की भाषा से इसे समझा जा सकता है। प्रगीत इस संग्रह का प्राण तत्त्व है। स्वयं कवि ने इसे अपनी बात में स्वीकार किया है – 'मैं प्रगीति को अपनी

कविता से अलग नहीं कर पाया। प्रत्यक्ष परोक्ष यह मेरी कविता की संरचनात्मक लय है।'[56] कवि कहते है कि दुनिया में जीवन आज चाहे जितना भी क्रूर, निष्करूण और संवेदनाहीन क्यों न हो सौन्दर्य, प्रेम और उल्लास को वहाँ आज भी जगह है।

संग्रह की कविता 'दुनिया बहुत बड़ी है' में, 'मैं' और 'तुम' का नाटकीय संवाद है। कविता का मूल कथ्य है कि मैं को तुम पर पूरा भरोसा है। तुम उस विराट् संसार में समाहित है जिसके क्रिया व्यापार की ओर कवि का ध्यान बार बार खिंचता है। कवि की सामाजिकता का दायरा इतना व्यापक है, कि वह अपनी जीवन संगिनी को भी संपूर्णता में नहीं देख पाता। 'मैं तुम्हे एक बार में, नहीं देख सकता।' कविता में इसकी तीन बार आवृति होना इस बात का सूचक है। कवि की जीवन दृष्टि और सौन्दर्यबोध में एक आलोक है, वह मैं और तुम के संवाद में मेहनतकश किसान की छवि के अतिरिक्त ऋतु के आगमन की दस्तक है, पूर्वजों के चेहरे पर पडी झुर्रियाँ हैं। नीम की खुरदरी छाल है, झुरमुटों से दिखता बाल रवि और उसके उर्वर इलाके का गौरव आम का पेड़ है, यानि प्रकृति और समाज अपने तमाम वैभव और स्मृतियों के साथ प्रस्तुत है।

कविता संग्रह में कवि की पत्नी ऊषा जी की अनेक दाम्पत्य छवियाँ भी हैं। इन छवियों से वे उन तमाम मध्यमवर्गीय स्त्रियों की संवेदनात्मक ज्ञान को प्रकाशित करती है, जो अपने पति, विशेषकर सामाजिक एक्टिविस्ट से छोटी – छोटी निजी आकांक्षाएँ रखती हैं। ऊषा जी कवि के प्रेम का आलंबन हैं साथ ही आतिथ्य सेवा के चलते 'अन्नपूर्णा' भी हैं। ऐसा करते हुए कभी वे अप्रसन्न भी होती होगीं जिसका विरोध वे मौन रहकर करती है। 'पानी बरस रहा है' कविता में कवि को दरवाजा खोलने के बाद उत्पन्न मौन और दूरी को कवि ज्ञानात्मक संवेदना से हल करते है। कवि के अनुसार सामाजिक संवेदना से भिन्न, निजी संवेदना का निर्माण नहीं किया जा सकता है। 'उपहार' कविता में कवि अपने बच्चों के लिए उपहार नहीं लाते हैं जबकि राजधानी का बाजार उपहारों से अटा पड़ा है। कवि बाजार में मूर्ति शिल्पियों के श्रम को देख रहे होते हैं। कवि पत्नी को कवि की सेहत की चिन्ता है। कवि की चिन्ता है कि पूरा मरूस्थल पूर्वी राजस्थान की ओर बढने को आतुर है। यह सामान्य रूपक नहीं है। कवि विचलित है कि बहुतों का भरोसा टूट रहा है। कवि इतना कठोर नहीं है कि पानी बरसने से स्फुरण न हो। यहाँ मरूस्थल संवेदनहीनता का प्रतीक है। मानवीय मूल्यों का अवमूल्यन मरूस्थल का प्रतीक है। बारिश से ही मरूस्थल में खुशी छाती है, ऐसे में प्रेम ही उस बारिश का आस्वाद देती है।

इस संग्रह की दो कविताएँ 'अमोला' और 'सौदा' का उल्लेख महत्त्वपूर्ण है। विस्थापन की पीड़ा को इतने कम शब्दों में विन्यस्त किसी बड़े कवि का ही काम हो सकता है –

'देखा है
तुम्हे हर बार
आँख भर कर।'[57]

'सौदा' नामक कविता में बाजार के प्रभाव में खोए हुए व्यक्तित्व की पहचान को इंगित किया है –

'अंदर अंदर भय से काँपता हूँ
हवा से पत्तियों जैसे
लहरें
अब आत्मा का ही सौदा हो चुका है
तो मेरे पास
भुनाने को अब क्या है।'[58]

अन्य कविताओं में 'झरबेरी के काँटे' 'तुम यहाँ नहीं हो' 'लपट' 'आँच में कुंदन' 'तपा है भरा बादल' 'ढलान' 'थिर कुछ भी नहीं' में श्रम सौन्दर्य, जनपक्षधरता मानवाधिकार, प्रतिरोध, और स्थानिक दृश्यों का परिचय मिलता है।

3.2.1.16. भीगे डैनों वाला गरूण

49 कविताओं के इस संग्रह का प्रकाशन 2010 में हुआ। इसमें कवि ने अपनी परंपरा, लोक कवि कर्म, श्रम और साम्राज्यवादी ताकतों के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद की है। कवि ने सर्वहारा वर्ग के प्रति अपनी संवेदना को शब्द दिए हैं। कविता संग्रह में प्यार, कविता, कठफोड़वा, कलिराज, मरगोजा, मृत्यु, मजबूत जडें, घास, भीगे डैनों वाला गरूण, पहला शिल्पी, से लेकर बिरसा मुण्डा तक कविताएँ हैं, जिनमें कवि लोक, पर्यावरण, श्रम सौन्दर्य का वर्णन करने के साथ साथ आधुनिक युग में विज्ञान के बढ़ते प्रभाव से विस्थापन की समस्या से जूझते आदिवासियों की पीड़ा और मानव विकास में बढ़ते विज्ञान के प्रभाव से धरती को

रिक्त होता देखता है। कवि अदम्य जीजिविषा के साथ सीना ताने खड़ा है, वह अकाल और सुकाल दोनों में ही अपने अदम्य कर्मठ बाहुबल पर विश्वास करता है। वह हार नहीं मानता। नियति को झुठला कर साम्राज्यवादी ताकतों को चुनौती देने का साहस रखता है। ईश्वर को पुकारता है कि कहाँ हो तुम, 'बे आवाज चीखों' से आहत कवि संग्रह के अंत में बिरसा मुंडा के माध्यम से संगठित होने के लिए सर्वहारा का आह्वान करता है।

'बिना मुठ्ठी बाँधे ताकत नहीं आती उँगलियों में
बिरसा के अतुल बल का ही नाम है
आज की उदित जनशक्ति।'[59]

3.2.1.17. जनशक्ति

विजेन्द्र की लम्बी कविताओं का संग्रह जनशक्ति का संपादन प्रख्यात मार्क्सवादी आलोचक एवं समीक्षक कमला प्रसाद ने किया। यह 2011 ई. में प्रकाशित हुआ। इस कृति में विजेन्द्र की पाँच लम्बी कविताएँ 'जनशक्ति' (1974), 'लकड़हारा' (1998), 'काक नदी के उजाड़ तट पर' (2008), तथा 'खंडहरों के शोकगीत' (2009), संकलित है। जनशक्ति कविता का केन्द्र भरतपुर जिले का बयाना कस्बा है। कवि ने यहाँ के संघर्षशील लोक एवं क्रियाशील प्रकृति की गहरी पड़ताल की है। इन्होंनें भरतपुर, सवाई माधोपुर, कोटा, बूँदी, बयाना व मालवा की धरती के जाट, गुर्जर, मीणा समाज के हुनरमंद श्रमिकों के जीवन संघर्ष को बयाँ किया है। कवि श्रमिक और मजदूरों से संगठित होने की अपेक्षा करता है, कवि कहता है –

'मैंने यह आवाज सुनी
जो अन्दर से कहती है
तू ही हँसिया क्यों न ले
और काट, उसी से,
यह आवाज उपजती है।'[60]

यहाँ काटना सर्वहारा वर्ग के संघर्ष को समाधान की ओर लाने की नई चेतना का प्रतीक है। कवि का मानना है कि श्रमिक का संगठित बल अपराजेय है अतः वह इनके संगठित हो जाने की चेतना के लिए आह्वान करता है। विजेन्द्र की दूसरी कविता 'लकड़हारा' उदयपुर क्षेत्र

के आदिवासियों में एक मिथक के आधार निर्मित की गई कविता है। लकड़हारा आदिम समय से वाल्मीकि के शाप से शापित है। बागोर की हवेली के बेगनबोलिया को जड़ से काटते ही जल की धारा फूटती है और सूखे से त्रस्त ग्रामीण जन खुशी और उमंग से भर जाते है तदनंतर लकड़हारा का गुण चहुँ ओर गाया जाता है।

'मुझे ही मिलेगा यश
मैं कहाऊँगा उद्धारक
मुक्तिदाता, युगनायक....।'[61]

कुछ समय बाद लकड़हारे की महत्त्वाकांक्षा बढ़ती है और अपने को उद्धारक मानते हुए वह और अनेक पेड़ काटता है, परंतु फलदार पेड काटते ही खून की धार निकलती है। ऐसे में जो लोग लकड़हारे का यश गाते नहीं थकते, वे उसके दुश्मन हो जाते है।

तीसरी कविता 'काक नदी के उजाड़ तट पर' राजस्थान के जैसलमेर को केन्द्र में रखकर लिखी गई कविता है। परंपरा के नए स्थापत्य से युक्त इस कविता में लोक जीवन और जगत् के अनुभवों की साझा संस्कृति है।

चौथी कविता 'मैग्मा' नए विषय का पुनर्सृजन है। दरअसल मैग्मा भूगर्भ में घटित रासायनिक क्रियाओं के फलस्वरूप चट्टानों के पिघलने से रिसा हुआ गाढ़ा द्रव पदार्थ है। ठीक उसी तरह प्रत्यक्ष तथा परोक्ष जगत् के व्यापक संज्ञान से निर्मित इस बड़े कवि की चेतना। कविता के आंरभ में –

'मैग्मा से ही बना है
मेरी आत्मा का स्थापत्य.....।'[62]

लुप्त हुई नदियों के उद्‌गम, सूखे झरनों के चट्टानी स्रोत, क्षय होते मनुष्यों की पीडाएँ, पंखधारी टीलों में छिपी रेगिस्तानी लोगों के जीवन की कठोरताएँ, लड़ते आदमी का समर, तथा कवि का अपना परिवेश, उसके मन के अँधेरे कोनों को रोशनी देते हैं। यही उसकी कविता का जातीय वेश है। यहाँ यह महत्वपूर्ण है कि कवि ने नए सौन्दर्यबोध रचने के लिए अनेक तटबंध त्यागे हैं। धरती की सतह पर चलते हुए कवि ने खदानों की उभरी पसलियों

को भी देखा है। कवि को पता है कि अन्दर की आग अभी बुझी नहीं है। मैग्मा का ताप बढ़ रहा है तभी तो धरातल फोड़ कर निकलता है, सुर्ख कल्ला बीज का।

'मैग्मा' कविता की विषय वस्तु मैग्मा, कवि विजेन्द्र की सूक्ष्म वैज्ञानिक विश्वदृष्टि का अपूर्व शोध है, और जनवादी कविता का उत्स भी है। यहाँ सिर्फ विचार ही नहीं, बल्कि विजेन्द्र के अद्भुत काव्य कौशल द्वारा कविता के नए सौन्दर्यबोध तथा आधुनिक प्रतिमानों की अपूर्व सृष्टि हुई है।

3.2.1.18. बुझे स्तंभों की छाया

यह काव्य संग्रह विजेन्द्र की पुरानी कविताओं से लेकर नयी कविताओं के प्रकाशन से संबंधित है। 2012 में प्रकाशित इस कविता संग्रह में इन्होने 1968 से लेकर 2010 तक की कविताओं को शामिल किया है। डॉ. रमाकांत ने इस संग्रह को संपादित किया है। बेहद विचारोत्तेजक एवं आत्मीय कविताओं में दो पक्षों पर गंभीरता से चिंतन किया गया है। वे है राजनीतिक समीक्षण एवं लोक के प्रति अनन्य आस्था। विजेन्द्र देखते हैं कि अलगाव, बेगानापन, स्वार्थपूर्ण मनोलिप्सा का आदर्शीकरण, गोल मटोल शब्दावलियों में प्रस्तुत तमाम अस्मितावादी विचार सरणिया साहित्य जगत् में प्रभावी हैं। पूँजीवादी माहौल को आगे बढ़ाने के चलते भारतीय जन बदलहाल बेरोजगार और गरीबी के त्रास में जकड़ा हुआ है, पर इनके लिए साहित्य जगत् मौन हो गया है। यदि कहीं कोई आवाज सुनाई देती है तो वह असंगत और अनेक अंतर्विरोध लिए हुए है। यहाँ तक कि लोक के नामलेवा कवियों की जमात गतिशील जीवन में लोक को पकड़ पाने में अक्षम साबित हो रही है। कवि के संग्रह की पहली कविता 'मेरे बोलने से उन्हें ठेस पहुँचती है' में सत्ता की बिरूदावली गाने वाले साहित्यकारों का प्रतीक 'दिल्ली' का जिक्र करते हुए विजेन्द्र कहते है–

'मेरे बोलने से उन्हें ठेस पहुँचती है
ये खबर दिल्ली से मेरे पास
हाँफती हुई पहुँची है, जनता के हक माँगने पर
जब कानून टूटते हैं उनके ब्यौरे
सुर्खियों में छपते हैं
ऐसा कवि भी क्या जो अपनी कहन

छिपाने के लिए बडे बडे फूलों वाली जाजम भी बने।'[63]

विजेन्द्र का कवि मन ग्रामीण मजदूर और सर्वहारा के मन को महसूस करता है। 'करिया अहरवार' 'लच्छमी' 'बूचड़खाने में कविता का स्वाद' का अब्दुल आदि पात्र अनायास ही ग्रामीण और श्रमिक का मन खोलकर हमारे सामने रख देते हैं। जिजीविषा का संकट उनके अंतस् की संवेदना में कैसे मुखरित होता है, ये देखते ही बनता है। विजेन्द्र इन श्रमिकों की केवल रिपोर्ट देने वाले कवि नहीं है, बल्कि उनके क्रियाशीलता के पक्ष को तवज्जो देकर उन्हें समाज निर्माण का कारीगर कहते है। 'भादों बरसा' नामक कविता में कवि भादों की बारिश से किसान, खेत, मजदूर रिक्शावाला सबकी खुशी दिखाई देती है, कालिदास से वे पूछते है।

'कालीदास ने किस धरती को
देखा था, कौन से वन – फूल
भू दृश्य, नदियाँ, ऋतुयें और किसान – कन्याएँ
मैं वे चीज यहाँ कहाँ खोजूँ
प्यासे और भूखे आदमियों का समूह
मरकर भी जिंदा है ......।'[64]

'बसंत अब जाने को है' कविता में वास्तविक लोकतंत्र के अभाव और वाक्जाल एवं महत्त्वहीन नीतियों पर कवि तर्क करते हुए कहता है –

'तुम्हारे नीत वचन भूसा है
जिन्हें हवा उड़ा ले जाएगी चाहे जहाँ
वे काले कारनामों की सुरंगें, तहखाने, कोठार
लाभ कमाने को ताले ठुके भण्डार
कठघरों में बँधे हाथ, पाँव आँखे
जनता तुम्हारा चमकदार मुखौटा है
जिसके पीछे छिपा है भूखे
भेड़ियों का खौफनाक चेहरा।'[65]

अन्य कविताओं में 'वो आदमी जिन्दा है' 'मैं अपने काम पर हूँ' 'लोकतंत्र की जड़ें गहरी हो रही हैं' 'जागा हुआ गाँव' ऐसी कविताएँ हैं, जो निराला, त्रिलोचन, मुक्तिबोध और धूमिल की परंपरा में मोहभंग के साथ – साथ लोक के प्रति संवेदनशीलता को अभिव्यक्ति देती है।

3.2.1.19. कठफूला बाँस

अपने प्रिय कामेश्वर त्रिपाठी को समर्पित इस कविता संग्रह का प्रकाशन 2013 ई. में हुआ। इसमें कवि की चार लम्बी कविताएँ संकलित हैं। कविताओं के चयन का कार्य डॉ. रमाकांत शर्मा ने किया है। कविताओं में विजेन्द्र ने उस समय की चेतना को जगह दी, जिसके तहत वे उन दिनों अपनी वाम राजनीतिक विचारधारा को आत्मसात कर दलित, पिछड़े, उपेक्षित किसानों के लिए सभा करते थे। कविता में उनसे सम्बद्ध अनेक क्षेत्रीय और निजी बातों को भी कवि ने रचा लिखा है। पहली लम्बी कविता 'कठफूला बाँस' में भरतपुर के पास के एक गाँव 'मलाह' का जीवन चरित्र कवि ने अपनी कलम से लिखा है। मलाह गॉव के लोगों के माध्यम से वे अपने चिंतन को भी पाठक के समक्ष रखते है। मलाह गॉव की 'रामकथा' भारत के उन सभी गरीब किसान और श्रमिकों की रामकथा है, जो कभी खत्म होने का ही नाम नहीं लेती। कितनी ही सरकारें आयी और गयीं, पर आज भी उनकी स्थिति जस की तस है। कोई बदलाव नहीं। इस गाँव के केवट आज भी किसी राम की प्रतीक्षा करते हैं।

'इन्हें भी प्रतीक्षा है
किसी राम की
ओ कवि ! देखो इन्हें
हिये की आँखों से।'[66]

यहाँ के लोगों में बड़ी बैचेनी है, जिन्हें कवि ने भी अपने अन्दर पचाया और लिखा।

'लीला हर साल दिखाई जाती है
रावण को जलाने की
फिर भी वो होता है ताकतवर।'[67]

कवि गाँव के लोकदेवता हीरामन को गाँव के लोगों में जीवन्त देखता है, और लोगों को उस हीरामन की तरह आह्वान करता है, जिसने समय आने पर गाँव के लोगों की रक्षा के लिए समर किया था।

'जागो हीरामन, जागो
बे– वक्त सोयों को भी जगाओ
यह समय सोने का नहीं
रद्दोबदल.... बुनियादी उलट पुलट का है।'[68]

कवि मेहनतकश जन के साथ है। वह उनके हक को बुनियादी सवाल बनकर उभारता है

'ओ कवि तुम समझो
जिन्होनें किया है अपना खून – पसीना एक
संगमरमर तराशने में
क्या उनका नाम नहीं खुदेगा उन पर।'[69]

पर्यावरणीय विद्रूपताओं की ओर भी कवि ने ध्यान आकर्षित किया है। ब्रज क्षेत्र जो कभी यमुना, गोवर्धन, कृष्ण और रास के नाम से विख्यात रहा है, उस धाम की आज क्या गतिकी हो रही है इस पर भी विजेन्द्र ने चिन्ता प्रकट की है।

'कहाँ हैं काम वन
कहाँ कालिय दह
यमुना को बना दिया गंदनाला
गोवरधन पर्वत धचक रहा मंद मंद
न अब रास हैं न कृष्ण
न लीलायें गोपियों की
हर रोज होते हैं चीर हरण
आँखे खोलो
जागना बड़ी किया है।'[70]

कवि उन साहित्यकारों को उस लोक के दर्शन कराना चाहता है, जो उत्सवी नहीं संघर्षी है। वह उन पुरस्कारों मान, और विभूषण के लिए नहीं लिखता, जिनसे राजभवन की प्रसन्नता जुड़ी है, वह उस लोक का कवि है जहाँ –

'भाषा क्रिया से भिन्न नहीं
शिल्प विन्यास कथ्य से
लय प्राण है दोनों का।'[71]

संग्रह की दूसरी कविता में कवि स्वयं आत्ममंथन करता है। अपने आप से संवाद करता है। कवि बैचेन है, दुनिया की आपाधापी से, देवताओं से, राजभवन के सम्मानित कवियों से, उनके दिखावे से सृजन की उपेक्षा से। कवि, कवि कर्म की आवश्यकता, महत्ता, पद्धति और विषयों के संबंध में अपने तीखे तेवरों से उस आक्रोश को आवाज देता है जिससे कोई बदलाव आये। लोग कविता के महत्त्व को समझे, जाने और विचारें। कवि कौन हो सकता है इस प्रश्न के जवाब में वे कहते है –

'जो पहचानते हैं धमनियों में बहते रक्त प्रवाह को
जिन पर आँख हो खनिजों को गलाने की
मिश्र धातुओं को बनाने की।'[72]

कवि को पीड़ा है आज ऐसी कविताओं को सम्मान मिल रहा है जिनका कथ्य और क्रिया असमान है। जो केवल मिथ्या दिखावा है।

'पैदा हो रहे कवि शिल्पी कथाकार
किसानों और दलितों में
भिन्न हैं उनके रचक
भिन्न हैं भाषा, रूपक और वितान कविता का।'[73]

कवि पाव रोटी बनाने वाले, मोची, और बुनकरों के चित्रों के द्वारा कवियों को यह बताना चाहता है, कि सौन्दर्य का विधान इनसे निर्मित होता है। इनसे इतर अन्य सौन्दर्य केवल मिथ्या शब्द जाल है, भ्रम है, वह कविता नहीं है। कविता –

'मेरी सेहत
जनता के इतिहास का पका ज्ञान है
मेरा भरोसा
उसका चिंतन है
मेरी रचना का सँजोया बीज।'[74]

संग्रह में तीसरी कविता 'ओ एशिया' शीर्षक से है। कवि ने माना है कि सोवियत संघ के विघटन के बाद दुनिया में एक ध्रुवीय ताकत का बोलबाला और वर्चस्व बढ़ गया है। दुनिया में अमरीका एक बड़ी विघटनकारी ताकत बन गया है। इससे पहले कुछ अमंगल हो एशिया को चाहिए कि वह समय रहते वर्तमान विश्व को एक ध्रुवीयता से बचाने के लिए एशिया को दूसरी महाशक्ति के रूप में स्थापित करे। कवि एशिया को संगठित कर साम्राज्यवादी ताकतों को रोकना चाहता है। कवि एशिया को जागने के लिए कहता है –

'ओ एशिया के विशाल महाद्वीप तुम जागो
दुनिया देखती है तुम्हारी तरफ, जागो।'
कवि एशिया को अपने जनपद से संबंधित कर देखता है –
'ओ एशिया महाद्वीप महान
तुझे अपने जनपद की धरती से देखता हूँ।'[75]

कवि जनपद की भाषा और भाव को कहना, बोलना और लिखना चाहता है उससे इतर उसे कुछ भी नहीं जँचता। वह अपने को नहीं बदलना चाहता।

'मैं क्यों बदलूँ अपना पथ
उन नदियों की तरह
जो आगे जाकर होती हैं लुप्त
क्यों खोऊँ अपना अजस्र उद्गम
खुरों से खुँदी धरती
यह धूल
ये दूब के नरम नरम पोये।'[76]

कवि की अधिरचना का स्रोत जनता है। उसके सुखी होने पर ही वह सुखी हो सकता है अन्यथा नहीं।

'अधिरचना में खोजता हूँ
रजकण, रेशे, पुंसकेसर में झाँकता भविष्य
सुन्दर विश्व का स्वप्न
बिना जनता के बल संभव कहाँ।'[77]
कवि सत्य का हिमायती है। वह सत्य का संधानकर्ता है।
'क्यों डरते हो सत्य बोलने से, बोलो
पथरीला सन्नाटा टूटता है

बोलने से, बोलो बेदहल

अपने इलाके के साथ

बोलो, बोलने से बढ़ता है साहस

अपने जनपद के साथ, बोलो एक साथ।'[78]

विजेन्द्र कहते है कौन शांति नहीं चाहता। यदि ऐसा नहीं तो शांति के नोबेल पुरस्कार का क्या औचित्य है? पर कवि ध्यान दिलाता है परमाणु बम बनाये जाने से होने वाले खतरे के लिए। कवि कहना चाहता है जब साम्राज्यवादी शांति की बात करते हैं तब उन्हें बम बनाने की जरूरत क्या है? विश्व में यदि शांति चाहिए तो मानवता की सुरक्षा के लिए एशिया को संगठित होना पडेगा –

'विश्वविनाशक आयुधों के व्यापारी

थोपना चाहता है युद्ध

शान्तिप्रिय देशों पर

पहचानों एशिया की शक्ति का तुमुल घोष

पहचानों साम्राज्य के ऋण में छिपी

संज्ञा मारक कूटनीति ....

बढ़ते जाते हैं अमरीकी सामरिक अड्डे हर जगह।'[79]

उक्त कविता राजनीतिक कविता कही जा सकती है पर इस कविता का कथ्य कवि के उस अंतर्मन से आंदोलित है, जिसमें कवि जनवादी मूल्यों पर अपने जन को आँकता है।

अंतिम और चौथी लम्बी कविता 'कौतूहल' पदार्थ के निर्माण की कविता है। यह वह कच्ची सामग्री है, जो कवि को कवि बनाने के लिए देखनी, सुननी और अनुभव करनी होती है। जीवन की गति कार्यशैली के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है। इस कविता में कवि की सूक्ष्म अवलोकन दृष्टि का महत्त्व प्रतिपादित है। देखने, सुनने वाले क्रियापदों से जुड़ी इस कविता में कवि ने प्रकृति के उन घटकों का अध्ययन किया ह, जिनमें आपस में जुड़ाव है। यह जुड़ाव सहज है –

'घटक जुड़ा है

दूजा घटक

सजग देह से

जड़ों से वृक्ष – तना

फिर शाखें, पत्तियाँ, फूल, फल

बिना कहे ....।'[80]

कवि जुड़ाव चाहता है –

'घटक हैं बहुत सारे द्रव्य के
जुड़ता है एक धातुक घटक दूजे से तीजे से
मनुष्य का चित्त मनुष्य से
रिक्त ही जोड़ता है उन्हें दिक् से
काल से, विमा से, मुझ से।'[81]

कवि की सृष्टि की रचना में जुड़ाव को ही प्रमुख मानता है ।

'जीवन के रूप असंख्य हैं
छोटे – छोटे तिनकों के जुड़ने टूटने से ही
रची गई सृष्टि यह।'[82]

कवि चाहता है कि जो कोई काव्य रचना करे, उसे उस घटक के अंदर तक तहकीकात करनी होगी। बंधनों को तोड़ना होगा। पदार्थ या वस्तु की वैज्ञानिक संरचना को जानना होगा। अपने को उतारना होगा –

'नमक भोजन का स्वाद सार है
कहते हैं कोविद जिसे सोडियम क्लोराइड
कैसे जान सकोगे पथर पूजन से
परमाणुओं के बीच जुड़ा गठबंधन
कैसे कर पाओगे बिना दीठ।'[83]

इसके लिए अन्दर तक यानि कि हृदय तक उतारना होगा। ऊर्जा और उष्मा के साथ कवि कर्म को अपनाना होगा। विजेन्द्र मानते हैं कि आगामी समय में वही कवि स्थापित होगा जिसे लोक का यथार्थ ज्ञान है।

3.2.1.20. बनते मिटते पाँव रेत में

2013 ई. में प्रकाशित इस कविता संग्रह में कवि ने भारतीय संस्कृति के सांस्कृतिक माहौल को प्रदूषित करने वालों के खिलाफ संघर्ष की आवाज बुलंद की है। कवि आम जन के प्रति चिन्तित है। वह अपने देश के लिए कुछ करना चाहता है। यह देश सुंदर बने इसके लिए उसका प्रयास है कि हमारे मन में जो धर्म या मजहब के नाम पर वैमनस्य पैदा कर अपना स्वार्थसिद्ध करना चाहता है उसे निकाल फैंकना होगा। कवि कहता है –

'सजग रहो वह लड़ा रहा है हमको
आपस में दो जीभों वाला फणिधर
वह है भस्मासुर
हँसता है जो ऊपर से
हृदय में दंश छिपाके।'[84]

विजेन्द्र सुंदरता का नाश करने वाले क्रूर तत्त्वों के प्रति कड़ा रुख रखते है। उनका मानना है कि कविता परिवर्तन का कारक है। मेरे शब्द एक दिन जन में बदलाव लायेगें। वे कविता के कथ्य बदलने की प्रेरणा देते हैं। जब चारों तरफ अँधेरा हो तो भरोसा टूटता है–

'जब कोई उजासित पथ नहीं दिखता
तो भरोसा काँपता है
इरादे मुरझाते हैं।'[85]

कवि ने 'मैं चातक हूँ' कविता में स्त्री विमर्श को स्थान दिया है। स्त्री को समाज कैसे देखता है।

'सब नौंच नौंच कर ले जाने को
माँस देह का
हिंसक पशु है स्त्री को तो
चाहें कहें कितना ही कि
हम सभ्य हो गये.....।'[86]

आज भी स्त्री के प्रति लोगों के नजरिये का आलम यह है कि बुद्धिजीवी लोग भ्रूण हत्या जैसे कुकृत्य को करने में नहीं हिचकिचाते। यह मानसिकता हेय है। आज भी पुरूष का स्त्री के प्रति नजरिया पूरी तरह सही नहीं है।

'उठने को करते हैं बहुतेरा ऊपर
अपने से........
धरती से
पर कहाँ उठ पाते हैं सच में ....।'[87]

इस प्रकार इस कविता संग्रह में विजेन्द्र ने अपने आस – पास के सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश को आत्मसात् कर कविता में रखा।

3.2.1.21. मैंने देखा है पृथ्वी को रोते

2014 में प्रकाशित इस कविता संग्रह लंबी कविताओं से संकलित है। इसमें कवि ने 2012 से 2013 के समयान्तराल में लिखी गई कविताओं को शामिल किया है। 'आधी सदी' नामक कविता कवि के जीवन संघर्ष और चुनौतियों को लिखा गया है। 'मैंने देखा है पृथ्वी को रोते' नामक लंबी कविता में पृथ्वी कवि के सामने अपनी विवशता को रोती हुई कहती है। पर्यावरणीय चेतना और मनुष्यता को केन्द्र में रखकर इस कविता को लिखा गया है। कवि कहता है कि मनुष्य को जाने बिना मनुष्यता कैसे जानी जा सकती है?

'कैसे जान पाओगे विज्ञान भूतल का
जाने बिना पृथ्वी की परतों को
उसके बारीक कणों को
उसकी छिपी नसों को।'[88]

'पूस का पहला पहर' नामक लंबी कविता में कवि ने जन को संगठित होकर पूँजी के मकड़जाल को तोड़ने की प्रेरणा दी है। कवि का मानना है कि जब तक कुछ लोगों के पास अधिक संसाधनों का होना रहता है, तब – तब विषमता को बल मिलता है। इसे तोड़ना होगा।

कवि भविष्य की चिन्ता करता है –
'कैसें उबरें गहन अवसाद विषाद से
तोड़ना होगा पूँजी के मकड़जाल को
बाहर आना होगा
अँधेरे गर्त्त से।'[89]

3.2.1.22. बेघर का बना देश

लोक को अपनी अन्तर्दृष्टि से देखने वाले कवि विजेन्द्र का यह काव्य संकलन बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध और इक्कीसवीं सदी के आरंभ में कविता की बदली अंतर्वस्तु के दौर में लोक को प्रतिष्ठित कर देने के लिए लिखी गई कविताओं का संग्रह है। इसका प्रकाशन 2014 ई. में हुआ। भूमंडलीकरण के दौर में पूँजीवादी सभ्यता का जादू जब आम आदमी के सिर चढ़कर बोल रहा हो, उसकी सोच और समझने की क्षमता क्षीण हो गई हो, बाजार के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर वह इतराता हो, तब ऐसे में कवि ने उस दायित्व को निभाने का प्रयास किया है वह उस कविता के यथार्थ को पाठकों के समक्ष लाना चाहता है जिसमें कविता आज के जटिल समय में अपने स्थापत्य को लेकर डगमगा गई हो। यह कविता संग्रह उस परिपाटी और परंपरा का सेतु है, जिसमें कविता को समकालीन कहा गया हो। लोक के उत्सवी आयोजन से अलग संघर्षी माहौल में कविता किस प्रकार अपना दायित्व निभा देने पर ही कविता कही जा सकती है।

कवि ने इस कविता संग्रह में लोक को प्रमुखता से स्थापित करने की चेष्टा की है। इसका कारण यह है कि प्रगतिशील लोकतांत्रिक भारत में आज भी श्रम को हेय दृष्टि से देखा जाता है। कवि यह मानता है कि संविधान की दृष्टि से हम सब समान हैं परंतु फिर भी सामाजिक दृष्टि से यह देखने में आता है कि मानव समाज की मनोवृत्तियों में कोई बड़ा बदलाव नहीं आया है। 'अँधेरे की दस्तक' कविता में कवि ने श्रम को प्रतिष्ठा दिलाने की बात कही है, वहीं 'विरल क्षणों का गान' में पसीने की हर बूँद का हिसाब माँगता है। 'तलछट' कविता में निर्दोष किसानों को डंडे खाते हुए, लहुलुहान देखता है। कवि जानता है कि कुत्सित दमन के भयानक परिणाम होते हैं। 'सामंत अभी जीवित है' कविता में कवि कहता है, कि श्रमनिष्ठ व्यक्ति जब शोषित होता है, तब एक दिन उसका आवेश प्रतिशोध लेने के लिए किसी भी हद तक जा सकता है।

कवि को समाजवाद की कल्पना और उसके आने की आशा अब धुँधली दिखाई देने लगी है। समय की गति के साथ पूँजीवादी व्यवस्था यांत्रिक सभ्यता के साथ उपस्थित है। इस सभ्यता के चलते कामगारों, श्रमिकों, किसानों, दलितों और आदिवासियों को दुर्दिन झेलने पड़ रहे हैं। यहाँ कवि मशीनीकरण के खिलाफ नहीं बल्कि उसका हक मिल मालिकों और पूँजीपतियों के खाते में शोषित स्वरूप में जाने से है। ऐसे में 'बेघर' होने का खतरा बढ़ गया है।

'अनार का पेड आँगन में', 'भू तत्त्वीय आसमान', 'दैत्य को पछाड़ो', आदि कविताओं में कविवर विजेन्द्र ने नवउपनिवेशवादियों के दुश्चक्र को उजागर किया है। 'खुलेंगे कपाट' 'सुबह' 'धातुक खनक' आदि कविताओं में विजेन्द्र का अदम्य साहस, उनकी जीजिविषा, और सतत् संघर्ष के स्वर दिखाई देते हैं।

कवि लोक से जुड़े रहना पसंद करता है 'कविताएँ जो मुझे प्रिय हैं' में कवि सदैव लोक के साथ अपना तादात्म्य स्थापित कर गतिशील रहना चाहता है।

कवि ने 'मुझे जगाने दो सरस्वती को' में ध्वनि राग की बात की है। यह राग अपनी धरती, देश को बचाये रखने की राग है। मान, सम्मान और यश से परे इस राग में ईमानदारी की बात प्रमुख है—

'ओ कविता की देवी
तुम सोई हो कहीं
निविड़ अँधेरी छाँह में
या कहीं धरती की कोख में
तुम जागो
कवि छंद खो चुका है
भूखा है झूठे यश को
मुट्ठी भर सिक्कों में
बेचता ईमान को।'[90]

इस प्रकार इस काव्य संग्रह में उन विद्रूपताओं को खत्म कर देने की आक्रोशमयी इच्छा कवि के मन में है जिसने लोकतंत्र के लोक के साथ छलावा किया है। कवि उस जन की आवाज बनकर कविता में चुनौती देता है, कि जो कोई भी जन की उपेक्षा करेगा वह लोकधर्म की उपेक्षा करेगा। कविता के भीतर लोकतंत्र तभी आ सकता है जब जन की भावनाओं की रक्षा हो सकेगी।

3.2.1.23. ढल रहा है दिन

2015 में प्रकाशित यह संग्रह लंबी कविताओं की परंपरा का संकलन है। कवि अपनी जन्म भूमि धरमपुर की यात्रा करके आते हैं और अपने बचपन की स्मृतियों को और अपने जीवन के सांध्य बेला को भी ढलना शब्द के साथ लोकसमन्वित रीति से प्रस्तुत किया है। नौ लंबी कविताओं के इस संकलन की अंतर्वस्तु धरमपुर से भरतपुर, जनपद से विश्व, एवं अतीत से वर्तमान तक आती है। पहली कविता 'ढल रहा है दिन' में ढलना अनेक भाव व्यंजनाओं को पाठक के समक्ष रखता है। साँझ हो रही है, रात होने वाली है, कल नया सवेरा होगा। आत्मनिष्ठ शैली में रचित इस कविता में कोई चरित्र नहीं है बल्कि कवि स्वयं द्रष्टा के रूप में अनुभव करता है और बोलता है।

'बोलो
बोलो अन्याय के विरूद्ध, बोलो तुम
शत्रु को ललकारते हुए बोलो
दमन के खिलाफ भी बोलो
संगठित आदमी की भाषा के
होते असंख्य भुज
असंख्य हुँकारे।'[91]

संकलन की दूसरी कविता 'मिट्ठन' है। इसमें भरतपुर के जनजीवन की सामाजिक झलक के साथ भरतपुर के घना की छवि की प्राकृतिक मिठास भी घुली है। कला को समर्पित मिट्ठन मंदिर में नगाड़ा बजाता है। वह अपनी कला के प्रति पूर्ण समर्पित है, परंतु अन्य जन उसे उपेक्षित भाव से देखते हैं। कवि ने धर्म सत्ता की असलियत को मंसा देवी के पुजारी के मार्फत दिखाया है। लेकिन मिट्ठन के नगाड़े को पाखंड को खंड – खंड कर देने वाला बताया है –

'जब लगता है धौसा मिट्ठन का
नहर का काला जल हिलता है
पके पत्ते गिरते हैं
हवा से टूटकर
नगाड़े की उत्पन्न थरथराहट से
जागता है मन के भीतर का

सोया मन।'[92]

तीसरी कविता 'पत्ते गिर रहे हैं' में कवि ने पतझर को बसंत का अग्रदूत कहा है। पुराने पत्तों का झड़ना और नयी कोपल का आना प्रकृति का परिवर्तन चक्र है। सामाजिक जीवन में भी ऐसा परिवर्तन लक्षित होता है। आज जो कुछ भी घटित हो रहा है, वह कल नये परिवर्तन के साथ दिखाई देता है। कवि कहता है कि सार्थक परिवर्तन के लिए बदलना अनिवार्य होता है।

चौथी कविता 'रतलाम की सुबह' है। कवि इस शहर को रत्नललाम कहता है। इस कविता में निर्मल शर्मा के निमंत्रण पर रतलाम पहुँचकर साहित्य समारोह में भाग लेने गए कवियों के मध्य साहित्यिक संवाद को संस्मरणात्मक वैशिष्ट्य प्रदान किया है। कवि ने यहाँ अपने काव्य गुरू त्रिलोचन के चारित्रिक वैशिष्ट्य को भी उकेरा है।

'तप है साधना शब्द को
संयमित जीवन में
कवि को देनी होती है
अग्नि परीक्षा हर क्षण
व्यवहार की भी।'[93]

कवि कहता है कि जिसका चरित्र उत्तम होगा वही उत्कृष्ट साहित्य की सर्जना कर सकता है।

पाँचवी कविता सुराज में बाबू खाँ नामक चरित्र की सृष्टि कर राजनीति में अपराधियों को जनप्रतिनिधि के रूप में चुने जाने पर आपत्ति दर्ज करायी है और उसे सच्चे लोकतंत्र के लिए घातक बताया है।

कवि ने 'टापें सुनी' नामक अपनी छठी कविता में सामंती सत्ता के विगत स्वरूप का चित्रण किया है। कवि मानता है कि सामंती सत्ता ने सदैव अपने अस्तित्व के लिए निरीह जन गण को हमेशा दबाया, सताया और कुचला है। आज जनतंत्र में भी इस सत्ता का चरित्र नहीं बदला है। आज वह धनबल और बाहुबल से अपने अस्तित्व की रक्षा करती है। कवि ने विभिन्न विसंगतियों के माध्यम से शोषण और किसानों की दुर्दशा को शब्द दिए है। श्रमशक्ति

का कवि उपासक है और किसानों के इस अदम्य श्रम को वह संगठित कर प्रतिरोध का आह्वान करना चाहता है –

'बदलो, बदलो, बदलो
अपने हाथों के रूझान
उँगलियों के संकेत
सड़ा ठठ्ठर बदल डालो।'[94]

सातवीं कविता 'जुम्मन मियाँ' नामक शीर्षक की इस संकलन की सबसे लंबी कविता है। 1976 के दौर में लिखी इस कविता में कवि ने सांप्रदायिक वैमनस्य की भीषण और त्रासद समस्या को उजागर किया है। कवि ने साम्प्रदायिकता बनाम स्थानीयता को राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है। आजादी के बाद आज तक न जाने कितने दंगे हुए हैं और इन सबने हमें तोड़ने के अलावा और कोई काम नहीं किया। साम्राज्यवादी शक्तियाँ चाहती हैं कि भारत में हिन्दू और मुसलमान एक नहीं हो पाए। कवि कहना चाहता है कि लोकतंत्र की रक्षा के लिए धर्म निरपेक्षता आवश्यक है। कवि मुसलमानों के योगदान की चर्चा में उन कलावंतों को शामिल करते है, जिनकी कला पर सब मुग्ध है। रहीम, मीर, गालिब, जायसी, कैफी आजमी, उस्ताद अल्लाहरक्खा, तबला वादक जाकिर हुसैन आदि।

कवि ने अपनी आठवीं कविता 'पॉल राब्सन' शीर्षक के नाम से लिखी है। यह कविता अमरीकी अश्वेत महान गायक पॉल राब्सन को संबोधित है। अमरीका में गोरे काले का भेद है और राब्सन ने इस विषम भेद से लड़ाई की। कवि अपने को राब्सन से एकात्म कर लेता है और कविता में अश्वेत और दलित जनों से अपने को जोड़कर कहता है –

'मै भी तो अश्वेत हूँ
दोआब की मिट्‌टी से बना
काली नस्ल का धरती पुत्र
ओ महागायक
तुम एक बार फिर आओ
इक्कीसवीं सदी की इस बदलती दुनिया में।'[95]

संकलन की अंतिम कविता 'मेरा घर' है। कविता भरतपुर के सामाजिक जीवन और परिवेश को जोड़ती है। कविता में कवि का निजी व्यक्तित्व भी गुंफित है। सिविल लाइन्स के लोगों की कवि से शिकायत है, कि वह हम सभ्य अफसरों से अव्यावहारिक रहता है, जबकि श्रमिक और दलित लोगों से आत्मीय।

'यह सिविल लाइन्स है
रहते हैं जहाँ सफेदपोश मनघुन्ने
नफरत है जिन्हें गाँववालों से
दुत्कारते हैं श्रमियों को
जो उगाते हैं अम्बार उपयोगी उत्पाद का।'[96]

कविता में श्रम के महत्त्व को रेखांकित कर कवि मजदूरों और श्रमिकों के प्रति अपने आप को भावुकता के साथ समर्पित करता है। वह कभी – कभी निराश होता दिखता है, पर दृढ़ता के साथ आशान्वित भी है उसकी अभिलाषा है।

'ओ सुबह, तू जल्दी आ
रोशनी में दिखें खिले चेहरे और भी
जीवन की संक्रियाएँ प्रसन्न मुख
नई पत्तियों पर पड़ती दिखें किरणें सूर्य की।'[97]

3.2.2. काव्य नाटक

3.2.2.1. अग्नि पुरूष (2006)

वर्तमान परिदृश्य में पूँजीवाद का शिकंजा पूरी दुनिया में है। मेहनतकश और मानवीय संवेदनाओं को पूँजी के आधार पर खरीदने की हर कोशिश की जा रही है, ऐसे में यह पड़ताल करना जरूरी है कि ऐसे क्या कारण हैं जिनसे ये पहली तरीके की प्रवृत्ति बढ़ी और दूसरी तरह की प्रवृति का ह्रास हुआ। अग्निपुरूष विजेन्द्र का लिखा वह काव्यनाटक है, जिसमें रूपक और मिथक का सहारा लेकर जनवादी पुकार को महसूस किया गया है। महाभारत का खांडव वन अग्निपुरूष की कर्मस्थली है। अग्नि मेहनतकश लोगों का प्रतीक है। मेहनत ही धर्म और कर्म है। भूखा अग्नि कृष्ण के पास जाकर अन्न की माँग करता है। साथ ही नागराज तक्षक के अत्याचार से खांडव वन की स्थिति को भी स्पष्ट करता है, परंतु कृष्ण और अर्जुन आयुधों के

अभाव की बात करते हैं। अग्नि, वरूण से आयुध लेकर इंद्र जैसे देवताओं को देते हैं परंतु इंद्र की पराजय होती है। इतने संक्षिप्त कथानक में लेखक ने शोषण की उस अनवरत कथा, मेहनतकश के हक के मारे जाने के कारण और बहाने, सत्तापक्ष की प्रताड़ना आदि का मार्मिक वर्णन है। अग्नि का कथन –

'चाहिए मुझे स्थाई समाधान अन्न और भूख का
नहीं चाहिए मुट्ठी भर धान मुझे
उसे तो अर्जित करूँगा अपने हाथों से।'[98]

यह प्रश्न केवल अग्नि का नहीं हर उस मेहनतकश का है जो पूँजीवाद के प्रतीक इंद्र और नागराज तक्षक का प्रताड़ित है। इनकी क्रूरता का शिकार है। पेट भर अन्न के लिए उन्हें जूझना पडता है –

'यही नहीं है प्रश्न अकेले का
जीते जी मरते हैं सहोदर भूखे असंख्य।'[99]

लेखक ने अभिजात वर्ग और सर्वहारा के मध्य द्वंद्व की अनुभूति का मिथकीय अभिव्यक्ति दी है।

3.2.2.2. क्रौंच वध (2006)

काव्य नाटक 'क्रौंचवध' कवि वाल्मीकि को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। नाटक के आरंभ में वाल्मीकि कवि को बेचैन दिखाया गया है। यह बेचैनी किताबी ज्ञान के बोझ से दबे उस वाल्मीकि की है, जो श्रम की महत्ता को स्थापित करना चाहते हैं। वह उन सभी शास्त्रों को व्यर्थ बताते है जो जीवन की ऊष्मा से रिक्त हैं। वाल्मीकि उस अनकहे को कहना चाहता है जो आज तक नहीं कहा गया है।

'कहना है बहुत –
जो अनकहा अभी
यह द्वन्द्व है सतत

बेधती है विवक्षा मुझे रह – रह
पल – पल अथिर है चित्त
खाता है त्रास मुझे।'[100]

नारद सुख वैभव को भोगने वाले समाज के प्रतिनिधि है। परंतु जब वे प्रकट रूप में कहते हैं कि वे पृथ्वी पर फैली असमानता और दुखों के कारण दुखी हैं, तो वाल्मीकि को यह बात झूठी और ओढ़ी हुई बनावटी लगती है। नारद के हर उस कथन को वाल्मीकि खंडित करते है जो भाग्याधारित है। वे भौतिकतावादी है। उनके लिए मोक्ष कल्पना से अधिक और कुछ भी नहीं है –

'मोक्ष तो कल्पना है
वह कोई विकल्प नहीं
मेरे लिए जीवन का।'[101]

वाल्मीकि के साथ साथ भरद्वाज भी इस बात से चिंतित है, कि शास्त्र में आम आदमी पर क्यों नहीं लिखा जा रहा? आम जन के प्रश्नों को क्यों नही उठाया जाता? जिससे आम आदमी दिन रात जूझता है। भरद्वाज की चिंता यह भी है कि सत्य, शिव और सुंदर यदि समाज के लिए उपयोगी नहीं तो वह एक प्रपंच है, वाग्जाल है।

इस प्रकार इस नाटक में मिथकीय सहारे से पूँजीवाद और सर्वहारा के मध्य उभरते द्वंद्व को मजबूत तरीके से उठाया गया। वर्तमान को समझकर विजेन्द्र ने उन तमाम विसंगतियों पर भी दृष्टि डाली है, जिनके कारण आज 21 वीं सदी में भी लोग जाति, धर्म, वर्ग, छुआछुत अमीर गरीब के भेद को स्वीकार करते हैं।

3.2.3. डायरी

विजेन्द्र का डायरी लेखन निरंतर बना रहा है। डायरी लिखने के पीछे विजेन्द्र का अपना वह चिंतन है जो उन्हें मथता रहता है। ये डायरी उनके लेखन की कच्ची सामग्री है जिसके सहयोग से विजेन्द्र अपना मानस कविता के लिए बनाते है। विजेन्द्र कहते है कि मैं डायरी निरंतर लिखता रहा हूँ। 'यहाँ मेरा जीवन, कवि – कर्म की तैयारी, रचनाकार मित्रों का संग साथ, काव्य – प्रक्रिया, कविता के सौन्दर्यशास्त्र, और अनेक विषयों पर लिखा है।'[102]

3.2.3.1. कवि की अंतर्यात्रा

यह डायरी सन् 1987 से आरंभ होकर 1996 के मध्य समाप्त होती है। इस डायरी में अन्य डायरियों के कुछ अंश (1968 से 1980) भी 'दिक्काल' नाम से है। इन सब में कविता ही केन्द्र में है। कुछ साहित्यिक चिंताएँ, तो कुछ भ्रमण के समय विचारित और चिंतन– मनन से निसृत भाव एवं संवेदनाएँ। कहीं – कहीं कविताओं का भी आना डायरियों में हुआ है। इसे कवि ने स्वाभाविक रूप में माना है। विभिन्न साहित्यिक पक्षों पर विचार करते हुए उन्होनें कविता के लोकधर्मी और सौन्दर्यधर्मी स्वरूप पर सबसे अधिक ध्यान दिया है। कहीं – कहीं तो वे यह भी मानते हैं कि ये गुण किसी रचना के मूल्यांकन की कसौटी के रूप में प्रमुखता के साथ आने चाहिए। वे लोक के उत्सवी रूप के स्थान पर उसके संघर्ष को देखना और दिखाना चाहते है। किसान और श्रमिक उनकी कविता के केन्द्र में हैं। वे अपनी डायरियों के द्वारा परम्परा और जातीयता के सवाल उठाते हैं। कविता, कवि, कविता – प्रयोजन, रचना, संप्रेषण, सहृदय, प्रकृति, आंचलिकता, स्थानीयता, समकालीनता आदि के सवाल उठाते हैं। बारम्बार इन विषयों पर विचार करते हैं। एक सार्थक कविता के लिए आवश्यक बिन्दुओं पर चर्चा करते हैं ।

3.2.3.2. धरती के अदृश्य दृश्य

कवि की अन्तर्यात्रा के बाद यह विजेन्द्र की दूसरी डायरी है, जिसमें उन्होने 1971 से लेकर 2001 तक की अवधि को डायरी में लिखा है। देश दुनिया की यात्रा – प्रसंग और प्रकृति के नजदीक लोक का महत्त्व, जो विजेन्द्र ने अनुभव किया वह सब क्रमबद्ध रूप से डायरी में मौजूद है। कवि ने प्रकृति के नाम से ही डायरी में शीर्षक दिये हैं। वनफूल, बबूल पर बैठी चिड़िया, प्रकृति मलिन है, वर्ष का पहला और आम का, आज कुछ छींटे पडे, गम्भीर नदी के तट पर, वर्कशाप में वर्षा, तम्बई रेत, खिली धूप, खेत जोतते किसान, आम गाछे गाम फले आदि विषयों के साथ जगती के विस्तृत आँगन, उसके संस्कार और संस्कृति के साथ साथ मानव के प्रकृति साहचर्य को भी कवि ने सूक्ष्मता के साथ ऐन्द्रिय बिम्बों के द्वारा प्रकट किया है। विजेन्द्र प्रकृति के बिना मानव को अधूरा मानते हैं। उनके अनुसार प्रकृति भी एक संस्कृति है यदि इसका मानव जीवन में अभाव है, तो संस्कृति भी पूरी नहीं हो सकती है।

परिवेश में वे प्रकृति को प्राथमिक स्तर पर रखते है। प्रकृति से जुड़े बिना भाव और चित्तवृत्तियों तक नहीं पहुँचा जा सकता है। जीवन और जगत् के संवेदन का आधार है प्रकृति। जिनको

विजेन्द्र को जानना हो, पहले वे उनके परिवेश और प्रकृति की जानकारी प्राप्त करें। जड़ों से जुड़कर ही किसी लेखक को जाना जा सकता है।

तुलसी से लेकर अद्यतन कवियों की रचना प्रक्रिया का सैद्धांतिक पक्ष, उसका मूल्य, महत्त्व आदि बातों के बारे में इस डायरी में चर्चा की गई है। विजेन्द्र एक स्थान पर कहते हैं –'कथ्य का चुनाव, समझ, संप्रेषण, लक्ष्य का ज्ञान भी जरूरी है, जो लोकमंगल ही हो सकता है।'[103] विजेन्द्र ने वामपंथ के कवियों की, लोक से कटने की कमजोरी को भी बिना किसी हिचक के स्वीकार किया है –'हमें अपने परिवेश और परिस्थितियों को समझ कर अपनी कार्यशैली तय करनी चाहिए। भारत के वामपंथी, इतिहास, समाज, साहित्य और संस्कृति के प्रति अपनी जड़ों से नहीं जुड़कर वायवी बातें करते हैं, इसलिए वे लोक से कट जाते हैं। भारतीय संस्कृति के रूपकों और प्रतीकों को बिना समझे कोई कैसे साहित्य लिख सकता है, अथवा समाज से जुड सकता है?'[104]

इस डायरी में विजेन्द्र लोक और देशीय भाव से दूर नहीं रहना चाहते, उसका कारण वे लोक के सांस्कृतिक पक्ष को बताते हैं। उनके अनुसार जितनी भौतिकता बढ़ी है उतनी संवेदनहीनता भी। ऐसे में बिना भारतीय साहित्य के संवेदना पक्ष को जाने हुए कुछ दुराग्रही और कथित बौद्धिक उस रचनात्मक साहित्य की अनदेखी करते हैं। जबकि ऐसा होना नहीं चाहिए था।

3.2.3.3. सतह के नीचे

सतह के नीचे विजेन्द्र की तीसरी डायरी है, जिसका प्रकाशन 2011 में हुआ। इसमें विजेन्द्र के 1968 से 2007 तक का लेखन है। डायरी में विजेन्द्र ने तीन तरह के संवाद स्थापित किए है। अपने से। अपने समय से। अपने उन सुधी पाठकों से जिनके सामने यह डायरी कृति रूप में कुछ कहेगी। वे लिखते हैं –'कविता की तरह डायरी लेखन मेरे लिए स्वतः स्फूर्त सृजन है। वैचारिक गद्य लिखते समय मुझे संघर्ष जैसा करना पड़ता है। पर यहाँ सब कुछ सहज और सहजता जैसा है। ...डायरियों में वैचारिक सूत्र हर जगह है .... डायरी का गद्य मेरे लिए कविता का अनिवार्य 'वर्कशॉप' जैसा है। एक तरह का रियाज।'[105]

ऐसा विजेन्द्र ने इसलिए कहा कि वे जब भी कविता के सौन्दर्यशास्त्र की बात करते हैं तो ऐसा हो जाता है कि विचार पुनः आंदोलित होकर लिखा जाय। यह वैचारिक प्रस्फुटन स्वतः स्फूर्त है। इसलिए जो भी कुछ मन, बुद्धि, चित्त में स्फुरण हुआ वह डायरी में लिखा गया है और पुनर्लेखन जैसा भी हो गया है। डायरी में उनके व्यक्तिगत परंतु आत्मीय भाव से लिखे गए कुछ प्रसंग भी है। इस डायरी में हिन्दी के बनते, बिगड़ते चित्र भी कवि ने दिखाये हैं –

20 अक्टूबर 1972 की डायरी में उन्होने अत्यंत बेबाक टिप्पणी की, जिसमें उन्होंने विश्वविद्यालय के पाठ्क्रम में बदलाव करने पर प्राध्यापकों की बेचैनी को चित्रित किया।

विजेन्द्र ने इस डायरी में भारतीय और पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र के बारे में अपनी सहज शैली में बताया है। भारत की उदात्त परम्परा को मार्क्सवाद से जोड़ा है। सौन्दर्य और श्रमशीलता को एक रूप में देखा है कविता और कवि कर्म के सूक्ष्म संबंध को बड़ी बारीकी से समझाया है। लोक को केवल शहर में ही नहीं गाँवों में भी प्रतिभासित होता बताया है। प्रगति और विकास में मानवीय रिश्तों की उलझनों को भी अपनी डायरी में स्थान दिया है।

3.2.4. आलोचना ग्रंथ

3.2.4.1. कविता और मेरा समय (2000)

विजेन्द्र कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं, तथापि उन्होंने डायरी के साथ – साथ कुछ लेखों को क्रमबद्ध और सुव्यवस्थित कर पुस्तकाकार रूप दिया है। 'कविता और मेरा समय' इसी प्रकार का लेखन है। इसमें चिन्तन की वे स्फुरणाएँ हैं, जिसे कवि अपनी कविता में नहीं कह पाये है। खुद से लड़ते भिड़ते रहने और अनेक विरोधी विचारधाराओं का प्रतिरोध करने से जो कुछ निपजा होगा। संभवतः वही सब इस पुस्तक के अन्दर मौजूद है। कविता, कवि कर्म, और साहित्य के बुनियादी सवालों पर विजेन्द्र का चिंतन प्रारंभ से ही है। ये चिंतन आज के समय में आम आदमी के संघर्ष को कविता के केन्द्र में स्थापित करने को लेकर भी है। विद्रूप समाज कैसे आदर्श रूप को प्राप्त हो? कविता में बढ़ते रूपवाद का प्रतिरोध कैसे किया जाना चाहिए? आलोचना की गिरती साख के कौनसे कारण हो सकते हैं? किसी रचना को किस रीति से आलोचक को देखना चाहिए? परंपरा के नकार का साहित्य पर क्या दुष्प्रभाव होता है? ये तमाम बातें विजेन्द्र की इस पुस्तक में विद्यमान है। इस पुस्तक को लिखने के संदर्भ में विजेन्द्र का यह कथन 'गद्य एक तरह से, मेरे लिए काव्य पथ पर आगे बढे जाने का संघर्ष ही है।'[106] जीवन सिंह जी ने विजेन्द्र की इस कविता के लिखने के पीछे के उद्देश्य को और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा है –'विजेन्द्र ने गद्यकर्म कविता को समझने – समझाने के एक खुले साधन के रूप में किया है, जीवन के किसी अन्य रूप को रचने के उद्देश्य से नहीं।'[107]

समकालीन कविता और आम आदमी आज के समय में बुनियादी सवाल है। इसकी बानगी विजेन्द्र के एक लेख में कितनी बेचैनी के साथ प्रस्तुत हुई है। इसकी बानगी देखी जा सकती है –

'आम आदमी की कविता क्या है? उसकी अपरिहार्यता का औचित्य? उसकी शर्तें। कवि कर्म की नयी चुनौतियाँ। कविता और जीवन की परस्परता और अन्तर्सम्बद्धता? हाँ, ये सारे प्रश्न – परिप्रश्न किसी सरलीकृत समीकरण के द्वारा नहीं समझे जा सकते। बडी सजगता से यह समझने की जरूरत है, कि रचना का आभ्यन्तर कैसे रचा जाता है? यह भी जाना जाए कि किस प्रकार जीवन के प्रश्न कविता के प्रश्न बन जाते हैं। क्या कोई बिन्दु ऐसा है, जहाँ कविता की समग्र चर्चा में जीवन के प्रश्नों को अलग किया जाय।'[108]

इस प्रकार इस पुस्तक में कविता के सम्बन्ध में आम आदमी के मन में होने वाली सवाली जरूरत को व्याख्यात्मक रूप में कवि ने अपनी विचारधारा के परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट किया है।

3.2.4.2. सौन्दर्यशास्त्र : भारतीय चित्त और कविता (2006)

विजेन्द्र ने इस गद्यकृति को अपने काव्यशास्त्र के अध्येता गुरूवर डॉ. रामअवध द्विवेदी को समर्पित किया है। इस कृति में विजेन्द्र ने यह मान्यता स्थापित की है, कि किसी कृति की गहराई को समझने के लिए उसके सौन्दर्यशास्त्र को जानना आवश्यक है। लेखक का मानना है कि कविता के सौन्दर्य को भारतीय चित्त की अवधारणा के परिप्रेक्ष्य में ही समझना श्रेयस्कर है। कविता के सौन्दर्यशास्त्रीय बुनियादी सवालों को भी इस चिंतनपरक पुस्तक में प्रमुखता से रखा गया है। जैसे – सौन्दर्य का स्वभाव और रूप क्या है? उसकी वस्तुनिष्ठ सत्ता को कविता में कैसे समझें? सौन्दर्य शास्त्र के दार्शनिक आधार क्या हो सकते हैं? हम सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टि से काव्य उपकरणों का बेहतर उपयोग कैसे करें? लोकधर्मी सौन्दर्यशास्त्र की हमारे यहाँ कैसी परंपरा है? कविता में वस्तु का पुनःसृजन कैसे और किस प्रक्रिया से होता है? कविता में जैविक लय कैसे रूप लेती है? वस्तु और अन्तर्वस्तु में क्या फर्क है? कविता में मूल्य दृष्टि, उसका शिल्प वैभव, भाषा में यथार्थ के स्तर और सौन्दर्यबोध आदि सवालों पर कवि ने लेखनी चलाई है। यह कृति हमारी कविता की परंपरा को समझने और सांस्कृतिक विरासत को जानने की सार्थक पहल है।

3.2.5. संपादन

3.2.5.1. कृति ओर पत्रिका –त्रैमासिक

विजेन्द्र ने जयपुर से इस पत्रिका का संपादन किया है। उन्होंने इस पत्रिका के पूर्व नाम 'ओर' के 24 अंक तथा 'कृतिओर' के 49 अंक संपादित किए है। वर्तमान में डॉ. रमाकांत शर्मा इसका संपादन कर रहे है। विजेन्द्र ने कविता और आलोचना के संवर्धन हेतु इस कविता केन्द्रित पत्रिका का आरंभ किया। पत्रिका के प्रकाशन के संदर्भ में कवि का यह उद्देश्य रहा, कि कविता के प्रति लोगो का रूझान बने, साथ ही कविता लोगों में उस दृष्टि का विकास करे जिससे कविता वास्तव में कालजयी या समकालीन कहलाए। समकालीन कविता की पहचान करने में कविता और उसके वास्तविक प्रतिमानों के बारे में पाठकों का ध्यान मार्ग से भटके नहीं और यदि पथ विचलित कुछ पाठक हो भी गये हों तो उनको भी काव्यालोचन और काव्य सौन्दर्य के मूल्यों से परिचय हो जाये। इसके लिए उन्होंने कविता का मूल्यांकन किया और करवाया भी। वर्गीय दृष्टि से लिखी जाने वाली काव्यालोचना को बढावा दिया। विजेन्द्र की इस पत्रिका का महत्त्व प्रसिद्ध आलोचक अमीर चंद वैश्य ने भारतेन्दु की पत्रिकाओं के समान किया है। इसका कारण 'विजेन्द्र का दृष्टि सम्पन्न संपादन नितांत अव्यावसायिक, रचनात्मक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक उपक्रम है, जो उन्हें हिन्दी की उस साहित्यिक पत्रकारिता से जोड़ता है, जिसकी शुरूआत भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने 'कविवचनसुधा', 'हरिश्चंद्र मैगजीन' और 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' से की।'[109]

'कृतिओर' में समय समय पर कविता का प्रयोजन, समकालीन कविता की पहचान, कविता और समकालीनता कविता और लोक, कविता और उसका सौन्दर्यशास्त्र जैसे विषयो पर अनेक बार आलेख प्रकाशित होते रहते है। इन सभी विषयों पर अपने आलेख भेजने वाले कुछ प्रमुख हस्ताक्षर हैं। कमला प्रसाद, कुमारेन्द्र, डॉ. नामवर सिंह, जीवन सिंह, राधावल्लभ त्रिपाठी, शलभ श्रीराम सिंह, मानबहादुर सिंह, वीरेन्द्र सिंह, वीरेन्द्र मोहन, अरूण कमल, ए. अरविन्दाक्षन, गोपेश्वर सिंह आदि।

विजेन्द्र की इस पत्रिका ने हिन्दी को शुद्ध आलोचना की ओर अग्रसर होने का अवसर दिया है। नामवर जी के विरोधी (कविता के नये प्रतिमान की तीखी आलोचना के कारण) होने के बावजूद उनके आलेख 'ओर' के 22 वें अंक में 'आधुनिक कविता : नये प्रतिमान की जरूरत' को भी सम्मानपूर्वक प्रकाशित किया। कवि केदारनाथ सिंह की कविता की सीमाएँ बताने वाले विजेन्द्र ने उन्हें भी आदरपूर्वक छापा। यहाँ तक कि विजेन्द्र ने सम्भावनाशील कवियों को भी उसी भाव से देखा है। नये लेखकों को प्रोत्साहन देने में केशव तिवारी, महेश चंद्र पुनेठा, सुरेशचंद्र सेन निशांत का नाम उल्लेखनीय है। आज भी यह पत्रिका समकालीन कविता के क्षेत्र की महत्त्वपूर्ण पत्रिका है, और निरंतर प्रकाशित है।

3.3. प्राप्त सम्मान एवं पुरस्कार

विजेन्द्र को साहित्यिक योगदान के लिए विविध संस्थाओं ने सम्मानित किया है वह इस प्रकार है –

1. 'चैत की लाल टहनी' पर राजस्थान साहित्य अकादमी का **सर्वोच्च मीराँ पुरस्कार**।
2. राजस्थान साहित्य अकादमी का **विशिष्ट साहित्यकार पुरस्कार**।
3. 'धरती कामधेनु से प्यारी' कृति पर **प्रथम पहल सम्मान**।
4. 'ऋतु का पहला फूल' पर 1996 का **के. के. बिडला फाउण्डेशन का बिहारी पुरस्कार**।

3.4. निष्कर्ष

बतौर निष्कर्ष कहा जा सकता है, कि विजेन्द्र एक संवेदनशील कवि, सजग एवं सचेतन आलोचक, एवं अध्ययनशील संपादक के रूप में सुपरिचित हैं। अपने बहुआयामी व्यक्तित्व के कारण समकालीन रचनाकारों में वे अपनी अलग पहचान स्थापित कर चुके हैं। एक मनुष्य के रूप में अपनी जमीन से जुड़े हुए समसामयिक परिस्थिति के प्रति सचेतनदृष्टि रखने वाले और संवेदनशील हृदय के सार्थक रचनाकार है। इनका व्यक्तित्व सादगी पसंद, विनम्र, और संवेदनशील है। उनकी संवेदनशीलता उन्हें अपने समय, समाज, और समकालीन परिवेश में आत्मीयता से जोड़ देती है। मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित कवि विजेन्द्र का साहित्य शोषित, पीड़ित और जनसाधारण से जुड़ा है। वे कविता की सहजता, सरलता और बोधगम्यता के पक्षधर हैं। वे कविता को सच्चाई अभिव्यक्त करने का माध्यम मानते हैं। उनके अनुसार सच्ची कविता प्रतिपक्ष तथा सच्चाई का पक्षधर होती है। इस प्रकार साधारण लोगों से जुड़ा विजेन्द्र का साहित्य काव्य चिंतन उनकी जनवादी काव्यदृष्टि का परिचायक है।

समीक्षा या आलोचना के संबंध में भी विजेन्द्र जनवादी या सर्वहारा दृष्टि को सर्वोपरि मानते हैं। वे श्रेष्ठता की पहचान और श्रेष्ठता के सृजन के लिए आलोचना को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। वे समकालीनता को काल के अतिक्रमण के संदर्भ में देखते और विचारते हैं और भविष्य के अनेक सवालों से जूझते हुए एक रास्ता दिखाते हैं। 'कृतिओर' का संपादन करते हुए उन्होंने इन सबके बारे में विस्तार से विचार किया है। अंत में यह कहा जा सकता है कि वे मूलतः कवि हैं और उनकी कविताएँ आमजन का पक्ष लेते हुए अपने समकालीन, सामाजिक अंतर्विरोधों, जटिलताओं को अभिव्यक्त करती हैं। वे आज भी अपने लेखन में पूरी निष्ठा के साथ संलग्न हैं।

संदर्भ –

1. आनंदवर्द्धन, ध्वन्यालोक, तृतीय उद्योत, कारिका 43, पृ. 312
2. मम्मट, काव्यप्रकाश, प्रथम उल्लास, कारिका 1, पृ. 5
3. संपादक डॉ. देवेन्द्र गुप्ता, सेतु पत्रिका, पृ. 19
4. अमीरचंद वैश्य, लोकविमर्श हिन्दी अन्तरजाल ब्लॉग, पृ. 2
5. संपादक डॉ. देवेन्द्र गुप्ता, सेतु पत्रिका, पृ. 20
6. संपादक प्रेमशंकर रघुवंशी, लेखन सूत्र, पृ. 50
7. वही पृ. 50
8. वही पृ. 49
9. संपादक एकांत श्रीवास्तव एवं कुसुम खेमानी, वागर्थ पत्रिका, कामेश्वर त्रिपाठी के आलेख से, पृ. 56
10. वही, पृ. 55
11. वही, अमीर चंद वैश्य के आलेख से, पृ. 49
12. संपादक प्रेमशंकर रघुवंशी, लेखन सूत्र, पृ. 51,
13. वही, पृ. 49
14. विजेन्द्र, प्रत्येक आकृति खिन्न है, त्रास, (कविता संग्रह) पृ. 93
15. विजेन्द्र, मेरे पद्माकाश के भीतर, त्रास, (कविता संग्रह) पृ. 95
16. विजेन्द्र, वसन्त पूर्वापर, ये आकृतियाँ तुम्हारी, (कविता संग्रह) पृ. 9
17. विजेन्द्र, मुहावरा, ये आकृतियाँ तुम्हारी, (कविता संग्रह) पृ. 37
18. विजेन्द्र, धरती जग गई है, चैत की लाल टहनी (कविता संग्रह) पृ. 9
19. विजेन्द्र, टूटती हैं ढाएँ, उठे गूमड़े नीले (कविता संग्रह) पृ. 33
20. वही, पृ. 38
21. विजेन्द्र, तस्वीरन अब बड़ी हो चली, उठे गूमड़े नीले (कविता संग्रह) पृ. 62
22. वही, पृ. 63
23. वही, पृ. 88 – 89
24. विजेन्द्र, धरती कामधेनु से प्यारी कविता संग्रह का पूर्वकथन, पृ. 7
25. विजेन्द्र, फिर भी जागो, धरती कामधेनु से प्यारी (कविता संग्रह) पृ. 12
26. विजेन्द्र, ऊषा, धरती कामधेनु से प्यारी (कविता संग्रह) पृ. 28
27. विजेन्द्र, नत्थी, धरती कामधेनु से प्यारी (कविता संग्रह) पृ. 146
28. विजेन्द्र, सुनो कवि सुनो, ऋतु का पहला फूल (कविता संग्रह) पृ. 179

29. विजेन्द्र, अपनी बात, उदित क्षितिज पर (कविता संग्रह) पृ. 6
30. वही, पृ. 30
31. वही, पृ. 9,
32. विजेन्द्र, सूखे हैं तिनके, घना के पाँखी (कविता संग्रह) पृ. 96
33. विजेन्द्र, पहले तुम्हारा खिलना, पृ. 10
34. वही, पृ. 11
35. विजेन्द्र, काल के विरूद्ध प्रेम कविताएँ, पहले तुम्हारा खिलना(कविता संग्रह) पृ.35 – 36
36. विजेन्द्र, उगान, पहले तुम्हारा खिलना (कविता संग्रह) पृ. 92
37. विजेन्द्र, अपनी बात, वसंत के पार (कविता संग्रह) पृ. 7
38. विजेन्द्र, कैसा कवि हूँ, वसंत के पार (कविता संग्रह) पृ. 40
39. विजेन्द्र, देखता हूँ रास्ता, वसंत के पार (कविता संग्रह) पृ. 61
40. विजेन्द्र, आधी रात के रंग, कविताओं और चित्रों का संग्रह, पृ 8—9,
41. वही, पृ. 14 — 15
42. विजेन्द्र, फाँसोगे गीत, कवि ने कहा (कविता संग्रह) पृ. 11
43. विजेन्द्र, स्थलाकृति, कवि ने कहा (कविता संग्रह) पृ. 15
44. वही, पृ. 17
45. वही पृ. 17
46. विजेन्द्र, मेवात की धरती, कवि ने कहा (कविता संग्रह) पृ. 31
47. विजेन्द्र, अपनी बात से, दूब के तिनके (कविता संग्रह)
48. वही, पृ. 5
49. वही, पृ. 2
50. वही, पृ. 9
51. विजेन्द्र, दूब के तिनके (कविता संग्रह) पृ. 19
52. विजेन्द्र, पकना ही अखिल है (कविता संग्रह) पृ. 56
53. वही, पृ. 19
54. वही, पृ. 26
55. वही, पृ. 19
56. विजेन्द्र, अपनी बात से, आँच में तपा कुंदन (कविता संग्रह)
57. विजेन्द्र, अमोला, आँच में तपा कुंदन (कविता संग्रह) पृ. 104
58. वही, पृ. 56

59. विजेन्द्र, बिरसा मुण्डा, भीगे डैनों वाला गरूण (कविता संग्रह) पृ. 95

60. विजेन्द्र, जनशक्ति, पृ. 31

61. संपादक डॉ देवेन्द्र गुप्ता, कामेश्वर त्रिपाठी का लेख, सेतु पत्रिका, पृ. 194,

62. वही, पृ. 195

63. विजेन्द्र, मेरे बोलने से उन्हें ठेस पहुँचती है, बुझे स्तंभों की छाया (कविता संग्रह) पृ. 9

64. विजेन्द्र, भादों बरसा है, बुझे स्तंभों की छाया (कविता संग्रह) पृ. 17

65. विजेन्द्र, बसंत अब जाने को है, बुझे स्तंभों की छाया (कविता संग्रह) पृ. 43

66. विजेन्द्र, कठफूला बाँस, पृ. 14

67. वही, पृ. 23

68. वही, पृ. 24

69. वही, पृ. 31

70. वही, पृ. 39

71. वही, पृ. 42

72. विजेन्द्र, संवाद स्वयं से, कठफूला बाँस (कविता संग्रह) पृ. 66

73. वही, पृ. 70

74. वही, पृ. 76

75. विजेन्द्र, ओ एशिया, कठफूला बॉस (कविता संग्रह) पृ. 91

76. वही, पृ. 95

77. वही, पृ. 97

78. वही, पृ. 99

79. वही, पृ. 99 – 100

80. विजेन्द्र, कौतूहल, कठफूला बाँस (कविता संग्रह) पृ. 119

81. वही, पृ. 120

82. वही, पृ. 121

83. वही, पृ. 127

84. विजेन्द्र, बनते मिटते पाँव रेत में, पृ. 27

85. वही, पृ. 27

86. विजेन्द्र, मैं चातक हूँ, बनते मिटते पाँव रेत में (कविता संग्रह) पृ. 92

87. वही, पृ. 94

88. विजेन्द्र, मैंने देखा है पृथ्वी को रोते, पृ. 44

89. विजेन्द्र, पूस का पहला पहर, मैंने देखा है पृथ्वी को रोते (कविता संग्रह) पृ. 192

90. विजेन्द्र, मुझे जगाने दो सरस्वती को, बेघर का बना देश (कविता संग्रह) पृ. 15

91. विजेन्द्र, ढल रहा है दिन, पृ. 13

92. विजेन्द्र, मिट्ठन, ढल रहा है दिन (कविता संग्रह) पृ. 47

93. विजेन्द्र, रतलाम की सुबह, ढल रहा है दिन (कविता संग्रह) पृ. 86

94. विजेन्द्र, टापें सुनीं, ढल रहा है दिन (कविता संग्रह) पृ. 135 – 136

95. विजेन्द्र, पॉल राब्सन, ढल रहा है दिन (कविता संग्रह) पृ. 202 – 203

96. विजेन्द्र, मेरा घर, ढल रहा है दिन (कविता संग्रह) पृ. 209

97. वही, पृ. 224

98. संपादक डॉ. देवेन्द्र गुप्ता, अशोक तिवारी का आलेख, सेतु पत्रिका, पृ. 140

99. वही, पृ. 140

100. विजेन्द्र, क्रौंचवध, पृ. 14

101. वही, पृ. 29

102. संपा. एकांत श्रीवास्तव आईदान सिंह भाटी का लेख,वागर्थ पत्रिका, पृ. 38

103. वही पृ. 40

104. वही, पृ. 40

105. वही पृ. 41

106. विजेन्द्र, अपनी बात, कविता और मेरा समय,

107. विजेन्द्र, कवि का गद्यकर्म, जीवनसिंह के आलेख से, कविता और मेरा समय, पृ. 1

108. विजेन्द्र, कविता और मेरा समय, पृ. 43

109. संपा. एकांत श्रीवास्तव, अमीरचंद वैश्य के आलेख से, वागर्थ पत्रिका, पृ. 43

अध्याय –4

विजेन्द्र की कविता में समकालीन बोध के आयाम

भूमिका

4.1. जनवादी विचार और संवेदना को महत्त्व

4.2. जनचरित्रों की संवेदना का चित्रण

4.3. मानसिक अन्तर्द्वन्द्व एवं संघर्ष का चित्रण

4.4. मूल्यहीन राजनीति के प्रति विक्षोभ

4.5. समकाल की अवधारणा या कालबोध

4.6. परिवेशगत सौन्दर्य एवं समकालीनता

4.7. श्रम की सौन्दर्य रूप में स्थापना

4.8. लोक से जुड़ाव

4.9. प्रेम और सौन्दर्य की समकालीनता

4.10. साम्राज्यवादी ताकतों का प्रतिरोध

4.11. सत्तामुखी कवियों की भर्त्सना

4.12. कवि कर्म और उसकी रचना प्रक्रिया का महत्त्व

4.13. स्त्री विमर्श और समकालीनता

4.14. जनभाषा को महत्त्व

4.15. निष्कर्ष

अध्याय – 4

विजेन्द्र की कविता में समकालीन बोध के आयाम

भूमिका

विजेन्द्र हिन्दी समकालीन कविता के बड़े एवं महत्त्वपूर्ण कवि हैं। इनकी कविता में भारतीय जन – जीवन की मानसिक और सामाजिक परिस्थितियों का सटीक प्रतिबिंबन हुआ है। आधुनिक जीवन की दिक्काल सापेक्ष विसंगतियों और विडंबनाओं का यथार्थकारी और कलात्मक निरूपण इनकी कविता की विशेषता है। समकालीन हिन्दी कविता में 'समकालीनता' को केन्द्र में रखते हुए इनकी कविता उन मूल्यों की पक्षधर है जो लोकतंत्र और मानव दोनों के लिए नितान्त जरूरी है। दुनिया में पतित होती मानवीय संवेदना और अपसंस्कृति को जब विजेन्द्र देखते हैं, तो उनका कवि स्वरूप सवाल उठाता है। ये सवाल ही उन्हें समकालीन बनाते हैं। वे लोकतांत्रिक मूल्यों का उल्लंघन करने वालों को बेनकाब करते हैं और आम जन को अपनी कविता के पात्रों के माध्यम से आजादी के दीवानों के बलिदानों की याद दिलाते है। वे उस मर्म को जिन्दा रखना चाहते हैं जो देश में सबको एक और नेक बनाने के लिए आवश्यक है। लोक में निहित प्रेम, प्रकृति, मूल्य, जीवन, जिजीविषा, श्रम और संघर्ष उनकी कविता का विषय है। जनपदीय भाषा और स्थानिकता उनकी कविता को अर्थ विस्तार देकर असीमित करती है। इस अध्याय में हम विजेन्द्र की कविता में निहित समकालीन बोध का अध्ययन करेगें।

4.1. जनवादी विचार और संवेदना को महत्त्व

कविता में विचार की महत्ता सर्वव्यापक है, यह विचार अपने बाह्य और आंतरिक संवेदना से सरोकार रखता है। यह विचार कवि की सर्जना की ताकत है, और इसी विचार से पाठक के अंतस् को तृप्ति मिलती है। किसी कवि की कविता में यही विचार जीवन, जगत् और ब्रह्माण्ड के प्रति एक रचनात्मक दृष्टि का विकास करता है। इस रचनात्मक दृष्टि के विकास में विचार का जैविक रूप प्रकट होता है, जो कविता के कथ्य के रूप में विशिष्टता पाता है। ऐसे में जब कोई विचार जनवादी मूल्यों से जुड़ा हो तो हिन्दी कविता में इसे जनवादी विचारधारा के नाम से जाना गया। 70 के दशक से अपनी कविता यात्रा आरंभ करने वाले कवि विजेन्द्र ने समकालीन कविता में जन को केन्द्र में रखकर अपनी कविता का श्रीगणेश किया। यह जन मनुष्यता का स्पंदन है। यह वह सामान्य जन है, जो सदैव मानवता के प्रति प्रतिबद्ध होकर अपने श्रम और

संवेदना से सबको सुखी रखता है। विजेन्द्र इसी जन के संदर्भ और सरोकारों की साकार परणिति अपनी कविता में करते हैं।

'इस सृष्टि का केन्द्र मनुज है
वह जीवन का
सुन्दरतम चित्र
अनुज है।'[1]

उनकी कविता में सर्वहारा (विशेषकर गरीब, दलित, पीड़ित, किसान, श्रमिक) के शोषण के साथ शोषित की विडंबनाएँ, उनका जातीय संघर्ष, उनकी श्रमशीलता, उनके द्वन्द्व, भिन्न विचार, संवेदनात्मक आयाम तथा वर्तमान की त्रासदी से उभरने वाले भावी दृश्य की संभावना एक के बाद एक दिखाई देने लगती है। इतना ही नहीं समाज में व्याप्त विषमताओं, मानसिक संकीर्णताओं और समाजवादी शोषण को भी अपनी कविता में दर्शाते हैं। कवि अनेक स्तरों पर इन सबसे वैचारिक रूप से टकराता रहता है इनके कारण और निवारण ढूँढने का प्रयास करता दिखाई पड़ता है। इस प्रकार विजेन्द्र की कविता का कथ्य आम जन के लिए संवेदनशील है।

4.2. जन चरित्रों की संवेदना का चित्रण

विजेन्द्र के काव्य का आधार जन है, जो श्रम के द्वारा मानव समाज को सतत् उपकृत करता है, और अपने लिए ज्यादा कुछ की अपेक्षा करता हुआ भी टकटकी लगाए अपने उन सवालों के अनुत्तरित जवाबों में उलझता रहता है, जो सदैव से केवल प्रश्न की शक्ल में ही है। उनका जवाब न सरकार के पास है और न ही किसी भगवान के पास। विजेन्द्र की कविता के चरित्र वास्तविक हैं, हमारे समाज के हैं। विजेन्द्र इन चरित्रों को अपने मन में बिठाकर उनके मन की बात कहते है। विजेन्द्र की कविताओं में मुख्य रूप से दो जनचरित्र देखने को मिलते है एक वे जो समाज का विकास श्रम के द्वारा करते है, ऐसे चरित्रों में गंगोली, तस्वीरन, लादू, मुर्दा सीने वाला, नत्थी, मागो, अल्लादी शिल्पी, साबिर आदि हैं। दूसरे चरित्रों में वर्गीय समाज का दूसरा चेहरा है, जो मिस मालती, मिस उर्मिला के रूप में समाज की उस मानसिक भूमि को आवाज देती है, जो वर्गीय भेद को जन्म देता है। पुरूष और नारी के संबंधों को भी चरित्रों के व्यापक परिवेश में रखने की भी कवि ने कोशिश की है। कहीं – कहीं इन चरित्रों के माध्यम से साम्प्रदायिकता की विकृत स्थिति को भी जानने समझने को मौका दिया है।

विजेन्द्र कहते हैं कि अपने श्रम से समाज को गति देने वाले मजदूरों के मन में एक बात गहरे से बैठी होती है कि हम दिन–रात मेहनत मजदूरी करते हैं, पर गुजारे लायक ही कुछ कमा पाते हैं। यह हमारा दुर्भाग्य है या पूर्व जन्म के कुछ कर्म।

'नहीं रहा विश्वास हाथ पर
करते रहे काम अथक जो
कर्महीन कहलाए।'[2]

लेकिन वह मजदूर उस वास्तविकता से परे है जिसमें अन्यायपूर्ण शोषण का साम्राज्य है। दिन रात कड़ी मेहनत करने के बावजूद जहाँ अभाव मिटने का नाम ही नहीं लेता। ऐसी सामाजिक विषमता की तस्वीर विजेन्द्र की कविता 'तस्वीरन अब बड़ी हो चली' में 'तस्वीरन' की है। वह रोज फूल से माला बनाती है, जो देवों और मानवों के सौन्दर्य का हिस्सा है, पर उसके निजी जीवन में सौन्दर्य का अभाव है। वह एकालाप करती हुई बोलती रहती है –

'चुनती हूँ/मैं/ फूल धूप में/ जाने किसके जूड़े सजते हैं/ कुछ हैं/ जो पैसे के बल/ देवों पै चढ़ते हैं/ क्या है उमर बीतती यों ही/ यही समय आ गया / अब्बा/ बाग रखते बुढ़आए/ कमर झुक गई / मैं स्यानी हूँ/ माँ को फालिज मार गई है/आधा मुँह खुलकर/ होठ कँपकँपाता है/ ऊपर का / भाई हैं छोटे/ बहनें हैं नादान अभी /किलो अढ़ाई आटा सिकता है हर दिन।'[3]

वह मुसलमान है। मुस्लिम समुदाय के दीन या धर्म में कहीं भेदभाव नहीं है, पर उसके खुद मजहब के लोग सिया – सुन्नी के मसले में पड़े है। वह उसकी आलोचना करती है –

'क्या है यह मुलक
ऊँच –नीच का सड़ता मलबा
घिन का गारा।'[4]

तस्वीरन हिन्दू– मुस्लिम वैमनस्य के उस संदेह को शब्द देती है, जो मुल्क में बाबरी से लेकर दादरी तक फैला है।

'फिर भी हम पर शक करते हैं
अहमद भैया को कटुआ कहते
अब्बा से बेगार कराते

कहाँ जाए
यह मुलक हमारा भी है
क्या।’[5]

‘लादू’ एक भेड़ चराने वाला गडरिया है। जिसकी भेड़ें ओलावृष्टि के कारण मर जाती है और ऐसे में उसके मन में ईश्वर के होने न होने का द्वंद्व घर कर जाता है। वह अपने पास खड़े पेड़ों की तरफ देखता है और कहता है –

‘लगता है ....
अब नहीं उसको भरोसा दाता पर
जिसे कभी न देखा उसने
बस सुना सुना......वह है सबका पालक
माता– पिता कहा करते हैं
सबकी रक्षा करता है भारी
लगता है सब मनगढ़ंत बातें हैं।’[6]

लेकिन लादू को अपने पर विश्वास है, वह जीवन को आशा के बल पर देखता है अपनी भुजाओं पर उसको उम्मीद है। वह फिर से आस्थावान होने की की प्रक्रिया में है, पर यह आस्था उसकी अपनी निजी है। किसी अदृश्य ईश्वर के प्रति नहीं, वह विश्वास से, पूरे दम से कहता है –

‘‘मुझे भरोसा अब भी भारी
फिर होंगी भेंड़े
गल्ल बनेंगें
रेवड ठाडी
देख रहा जब से जन्मा
इस मरूस्थल की महिमा न्यारी
हम जीते हैं बिना जिलाए और किसी के
बनी रही
यह धरती कामधेनु से ज्यादा प्यारी।’[7]

अल्लादी लुहार है, शारीरिक रूप से उसकी एक आँख धँसकी है, एक पाँव में कज है, फिर भी वह कर्मशील जन के रूप में कवि को आकर्षित करता है। उसकी कर्मकुशलता के चलते आस पास के गाँवों के लोग उससे काम कराने धरमपुर आते हैं। वह स्वाभिमानी है। वह अपने काम से काम रखता है –

'सबकी सुन – पी जाता
नहीं अधिक धन पाना
वही छमाही
धौं भर बेझड़
सडसी ऊपर नीचे करता
निर्भय
चाहे कोई
कहे
सुने
शिल्पी है मन का राजा
चाहे जो
धुने बुने।'[8]

साबिर एक ताँगा चालक है। उसके घोड़े का नाम सिकंदर है। जिसके बिना वह अपने को अधूरा मानता है। स्वयं भूखा रहे पर सिकंदर को कभी भूखा नहीं रहने देता। क्योंकि सिंकदर उसका बल है।

बडा सिकंदर' भूखा भागे – दौड़े
उस पर भी खाए कोड़े ।
उसके ही बल जीता हूँ
हाथ पाँव है मेरा वह
दिल की धड़कन।'[9]

वह उदास होने पर भी गीत गाता है। उसका सौतेला बाप नन्हें मियाँ को उससे आत्मीयता नहीं है। बाप के चलते उसकी माँ नूरी भी कुछ कटी – कटी रहती है, परंतु साबिर स्वाभिमानी और परिश्रमी है वह अपने परिश्रम के बल पर आदर पा लेता है।

'बरस एक में करज चुकाया
करके घोड़े की घनी कमाई
सब के मन का आदर पाया।'[10]

'अध बौराया आम' कविता का पात्र रामदयाल उर्फ रमदिल्ला कम समझदार साधारण किसान एवं मजदूर है, जो अपने स्वर्गवासी ठाकुर के प्रति राजा का भाव रखता है। उसका मानना है कि उसके ठाकुर को भगवान ने सोने का सिंहासन प्रदान किया है। वह बार – बार ठाकुरों के द्वारा अपमानित होने पर भी अपने राजा के उस आदेश को मानता है, जो उसे स्वप्नावस्था में राजा द्वारा दिया गया था–

'मैनें दी थी तुझे डहरिया
पेट पालने को
जिसका अब तू मालिक है
कानून आ गया ऐसा
ध्यान किया करना
नीयत मती डिगाना
अस्तीफा देना
अगर कहे ठकुराइन तुझसे...... ।'[11]

युग के बदलाव को कवि अपने अनाम पात्रों में भी देखता है –

'अब तक पूजता था जूता जमींदार का
अब बने पुन्नीलाल.......सेठ पूरनमल
रामदयाल ठीक कह गए
जा माया के तीन नाम
परसा, परसी, परसराम।'[12]

'बाबा आया' कविता में ऐसे तांत्रिक बाबा का चरित्र अंकित किया गया है, जो दुनिया का सब तरह का दुख दर्द दूर करने के लिए प्रसिद्ध है। एक औरत अपनी संतान कामना की इच्छा से बाबा के समक्ष प्रार्थना लेकर आती है। बाबा उसके हाथ से कड़ा उतरवाकर अपने हाथ में रखते हुए कहता है –

'यह भोली इतनी
नहीं जानती कितना छल दुनिया में
जिनके घर भरे हुए सोने– चाँदी से
उन्हें चाहिए, वरदान हमारा
उनके अंदर भय है
अंधकार की सड़ती कारा
नहीं जानती तू
वे जो छलते दुनिया को दिन में
उनको दिन – धौपर में छलता हूँ।'[13]

'नत्थी' माली कलाकार है। वह अपनी कला का साथी अपनी वायलिन और अपने पौधों को मानता है वह अपने जीवन में दुख से उकताया नहीं है।

'मैं कभी नहीं उकताया जीवन से
चाहे कुछ हो
पौदे बाँट लिया करते हैं
मेरा सुख दुख।'[14]

नत्थी अपनी गरीबी का कारण अपने अनुभव से जान लेता है। वह इस लोकतांत्रिक देश में लोक (किसान, श्रमिक और आम जन) की उपेक्षा से व्यथित है–

'लेकिन जुग – जुग से यही रहा है
यही रहेगा
जो गरीब है
वह सबका गस्सा बनता है
कौन छोडता ऊन भेड़ की
आजादी के बाद क्या हुआ
हम जैसों को
धनिकों की अब भी माया है
हम पै छोटे– छोटे खेत – टापरे
जो भी थे – निकल गए।

अब मकान भी नहीं रहा अपना
बड़ी जोत वालों ने निगल लिया हमको।'[15]

'ऋतु का पहला फूल' संकलन की एक कविता 'तेली की अँधेरी गली मोड़ पर' अत्यंत क्षोभकारी कविता है, जिसमें एक तेली दिन – भर कोल्हू पर अपना बैल चलाकर कड़ी मेहनत करता है पर इतना करने पर भी वह अपने परिवार का पेट पालने में असमर्थ है। मुस्लिम होने के चलते वह रोज़े के महत्त्व को अपनी पत्नी से कहता है, पर कर्ज में डूबे इस तेली की पत्नी नूरजहाँ क्षुब्ध होकर आक्रोश व्यक्त करती है –

'ये बातें हैं, बातों से पेट नहीं भरता
खाने वाले हैं सात – आठ
दिन – भर चक्कर लगाते – लगाते
एक नहीं सधता
क्या रखें रोज़ा
क्या पढें नमाज़
यह तो है उन निगोडों को
जो देते हैं आदमी का राशन घोड़ों को।'[16]

कविता में यह चरित्र इस बात का बेबाक ऐलान करता है कि कोई भी धर्म या धार्मिक आस्था समाज में व्याप्त विषमता का समापन नहीं कर सकती।

'मिस मालती' कविता में नूरजहाँ या तस्वीरन जैसा चरित्र नहीं है। वह उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है जो दीन – हीन मलिन को समाज के लिए अशोभनीय मानती है। उन्हें अपने उस पमेरियन कुत्ते की चिन्ता है, जो जब तक उसका मुख नहीं चूमे, तब तक वह मक्खन – टोस्ट नहीं खाती। उनका दुख मानवेतर दुख से परे संवेदनाहीन है।

'आस – पास के अधनंगे बालक
बडी हुड़क से ताक – झाँक देखा करते हैं
पर नहीं चाहती वे छुएँ इसे
गंदा कर जाएँ।'[17]

संवेदनहीनता की पराकाष्ठा तो तब हो जाती है, जब उसकी कुतिया की सेहत खराब होने पर इसका कारण उन दीन – हीन बालकों को मानती है –

'मुझे लगता – कहीं इन्हीं की छूत नजर तो
नहीं लगी है।'[18]

'मिस उर्मिल' मध्यवर्ग की स्त्री का चरित्रांकन है। वह अपने मध्यमवर्गीय स्वभाव के अनुरूप वह उच्चवर्ग का अनुसरण करती है। उसके आकर्षक व्यक्तित्व में सभी बँधें हैं। कविता का आरंभ एक डिनर पार्टी से होता है जहाँ लज़ीज व्यंजनों का लुत्फ उठाया जा रहा है। किंतु कवि की दृष्टि पार्टी से दूर, लॉन में बैठी मेहतरानी पर है। इस विषमता को कवि ने शब्द दिये हैं।

'बाहर के लॉन के कोने में
बैठी महतरानी थी
जहाँ फूला गेंदा
कुम्हलाई रातरानी थी।'[19]

कविता के अंत में कवि अपनी टिप्पणी के साथ अमीर और गरीब के वर्ग संघर्ष को इन पंक्तियों के माध्यम से दर्शाता है कि कविता संवेदना के चरम का स्पर्श कर पाठक को सोचने पर विवश कर देती है।

'चाय – कॉफी का दौर
अब खत्म होता है
मिस उर्मिल के हाथ का परोसा
डिनर भला कौन खोता है
दे रहे दुआएँ डकारकर
बगल की खपरैल में
हरदेई का घसीटा
चबेने को बेजार रोता है।'[20]

'काली माई' कविता की कस्तूरी ही अपने काले रंग के कारण काली माई के रूप में जानी जाती है। अपने पति निक्का के मर जाने के बाद वह अपनी सास के साथ बकरी पालन से जीवन व्यतीत करती है। उसके जीवन में अकेलेपन को दूर करने कादिर आता है। कस्तूरी कल्लू को

जन्म देती है। गाँव उसके इस संबंध को दुराचरण मानता है। कादिर को पीटा जाता है, उसका घर जला दिया जाता है। इतना ही नहीं कस्तूरी का बेटा भी बड़ा होकर कस्तूरी से दुर्व्यवहार करता है। वह उसे अकेला छोड़कर दिल्ली चला जाता है पर कस्तूरी सारे दुख भुलाकर अपने कर्म में लगी रहती है। वह आज के समाज की समीक्षा करती है और सोचती है –

'मैं और कादिर सुख से जी लें
यह भी तो इसको सहन नहीं है
खून – खून में फर्क क्या है
थू – थू इस समाज पर
जो मैं अपने मन से जीने का आजाद नहीं ....
जब सूत मिले दोनों के मन के
क्या जात – पाँत है।'[21]

ईमानदारी भी व्यक्तित्व की पहचान होती है। 'बैनी बाबू' नामक कविता में कविता का चरित्र बैनी बाबू चपरासी जैसे गौण पद से पदोन्नत होकर डिस्पैच लिपिक बने हैं और अपना काम पूरी निष्ठा से करते हैं। कवि उनकी इस चारित्रिक विशेषता को रेखांकित करते हुए कहता है –

'अब सब हुए पदोन्नत
उनमें से कुछ बने बड़े बाबू
नम्बर दो का धन कमा – कमा
कुछ का पेट हुआ बेकाबू
पर बैनी पर कोई असर नहीं
डिस्पैच बाबू को नहीं कोई बख्शीश देता
उन्हें सीट मिली हैं बाँझ।'[22]

इस प्रकार विजेन्द्र की कविताओं के चरित्र वास्तविक होने के साथ साथ संवेद्य भी है। ये हमारे परिवेश ओर समाज के हर उस तबके का परिचय देते हैं जहाँ एक ओर दो जून की रोटी के लिए संघर्ष है तो दूसरी ओर मानव से घृणा और कुत्तों से प्यार है। कवि ने इन चरित्रों के माध्यम से भारत की अनेक सामाजिक, साम्प्रदायिक और सांस्कृतिक समस्याओं से जूझते जन का परिचय दिया है। विजेन्द्र इस चरित्र सृष्टि में उन मानवीय मूल्यों की ओर भी पाठकों का

ध्यान खींचना चाहते हैं जिनसे सामाजिक समरसता और सुषमा की वृद्धि होती है। उनके चरित्रों में वस्तु जगत् की सक्रिय उपस्थिति ही उनके समकालीन होने का प्रामाणिक परिचायक है।

4.3. मानसिक अंतर्द्वन्द्व और संघर्ष का चित्रण

विजेन्द्र की 'नत्थी' नामक कविता एक ऐसे माली के अंतर्द्वंद्व को प्रस्तुत करती है, जो यथार्थ और संवेदना के दो धरातलों पर (माली तथा कलाकार का) अपने रिक्त जीवन को 'अर्थ' देना चाहता है। संगीत उसकी दुनिया है वह संगीत में बहुत कुछ करना चाहता था, पर संगीत रोटी के बिना कैसे ? उसका द्वन्द्व रोटी और संगीत के बीच है। कवि ने इस दर्द की गहराई मापी है।

'खाने को जब नहीं
तो कैसे संगीत कला पनपे
बडा अजब है
कहीं – कहीं तो कुत्ते पलते बिस्कुट– रोटी पर
कहीं नहीं अन्न खाने को
क्या कहूँ।'[23]

'मुर्दा सीने वाला' कविता आगरा के एस. एन. अस्पताल से संबंधित एक ठेठ निम्नवर्गीय मानसिकता के व्यक्ति का अंतर्द्वन्द्वात्मक इतिवृत्त है, जिसमें कवि, मुर्दा सीने वाला तथा उसकी आक्रामक पत्नी ये तीन पात्र हैं, जो सापेक्ष द्वंद्वात्मक स्थिति में कविता की संरचना को इस प्रकार संयोजित करते हैं कि पात्र, घटना और वैचारिकता के आयाम क्रमशः अर्थ प्राप्त करते हैं। मुर्दा सीने वाले के मन में यह द्वन्द्व चलता रहता है, कि आज भी देश में ऊर्जावान नेतृत्व का अभाव है। सच्चा लोकतंत्र अभी बहुत दूर है।

'हुआ होगा आजाद मुल्क–
मुर्दों की कमी नहीं
पिछले चालीस बरस से
देख रहा हूँ
बढा बहुत है लावारिस लाशों का नंबर।'[24]

4.4. मूल्यहीन राजनीति के प्रति विक्षोभ –

समकालीन कविता अपने समय के राजनैतिक आशयों से भी प्रेरणा लेती रहती है। यह प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूपों से होता है। इस प्रेरणा को 'वस्तुगत' यथार्थ से अतिक्रमण कर कवि 'संभावना' या भविष्यगत यथार्थ की कल्पना को सँजोता है। विजेन्द्र की कविताओं में राजनीति को जनवादी नजरिये से देखने का प्रयास है। वे राजनैतिक संकटों के अनेक रूप देखते हैं और राजनीति में प्रयुक्त होने वाले शब्दों (रूपाकारों) के प्रति, उनकी अवधारणा के प्रति वे चिंतित दिखाई देते हैं, क्योंकि भारतीय राजनीति ने इन 'शब्दों' को बेमानी कर दिया है। कवि का मानना है कि जनवादी राजनीति का जो रूप मुखर होना चाहिए था, वह नहीं हुआ। उदाहरण के तौर पर समाजवाद, उदारतावाद, जनतंत्र आदि 'शब्द' अपने 'अर्थ' खोते जा रहे हैं। कवि का समाजवादी के प्रति दृष्टिकोण –

'नहीं बँधता भरोसा
निरे शब्दों पर
खो रहे हैं अर्थ जिनके।'[25]

लोकतांत्रिक मूल्यों को दरकिनार कर केवल जनता को लूटने वालों के प्रति विजेन्द्र के मन में खिन्नता है। वे अवसरवादी राजनीति और देश में नेताओं के गिरते नैतिक आचरण से चिन्तित हैं।

'सारे मजमे वालों की जमात एक है
भोले भाले लोगों की गाँठ कटती है
इसका रंग अब राजनीति में
हुआ है गाढ़ा और गहरा
जो अपना उल्लू सीधा कर
पाँच साल बाद चाटती है तलवे।'[26]

जब तक शासन वास्तविक रीति से जनता के प्रति जवाबदेह नहीं होगा तब तक हम लोकतंत्र के समर्थक नहीं हो सकते।

'सर्वहारा के हाथ में सत्ता

लोकतंत्र की अंतिम विजय है।'[27]

विजेन्द्र की कविता में वर्णित यह विक्षोभ किसी न किसी रूप में आज की कविता का मुख्य स्वर है और यह स्वर कभी कभी 'संभावना' के 'प्रतिविश्व' का निर्माण भी करता है। रचनाकार की यह नियति है कि वह इस 'प्रतिविश्व' की फन्तासी की कल्पना करे, मात्र उसे वस्तुगत स्थितियों, घटनाओं तथा प्रतिक्रियाओं तक सीमित न कर दे, अन्यथा उसकी समकालिकता एक वृत्त के अंदर सीमित होकर 'काल' का अतिक्रमण नहीं कर सकेगी। अपने समय की चुनौतियों का सामना करते हुए उनके द्वारा समाज को एक भावी 'व्यंजना' का रूप दे जाना रचना कर्म का दायित्व भी है और उसका लक्ष्य। विजेन्द्र कहते हैं–

'जागो हीरामन जागो
बेवक्त सोयों को भी जगाओ
यह समय सोने का नहीं
रद्दोबदल..... बुनियादी उलट पुलट का है।'[28]

इस प्रकार विजेन्द्र के रचना संसार में 'समकालिकता' का दंश है, उसकी भयावह एवं त्रासद अनुगूँजें है, लेकिन इस सबके बावजूद उनकी कविता में 'समय' फौलाद की तरह पक रहा है और कवि ऐसे समय को 'अर्थ' देने की सतत् प्रक्रिया में है।

4.5. समकाल की अवधारणा या काल बोध

विजेन्द्र के यहाँ काल की अवधारणा एक व्यापक अवधारणा है, क्योंकि उनका स्पष्ट मानना है कि घटनाएँ (काल का अनुभव घटना (क्रिया) सापेक्ष होता है) सहेतुक हैं और वे किसी न किसी रूप में 'त्रिकाल' में अंतर्निहित है। कवि कहता है –

'लेकिन होती हैं घटनाएँ
सहेतु
अंतर्निहित भूत
भविष्य
वर्तमान में।'[29]

इस दृष्टि से, कवि के सामने काल का वह रूप है, जो त्रिकाल की गत्यात्मकता में है और ऐसे समय को कवि निरपेक्ष रूप में स्वीकार नहीं करता है। वह जन के भुजबंधों के साथ उसे स्वीकारता है –

'स्वीकारता हूँ
स्वीकारता हूँ
मैं
समय का भुजबंध तुम्हारे साथ।'[30]

यदि गहराई से देखा जाए तो कवि का सारा रचना कर्म काल की सापेक्षता में 'तुम्हारे साथ' का कालबोध है वह 'अहेतुक' नहीं है उसकी प्रतीति के पीछे मात्र 'मैं' नहीं है वरन 'हम' का एक गहरा बोध है। उसे विश्वास है कि चाहे वह रहे या न रहे, पर उसने वह 'अग्नि' खोज ली है जिसे वह 'आगे' तक बुझने नहीं देगा–

'न रहूँ
मैं
तो क्या?
अग्नि खोज ली मैंने जब
उसे न बुझने दूँगा
आगे तक ! ।'[31]

इसी संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण बात यह है, कि कवि 'संघर्ष – काल' को महत्त्व देता है और उसे मानवीय अनुभव के काल से जोड़ता है लेकिन उसके आगे वह नतमस्तक नहीं है, तुच्छ नहीं है, क्योंकि उसे विश्वास है –

'नहीं रहूँ मैं
तो क्या
शब्द, चित्र, छंद
ध्वनियाँ जीवित है ।
नहीं बेध पाएगा
उन्हें काल का बल्लम।'[32]

कवि इस काल के भयावह रूप को अपनी सृजन ऊर्जा से बेधना चाहता है और यह 'बेधना' ही उसे वह शक्ति देता है, जो काल से 'मुठभेड़' करने की क्षमता प्रदान करता है। विजेन्द्र की कविता को इस परिप्रेक्ष्य में रखकर ही उनकी समकालीन दृष्टि के संबंध में न्याय किया जा सकता है।

4.6. परिवेशगत सौन्दर्य और समकालीनता

विजेन्द्र की कविताओं को पढते हुए हमेशा यह लगता रहा है कि कवि मानवीय प्रेम और प्रकृति के निष्कपट एवं निर्दोष सौन्दर्य को उसके जैविक रूप से प्रस्तुत करते हुए एक ऐसे संवेदना जगत का सृजन करते हैं, जो परिवर्तित रोमांटिक बोध की ओर संकेत करता है, जिसमें रूढ़ रोमांस नहीं है वरन् यह रोमांस एवं सौन्दर्य उत्पादन की संस्कृति से गहरे संबंधित है। यदि यह कहा जाए कि कवि के रचनालोक में श्रम एवं संवेदना का सौन्दर्य इतना सहज एवं ऊर्जा से प्लावित है कि उसका निखार संघर्ष और द्वंद्व के मध्य होता है। इस द्वंद्व और संघर्ष में 'आस्था' का स्वर निहित है, एक ऐसी आस्था जो 'धरती की जड़ों' से जुड़ी हुई है।

'नहीं सुखा पाओगे मुझको
ओ सप्त अश्वधारी भगवान भास्कर
सजल स्रोत जीवन से! गुँथी हुई है
धरती में जड़ मेरी।'[33]

विजेन्द्र की कविता में परिवेशगत सौन्दर्यबोध का दूसरा पक्ष यांत्रिक जगत् का 'रूपाकार' होना है। 'स्पात का गलना', भू–वैज्ञानिक प्रक्रिया', कच्चे लोहे का गलना, तथा शिल्प गढ़ने की प्रक्रिया। ये सभी नये 'रूपाकार' नये सौन्दर्य बोध की सृष्टि करते हैं, जो परोक्ष रूप से वैज्ञानिक प्रभाव से उद्भूत कवि की रचना दृष्टि है। कवि ने विज्ञान, इतिहास, और दर्शन आदि के अध्ययन, मनन में अपनी पूरी ताकत लगाई और गहरे में उतरकर अपनी रचना को व्यापक और विकसित बनाया है। 'टूटती हैं ढाँये' नामक कविता में कवि के सृजन और संघर्ष के मध्य सौन्दर्य का प्रतीकात्मक चित्रण किया है –

'गलना
क्रिया है
कठोर

रक्तिम भारतीय हेमेटाइट की ....
धातुओं के मिश्रण से बनती है
प्रतिमाएँ ठोस
कांस्य बर्तन ....
विशाल भट्टियों में
कच्चा लोहा परिवर्तित हुआ
भू वैज्ञानिक रचना में
हुई रद्दोबदल...........
भू वैज्ञानिक रचना पर
निर्भर है
मेरी आत्म समृद्धि
यहाँ का अर्थतंत्र
भौतिक वर्चस्व।'[34]

उक्त कविता में कवि का यह कथन की उसकी आत्मसमृद्धि, भू वैज्ञानिक रचना पर निर्भर है ,एक नयी सोच नवीन रूपाकार, एवं नवीन संदर्भ के सौन्दर्य को प्रदर्शित करता है।

4.7. श्रम की सौन्दर्य रूप में स्थापना

सौन्दर्य क्या है? कैसा है? उसकी रचना कैसे होती है? अनेक प्रश्न हैं। उनके उत्तर भी अनेक हैं। कवि कहता है कि जैसे प्रकृति में संतुलन होता है, नये पत्ते आते हैं तो पुराने झड़ जाते हैं। पतझर के बाद प्रकृति नवयौवना हो जाती है। मानव भी इसी रीति से सौन्दर्य सृष्टि करता है। वह अपने सधे हाथों से उस कलात्मकता का निर्माण करता है जिसे देखकर सब आश्चर्यचकित हो जाते हैं। ताजमहल इसका उदाहरण है। विजेन्द्र कुम्हार का चाक पर काम करने को अत्यन्त सूक्ष्मता से देखते है और उसकी कलात्मकता को रेखांकित कर श्रम के सौन्दर्य को रूपायित करते हैं –

'मुझे देखने दो
पहले पहल कुम्हार को
पकाते कच्चे बर्तन अवाँ में
कितनी सुन्दर है कलाकृति

रची गई उसके सधे हाथों से
ओ कवि यह भी जानो
पहले मिट्टी भीग कर गारा बनी
अब पानी सेंतने को चित्रोपम घड़ा
खून चूसने वालों को
सुन्दर कृति दिखाई देती है
उसमें रचा गया श्रम नहीं।'[35]

कवि श्रमिक के प्रति सहानुभूति रखता है। उसका कारण भी है विजेन्द्र का मानना है कि बिना श्रम के विकास की बुनियाद नहीं रखी जा सकती है और बिना श्रमिक के श्रम कैसे संभव है? फिर भी हम श्रमिक की अवहेलना करते हैं। दुर्भाग्य है कि श्रम पूँजीवादी व्यवस्था में बौना साबित हो रहा है। श्रमिक दिन रात हाडतोड़ मेहनत कर दुनिया को सुन्दर बनाते हैं। उनका अपना जीवन कुरूप और बेढंग क्यों है? कवि इस विसंगति को अभिव्यक्ति देते हुए कहता है–

'क्यों न हो उनका हक उपज पर
जो कमाते हैं साल भर अपने पसीने से
क्यों न हो धूप सघन उनको
जो ठण्ड से काँपते हैं कँप कँप
क्यों न मुकुट पहने वो
जो जड़ता है इसमें नगीने नये नये।'[36]

इस प्रकार विजेन्द्र श्रमशील के प्रति आस्थावान है। उनका मानना है कि श्रमिक के श्रम से ही दुनिया में उजाला होगा, सभ्यता का विकास होगा।

4.8. लोक से जुड़ाव

विजेन्द्र जी लोक के प्रति पूर्ण जवाबदेह हैं। उनका मानना है, कि कवि को मध्यमवर्गीय मानसिकता से छूटकर अपनी माटी के सौधेपन से जुड़ना चाहिए। उस लोक का महसूस करना चाहिए जिससे वह जुड़ा है। उसे अपने क्षेत्र, अपने गाँव, अपने कस्बे, अपने नगर, और अपने पूरे देश की संस्कृति में डूबा हुआ होना चाहिए। उनकी कविता में यह लोक गाँव के सामान्य जन से लेकर महानगर की वैभवशाली इमारतों तक है। वे सर्वत्र जन से जुड़े हैं –

'अपने जनपद से ही पता लगता है
दूब का रंग
फूल की गन्ध
ओस की दमक
दिल की धड़कन
इन्हीं में दिखता है मुझे
चेहरा विश्व का।'[37]

वे अपने कवि कर्म को लोक के प्रति समर्पित करते हैं। वे लोक को व्यापक दायरे में देखते है। वे महानगरों में काम करने वाले वाले छोटे– छोटे लोगों, कामदारों, से लेकर धरती पर अपना परिश्रम देकर अन्न उपजाने वाल कठोर परिश्रमी किसानों, और बड़े – बड़े कारखानों की धमन भट्ठियों के आगे खड़े होकर इस्पात का उत्पादन करने वाले मजदूरों को भी लोक में शामिल करते हैं। विजेन्द्र का मानना है कि जो कवि अपनी कविता को इस लोक से परे मानकर लिखता है वह कवि कहलाने की सामर्थ्य खो देता है –

'उस भव्य स्थापत्य की झरन में
सुना अपने धुँधले अतीत का रूदन
ओ कवि –
जिंदा धड़कनों को अनुसुना कर
शब्दों को काठ मत बनाओ।'[38]

विजेन्द्र के लोक का जन असहाय, अक्षम, नैराश्य या हिम्मतपस्त नहीं, वरन् साहस और अपने पराक्रम से संघर्ष करने वाला है। वह कुछ करने का माद्दा रखता है वह चीजों को बदलने की सामर्थ्य रखता है। वह उत्सवधर्मी है। वह अपने पर भरोसा रखने वाला है। विजेन्द्र की कविता का 'लादू' ऐसा ही है –

'मुझे भरोसा अपने बल पर
देख रहा हूँ
ये पेड खड़े हैं
घोर तपन सूखा आतप में
मेरे अपने भले सगे हैं।'[39]

विजेन्द्र की कविता के पात्र भी जीवन के प्रति आस्थावान है। वह अभाव में भी प्रफुल्लित है, दुख में भी मुस्कुराते हैं और जीवन में तमाम जटिलताओं के बावजूद अपने जिंदा होने का प्रमाण देते हैं। 'साबिर का घोड़ा' नामक कविता का यह उदाहरण द्रष्टव्य है।

'तेज धूप में
भरे खचाखच आते
जनपदवासी
लदे–फँदे ताँगे में
सिर – पर – सिर ठुसे बोरियों से
फिर भी बड़े मजे से
गाते – बतलाते
अपने सुख – दुख।'[40]

विजेन्द्र की लोकोन्मुखता का एक प्रमाण यह भी है कि उनकी काव्य भाषा आभिजात्य के ढाँचे का विरोध करती है। अनेक कलावादी इसे लेकर भले ही अपना विरोध दर्ज करायें, पर विजेन्द्र मानते हैं, कि भाषा किताबें पढकर आने वाली कोई मामूली चीज नहीं है। वह सीखी जाती है, श्रम करते हुए आदमी को बोलते हुए सुनने से। वे कहते हैं–

'शब्द जनमते हैं
क्रियाओं से
उनमें
जीवन का अनुपम बल है।'[41]

पर यह तब ही प्राप्त किया जा सकता है जब लोक में डूबा जाय। उसके शब्दों और मुहावरों को गहराइयों के साथ आत्मसात् किया जाय। विजेद्र जी ने यह किया है। डॉ. जीवन सिंह इस विषय को केन्द्र में रखकर लिखते हैं 'वे जिस लोकांचल से संबद्ध हैं, कविता में उसी लोकानुराग को शब्दाकृति देते हैं। ब्रज और मरू जनपद की लोकभाषाओं का जो गहरा रचाव उनके मुहावरे एवं काव्यभाषा में है, वह कविता की दुनिया में केवल नवोन्मेषी ही नहीं है बल्कि अपने समय के सच की प्राण – प्रतिष्ठा भी है।'[42] कवि राजेश जोशी की ये पंक्तियाँ – 'ऐसी हो भाषा / के उसमें हो लाखों के बोलने का ढंग / कि उसमें हो पूरे जीवन का रंग।' विजेन्द्र जी की भाषा के संदर्भ

में ठीक बैठती हैं। वे प्रभावशाली भाषा का सूत्र 'जन से निकटता' मानते हैं। उनकी 'शब्द' कविता की कुछ पंक्तियाँ –

'वही शब्द होते हैं दीपित
जो कवि के मन से
फूटे हैं।'[43]

विजेन्द्र लोकोन्मुखता को रचना की कसौटी मानते हैं। उनके अनुसार किसी रचना को समझने के लिए उसकी मूलभूमि को स्पर्श करना पड़ता है । उनकी जड़ों को टटोलकर अनुभव इकट्ठा करना होता है। कविता की अंतर्वस्तु हो, भाषा हो या फिर शिल्प विजेन्द्र जी कहीं भी लोक को विस्मृत नहीं करते। लोक के प्रति ऐसा समर्पण आज कविता में कम देखने को मिलता है। उनकी लिखी ये पंक्तियाँ उनकी इस धारणा को प्रमाणित करने के लिए काफी है –

'संसार से भागकर
कविता संभव नहीं
कष्ट में रहकर भी
मैं जीवन से घृणा
नहीं कर सकता।'[44]

विजेन्द्र की लोकोन्मुखता के संबंध में कवि **अरूण कमल** लिखते हैं–'हिन्दी कविता की लोकधर्मी परंपरा के सर्वोत्तम तत्त्वों का समाहार कर, नागार्जुन– त्रिलोचन – केदार के दाय का विस्तार करते हुए निराला की परंपरा का अद्यतन प्रस्फुटन है विजेन्द्र की कविता।'[45]

4.9. प्रेम और सौन्दर्य की समकालीनता

कवि विजेन्द्र के कविताओं में प्रेम कल्पनाप्रसूत नायक और नायिका की भावातिरेक वासना का प्रतीक रूप में नहीं होकर जनपक्षधर श्रृंगार के व्यापक सौन्दर्य को धारित करते हुए अट्टहास करता है। वह श्रम संस्कृति की जुगलबंदी में गाता है, तान छेड़ता है। वह जीवन की क्रियाशीलता में है। वह किसी परकीया नायिका के आँचल की वस्तु नहीं है, बल्कि अपने घर के आँगन में ही कर्म के रूप में उगता और खिलता है। जो लोग जनपक्षधरता के प्रति शुष्क धारणा रखते हैं वे चाहें तो देख सकते है कि यह प्रेम भाव की उस रससिक्त धारा के प्रवाह की परंपरा में बहता है जो निराला से शुरू होती है और नागार्जुन, केदार, त्रिलोचन से बहती हुई विजेन्द्र तक आती है

और विजेन्द्र इसमें सभी को अवगाहन भी कराते है। विजेन्द्र अपने प्रेम का सर्वप्रथम परिचय किसान बन कर देते हैं –

'प्रिय, आज मैं तुम्हें
सरसों की फुनग देता हूँ
यह ताजा फुनग तुम्हारे जूड़े में उजासित है।'[46]

विजेन्द्र की कविताओं में प्रेम प्रकृति के साथ मानवीय सौन्दर्य और जीवन संघर्ष के बीच रचा बसा है। जिसकी पृथक् विवेचना करना कठिन है, कारण बस इतना है कि विजेन्द्र का प्रेम ऐहिक है दैहिक नहीं। आमतौर पर कवि प्रेम को प्रकृति में मानवीकरण के साथ प्रस्तुत करते हैं। परंतु विजेन्द्र के यहाँ प्रेम एकान्तिक रूप में है। यह प्रकृति कभी मानवीय सौन्दर्य का सादृश्य रचना विधान रचती है तो कभी मानवीय सौन्दर्य स्वयं प्रकृति का सादृश्य बन जाता है। विजेन्द्र की कविता 'मेवात की धरती' में कवि सरसों को प्रिया के रूप में देखता है। यहाँ धरती और मानवीय सौन्दर्य एकरूप हैं। सरसों का यह रूप न केवल नया है वरन् यथार्थ के निकट है–

'सरसों
तुम्हारे घने बालों की तरह छितराई
सरसों
इस मेवात की धरती पै
उठी सरसों
तुम्हारी सुडौल बाहों की तरह खूबसूरत है
वह
पानी पै उठी लहरों की तरह खूबसूरत है।'[47]

कहने की जरूरत नहीं कि विजेन्द्र का सौन्दर्य – बोध उनकी अपनी कर्मभूमि, आसपड़ौस और अंचल के प्राकृतिक एवं जीवन की सुंदरता के सुदृढ आधार पर निर्मित है। इस संग्रह की कविताओं में कवि की कर्मभूमि के संदर्भ जहाँ एक ओर कविता को विश्वसनीय बनाते हैं वहीं दूसरी ओर कवि के अपने समय की सम्बद्धता को भी बतलाते है। वे अपने अंचल के सम्पूर्ण जीवन में एक आदर्शवादी कवि की तरह केवल सुन्दरता को ही नहीं देखते, उसकी कुरूपताएँ भी उनकी पैनी नजर से नहीं बच पाती। 'मेवात की धरती' का दूसरा प्रश्न –

'तुम जानती नहीं
समूचा मेवात
इस चिपचिपाहट में
सो रहा है
इस कोहरे में सो रहा है
कोहरा सरसों का दुश्मन है
वह हमारे मुलायम रोंयों का दुश्मन है।'[48]

विजेन्द्र ने अपनी कविताओं में प्रेम को मन के उल्लास के साथ – साथ अनूठे अल्हड़पन से सँवारा है। कहीं कवि ने उस प्रेम को 'फला आम' कहा है, कहीं 'चैत की लाल टहनी' के रूप में उसे मूर्त रूप प्रदान किया है तो यह भी कहा है कि 'प्यार का कोई नाम नहीं होता'। प्यार यदि कहीं है तो वह प्रिय के रूप में है। वह उसके संपूर्ण व्यक्तित्व में है। वह उसके अंग प्रसंग और उसकी संपूर्ण क्रियाओं में है। वह उसकी हँसी में है, खुले केशों में और उदास आँखों में है। कवि ने उसे 'कामातुर चिडिया की बोली' में सुना है। उसने उसे खेत काटती हुई औरत तथा किलकिलाते बच्चे में देखा है। उसने उसे आँखों से आँसू पोंछती माँ का नाम दिया है। कवि ने प्रेम को उस किसान की औरत के रूप में देखा है जो अपने जीवट के चलते धूल धूसरित है, वह पशु को हाँकती है, पीली मिट्टी सानती है, अपने घर के आँगन लीपती है। इस तरह कवि जब उसे अनेक रूपों में दिखलाकर भी पूर्णत्व में नहीं दिखला पाता तो वह कह उठता है –

प्यार की भाषा न्यारी है
सब कुछ पाकर भी
नहीं अघाता मन।'[49]

कवि की मान्यता है कि प्यार परिवर्तनकारी शक्ति है। वास्तव में, जब किसी आदम ने मनुष्यता को सच्चे मन से प्यार किया तो कोई एक देश या समाज ही नहीं, बल्कि उससे पूरी दुनिया आंदोलित हुई है। इस दृष्टि से विजेन्द्र की एक कविता है 'बूँद के गिरने से'। इस कविता में कवि ने माना कि जब धरती हिलने लगे तो समझना चाहिए कि यह प्यार का क्षण है। यहाँ प्यार का हिलना और इसका अनुभव एकदम नया और भिन्न है। कविता की बानगी में इसे देखा जा सकता है –

'धरती का हिलना

प्यार का क्षण
यह क्षण
आकाश से बड़ा है
मैं सबके साथ
इसे अपनी साँसों में लेता हूँ ये साँसें
तुम तक पहुँचती हैं
यह रोशनी
तुम तक पहुँचती हैं
तुम्हारे चलने से धरती हिलती है।'[50]

विजेन्द्र अपने प्रेम को मनुष्यता से जोड़ते है। इन कविताओं में मनुष्यता के भावात्मक सौन्दर्य को भी वे स्वीकार करते है। आज के यांत्रिक सभ्यता के दौर में मानवता संवेदनाशून्यता की ओर बढ़ रही है, ऐसे में विजेन्द्र का प्रेम और उनका संवेदना पक्ष भी प्रभावित होता है। जिसकी अनदेखी भी नहीं की जा सकती। 'चैत की लाल टहनी' काव्य संग्रह में कविता में 'धरती जग गई है' का आरंभ प्रिया के सौन्दर्य – सज्जा से होता है, किन्तु सौन्दर्य के शत्रुओं की दुनिया के बीच संघर्ष, आज की वास्तविकता का दूसरा आयाम है। कवि विजेन्द्र 'धरती जग गई है' कविता में कहते हैं–

'तुम
डर रही हो
तुम्हारा दिल
एक पिण्डुक की तरह
भोला है
यह दुनिया
तुम्हारे लिए
क्रूर होती जा रही है
जहाँ रोशनी है चारों तरफ
वहाँ धरती जग गई है
मैं

अभी मुक्त हो नहीं पाया।'[51]

प्रेम और सौन्दर्य की सपनीली एवं मनोरम दुनिया के भीतर कवि इन आवाजों को अनसुना नहीं करता, जो उसके चारों ओर उसे सुनाई दे रही है। दरअसल जीवन का सौन्दर्य और भावसमृद्ध संसार कहीं भी संघर्ष का विरोधी नहीं है। वह जीवन के सौन्दर्य का विस्तार उन क्रियाशील क्षेत्रों तक करता है, जो उसका सृजन करने के बावजूद व्यवस्था के कपटपूर्ण व्यवहार के कारण उससे वंचित रहते हैं, इसलिये उसे ये आवाजें सुनाई देती हैं।

'मैं सुन रहा हूँ इनकी आवाजें
जो दूध को सपना समझते है मै उन्हें प्रहारों के बीच गिरते देखता हूँ
कराहते और उठते देखता हूँ
सारी सुविधाओं को
एक आदमी खरीदता है काले धन से
सारे फलों का रस
एक आदमी पीता है
मिश्रित अर्थव्यवस्था की खुली छूट से।'[52]

इस तरह कवि का निजी प्रेम, उदात्तता के धरातल से उठकर इतना व्यापक बन जाता है, कि वह केवल दाम्पत्य रति जैसा विशेष भाव नहीं रखता। वह तो विश्व प्रेम की बात करता है, जन प्रेम की बात सुनता है, और जीवन प्रेमी बन जाता है।

4.10. साम्राज्यवादी ताकतों का प्रतिरोध

विजेन्द्र उन ताकतों का विरोध करते हैं, जो आम आदमी के लिए संवेदनशील नहीं है। इतिहास साक्षी है कि वर्ग संघर्ष के लिए साम्राज्यवादी ताकतें जिम्मेदार है। सोवियत संघ के विघटन के बाद वैश्विक स्तर पर अमरीका की एक ध्रुवीय ताकत के बेजा इस्तेमाल को रोकने के प्रतिरोधस्वरूप एशिया के एकीकरण के लिए उन्होंने 'ओ एशिया' नामक कविता लिखी। वे एशिया महाद्वीप को संगठित देखना चाहते हैं। अमरीका साम्राज्यवादी ताकतों को बढ़ावा देने वाला देश है। अतः एशिया को दूसरी महाशक्ति के रूप में जागना होगा–

'ओ एशिया के विशाल महाद्वीप तुम जागो
दुनिया देखती है तुम्हारी तरफ, जागो...........

ज्योतिस्तंभ बुझे पड़े हैं
कहाँ है वह रोशनी।'[53]

अमरीका सारी दुनिया पर प्रभुत्व जमाना चाहता है। उसकी नियत लोकतंत्र के मूल्यों पर प्रहार करने की है वह उन ताकतों को पुष्ट करना चाहता है, जो फिर से एशिया के देशों को आत्मनिर्भर बनने से रोकती है।

'दुनिया के तेल खनिज पर
जमाना चाहता है अपना प्रभुत्व
एकध्रुवीय सम्राट
बार बार होते हैं लोकतंत्र पर प्रहार।'[54]

विजेन्द्र अमरीका की बढ़ती सामरिक ताकतों के खिलाफ हैं। वे शांति के समर्थक हैं। शांति और आपसी समन्वय से ही सौहार्द्र कायम होता है। कौन है जो हमारी शांति को छीनना चाहता है ? शांति को किससे खतरा है परमाणु युद्ध से। कौन है जो युद्ध को थोपना चाहता है?

'सुनता हूँ चीखें चारों तरफ
लीबिया पर नैटो की बर्बरता
लगता है खड़ा हूँ बूचड़खाने के आसपास
चिंघाडती हैं हवाएँ
इतनी विनाशकारी
तरेर खाता जल
खसाता कच्ची भीतों को
विश्वविनाशक आयुधों का व्यापारी
थोपना चाहता है युद्ध।'[55]

कवि अमरीका की ऋण नीति के भीतर छिपी कूटनीति की पहचान करने को कहते हैं –

'पहचानो एशिया की शक्ति का तुमुल घोष
पहचानो साम्राज्य के ऋण में छिपी
संज्ञा मारक कूटनीति, पहचानो।'[56]

4.11. सत्तामुखी कवियों की भर्त्सना

कवि ज्योतिस्तंभों के बुझे होने की बात कहता है। यह बुझना साम्राज्यवादी ताकतों के कारण है। कवि इस अंधेरे को दूर हटाना चाहते हैं। कवियों को कमर कसनी होगी। अपनी कविता की धार तेज करनी होगी। उजाले और अँधेरे का फर्क दिखाना होगा। विजेन्द्र को दुख है कि कुछ कवियों ने अवसरवादी कविता करके राजभवन में जगह पायी, और जड़ कविता करने लगे, पर कवि स्वयं को जड़ता की ओर नहीं ले जाना चाहता। उसका मन है कि चाहे जितनी भी यंत्रणाएँ मिले पर सत्तामुखी कवियों के समान वह प्रदूषित नहीं होगा।

'देखा एक दिन कुछ कवियों को
उड़ते पतझरे पत्तों की तरह हवा में
वे चहके, फुदके, बेपरवाह
हवा चाहे जहाँ ले जाये उड़ाकर।'[57]

कवि अपना पथ नहीं बदलेगा। वह उन नदियों की तरह नहीं, जिनका आगे अस्तित्व समाप्त हो जाता है। उसका मन है कि चाहे जितनी भी यंत्रणाएँ मिले पर सत्तामुखी कवियों के समान वह प्रदूषित नहीं होगा।

'मैं क्यों बदलूँ अपना पथ
उन नदियों की तरह
जो आगे जाकर होती हैं लुप्त।'[58]

4.12. कवि कर्म और उसकी रचना प्रकिया का महत्त्व

कविता संघर्ष से उत्पन्न होती है। कविता रचने के लिए उसकी अधिरचना में उतरना होता है। मंथन करना होता है। आचरण भी उसी अनुरूप हो तो ही कविता का कथ्य प्रभावी होता है। आज कवि सुगम मार्ग अपनाने लगे हैं। वे अवसरवादी होते जा रहे हैं कविता से सामाजिक बदलाव की दूरदर्शी दृष्टि उनके अंदर नहीं है। विजेन्द्र आज के कवियों के चरित्र को नदियों के चरित्र से जोड़ते हैं –

'क्यों बदल देती हैं पथ नदियाँ
जैसे हम बदल देते हैं
अपने विचार, आस्थायें, चेहरे, लक्ष्य भी।'[59]

कवि आगे अपनी बात को विस्तार देते हुए कहता है कि जिस प्रकार सभी नदियाँ डेल्टाओं का निर्माण नहीं कर पाती उसी प्रकार कोई भी कविता लिखने वाला कवि नहीं हो सकता।

'कहाँ कर पाती हैं सभी नदियाँ
निर्माण डेल्टाओं का
जैसे लिख कर कविता
नहीं होते सभी कवि।'[60]

विजेन्द्र कहते हैं कि कवि का जीवन कठोर होता है। उसका संघर्ष और द्वन्द्व कविता का संघर्ष और द्वन्द्व बन जाता है। कविता भी तभी प्रभावी होती है, जब वह भोगे हुए आत्मसंघर्ष से निपजी हो। जैसे संवेदना के दो रूपों में से एक रूप सतही होता है कवि उसे लहर के समान मानता है। लहर सागर के भीतरी तल को कभी नहीं देख सकती। संवेदना के दूसरा रूप में गहराई को अनुभव करना होता है। कवि उसी को महत्त्व देता है–

'गहरे समुद्र में लहरें
नहीं ले जा पाती
जल को आगे तक ढकेल कर
निस्तेज कवि के भाव
उठता है जल लहरों के साथ उपर
गिरता है उन्हीं के साथ नीचे।'[61]

4.13. स्त्री विमर्श और समकालीनता

भारतीय समाज में स्त्री को अनेक प्रकार से सामाजिकता और सांस्कृतिक मर्यादाओं और नियमों का पालन करना होता है। पैदा होने से लेकर बड़े होने तक घर परिवार और ससुराल में उसे सबको निभाना होता है। उसे ही शुभ और अशुभ जैसे उपमानों से तौलकर देखा जाता है। फिर भी यदि घर में नहीं निभ पाई तो दोषी भी केवल स्त्री बनती है। बच्चे नहीं हुए तो उसे सामाजिक दृष्टि से अच्छा नहीं माना जाता है। पुरूष प्रधान समाज में पुरूष को कोई दोष नहीं है कवि इस सड़ी हुई व्यवस्था को हटा देना चाहता है जिसमें सब कुछ स्त्री को ही भोगना होता है –

'कैसा समाज है पिछडा, मरियल
इसमें सहना है केवल स्त्री को

बच्चे के जनम हुये को
स्त्री ही क्यों दोषी।'[62]

कवि ने 'मैं चातक हूँ' नामक कविता में एक ऐसी स्त्री का चित्रण किया है, जिसका विवाह नहीं हुआ। वह अकेले ही जीवन यापन करती है। वह नौकरी कर अपना जीवन जीने में स्वतंत्र है, परंतु सामाजिक और सांस्कृतिक दबाव उसके मन पर हावी है। जिसके चलते उसकी सोच कुछ अर्धविक्षिप्त सी हो गई है। वह अपने अविवाहित रहने का कारण प्रभु की मर्जी मानती है। वह भावावेग में, *'सब कुछ होनी अनहोनी प्रभु के कारण होती है'* मानती है। विजेन्द्र इस स्त्री की मान्यताओं से संबंध नहीं रखते हुए अपनी विकसित मान्यता की चर्चा करते है। कवि के अनुसार यद्यपि संसार का नियामक कोई ऊर्जा है पर सृष्टि को विकसित और समृद्ध तो मनुष्य ने ही किया है। दर्शन और कला का संबंध वैज्ञानिकता से है। अवैज्ञानिक बातों से केवल हम कमजोर ओर पलायनवादी विचारों को पुष्ट करते हैं –

'रही क्वारी प्रभु के कारण
चुना मार्ग टेढ़ा – मेढ़ा
रही अकेली –
कौन कहाँ है, मेरा अपना
छोड सभी तो चले गये
प्रभु भी करता अनदेखी।'[63]

कवि उस स्त्री की नजर से समाज को देखता है। यह स्त्री अकेली है तो समाज अकेली औरत के संबंध में अनेक धारणाएँ बनाता है। हम चाहें कितने ही सभ्य होने का दम्भ भरें, पर आज भी हम स्त्री को सुरक्षा और सुविधा मुहैया करा पाने में पूर्ण सक्षम नहीं हो पाये हैं। लोगों की आज भी विचारधारा यह है कि पुत्र वंश को आगे चलाता है पुत्री नहीं। कन्या भ्रूण हत्या हमारे सामने है। यह भी गौर करने वाली बात है कि कन्या भ्रूण हत्या में वे लोग शामिल हैं, जो शिक्षित हैं, उच्चपदस्थ हैं और समाज को दिशा देने की सामर्थ्य रखते हैं। कवि पशु पक्षियों के माध्यम से एक सवाल करता है कि स्त्री पुरूष दोनों ईश्वर की प्राकृतिक सृष्टि है। पशु – पक्षी भी अकेले अपना जीवन यापन करते हैं उन्हें कोई नर या मादा की दृष्टि से नहीं देखता। फिर आधुनिक समाज, एक अकेली स्त्री को अभागा, दुखी क्यों अनुभव कराता है –

'यह प्यारी सी काली चमकीली चिड़िया

ले जाती अपने घर को
पराग फूलों का
ऐसा करते, मैंने –
इसका नर तो कभी नहीं देखा
मनुष्य जीवन में जो है
वैसा ही क्या पशु, पक्षियों में भी है।'[64]

'दादी माई' नामक लंबी कविता में श्रमशील स्त्री के जीवन की गाथा है, जो अपनी भेड़ और बकरियों के सहारे अपना और अपने परिवार की गुजर बसर करती है। वह संघर्षशील है और अपने बल पर पूरी ताकत से जीवन में आई हर मुश्किल का सामना करती है, पर अपने ही बेटे के दुर्व्यवहार से हार जाती है। 'दादी माई' के माध्यम से कवि ने भारतीय स्त्री की उस दशा और दिशा को दिखाने की चेष्टा की है, जिसमें स्त्री चाहे कितनी ही उदात्त, श्रेष्ठ, और समझदार हो पर उसकी नियति स्त्री ही है।

'अजब खेल है बाबूजी
इस दुनिया का
कोई समझ नहीं पाया अब तक
माया इसकी
जात इस्त्री की पिटती – कुटती है
धना – धोरी नहीं है कोई उसका
सुहागिन हो चाहे विधवा
या आधे दर्जन बच्चों की माँ
हाट मुहल्ला देखा करते हैं सब
बुरी निगाह से।'[65]

स्त्री अपना दर्द किसे कहे। समाज की यह व्यवस्था है कि छुटपन से लेकर मृत्युपर्यंत वह सेवा के कार्यों में संलग्न ही रहती है। यहाँ तक कि, अपनों द्वारा सताई जाने पर भी, मजबूरन अपना घर नहीं छोड़ पाती। लोक – लाज, दुनियादारी सब उसके आड़े आती है। दादी माई का बेटा भी उसे मारता पीटता है, उसके पैसे से दारू पीता है, पर उसकी परवाह नहीं करता। दादी

संघर्षी है, उसे गुस्सा भी आता है, पर वह यह सब कुछ छाती पर पत्थर रखकर सहन करती है। स्त्री की इस दुर्दशा पर दादी कहती है –

'ये देखो नीलासाय पडे हैं
मुँह में दरद भौत है
जीभ भींचकर बोल निकलता..............
एक और मन उसका काली दुर्गा का
नागिन ज्यों फुफकार रही हो
फिर भी उसे छिपाया हँसकर.........
छाती पर पत्थर रख जीती हूँ।'[66]

इस प्रकार विजेन्द्र ने स्त्री की युगीन संदर्भो में निहित समस्याओं को चित्रित कर समकालीनता के पक्ष को मजबूती प्रदान की है। वे पुरूष की मानसिकता को भी अप्रत्यक्ष रूप में प्रकट करने में सफल रहे है।

4.14. जनभाषा को महत्त्व

विजेन्द्र की कविता के केन्द्र में जन है। यह जन सर्वहारा है। इसकी भाषा ही कवि की भाषा है। कवि रोमानी और वायवी भाषा से दूर होकर लोक की भाषा के साथ तादात्म्य बनाकर कविता रचता है। वह किसान और श्रमिक की भाषा का पक्षपाती है। वह दरबारी कवि नहीं होकर जन कवि कहलाना पसंद करता है –

'रीति की अपंग उँगलियाँ नहीं,
मूजकूटा शब्द चाहिए अलख।'[67]

कवि अपने जनपद के साथ है उसकी भाषा के साथ अडिग खड़ा है। वह सत्य का पक्षपाती है वह लोगों को अन्याय और असत्य के विरूद्ध बोलने की ताकत देता है। वह प्रतिरोध का आह्वानकर्ता है।

'क्यों डरते हो सत्य बोलने से, बोलो
पथरीला सन्नाटा टूटता है
बोलने से, बोलो बेदखल
अपने इलाके के साथ

बोलो, बोलने से बढ़ता है साहस
अपने जनपद के साथ, बोलो एक साथ।'[68]

वे अपने समय और समाज से जुड़े रहना चाहते हैं। वे उन किसानों और मजदूरों की आवाज बनकर कविता करना चाहते हैं, जिसमें संघर्ष और जिजीविषा ज़िन्दा है। वे दलित और पीड़ित की आवाज के कवि बनकर संतोष का अनुभव करते हैं।

'जड़ों से दूर कैसे रहूँ
वे मुझे सींचती है हर बार।'[69]

4.15. निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के उपरांत, निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि विजेन्द्र की कविता में समकालीन बोध उनके जनवादी भाव के साथ प्रस्तुत होता है जहाँ श्रम की महत्ता है। श्रम सौन्दर्य है। किसान का दर्द है। जीवट जिजीविषा है। वर्गीय चरित्रों का संघर्ष है। दाम्पत्य प्रेम का सामाजिक रूपांतरण है। स्त्री की वर्तमान स्थिति और सामाजिक संरचना में उसका योगदान का निरूपण है। लोक के प्रति प्रतिबद्ध चेतना है। मानव की क्रियाओं का प्राकृतिक परिवेश से संबंधों का दर्शन है। जनशक्ति में आस्था है। आत्ममुग्ध कवियों की भर्त्सना है। कवि कर्म और उसकी रचना प्रक्रिया की चर्चा है। उनकी कविता में आंतरिक अनुशासन है। भाषिक संरचना में लय हैं। विजेन्द्र की सभी कविताएँ सहज और संप्रेषणीय है। कहा जा सकता है कि विजेन्द्र का कृतित्व समकालीन कविता में ज्योतिस्तंभ की भाँति है। वे अपनी कविता को प्रगतिशील, जनवादी और मानवीय इन तीन रूपों में निरूपित करते हैं।

संदर्भ :–

1. विजेन्द्र, जो रचता है, पहले तुम्हारा खिलना (कविता संग्रह) पृ. 93
2. विजेन्द्र, धरती कामधेनु से ज्यादा प्यारी, धरती कामधेनु से प्यारी (कविता संग्रह) पृ. 80
3. विजेन्द्र, तस्वीरन अब बड़ी हो चली, उठे गूमडे नीले (कविता संग्रह) पृ. 58 – 59
4. वही, पृ. 61
5. वही, पृ. 61 – 62
6. विजेन्द्र, धरती कामधेनु से ज्यादा प्यारी, धरती कामधेनु से प्यारी (कविता संग्रह) पृ. 79
7. वही, पृ. 80
8. विजेन्द्र, अल्लादी शिल्पी है–3, धरती कामधेनु से प्यारी (कविता संग्रह) पृ. 93
9. विजेन्द्र, साबिर का घोड़ा, धरती कामधेनु से प्यारी (कविता संग्रह) पृ. 97
10. वही, पृ. 99
11. विजेन्द्र, अधबौराया आम, धरती कामधेनु से प्यारी (कविता संग्रह) पृ. 121
12. वही, पृ. 125
13. विजेन्द्र, बाबा आया, धरती कामधेनु से प्यारी (कविता संग्रह) पृ. 130
14. विजेन्द्र, नत्थी, धरती कामधेनु से प्यारी (कविता संग्रह) पृ. 144 – 145
15. वही, पृ. 153
16. विजेन्द्र, तेली की अँधेरी गली मोड़ पर, ऋतु का पहला फूल (कविता संग्रह) पृ. 124
17. विजेन्द्र, मिस मालती, ऋतु का पहला फूल (कविता संग्रह) पृ. 147
18. वही, पृ. 147
19. विजेन्द्र, मिस उर्मिल, घना के पाँखी (कविता संग्रह) पृ. 123
20. वही, पृ. 124
21. विजेन्द्र, काली माई, घना के पाँखी (कविता संग्रह) पृ. 139 – 140
22. विजेन्द्र, बैनी बाबू, कवि ने कहा (कविता संग्रह) पृ. 83
23. विजेन्द्र, नत्थी, धरती कामधेनु से प्यारी (कविता संग्रह) पृ. 152
24. विजेन्द्र, मुर्दा सीने वाला, धरती कामधेनु से प्यारी (कविता संग्रह) पृ. 112
25. विजेन्द्र, लुप्त है धारा, पहले तुम्हारा खिलना (कविता संग्रह) पृ. 114
26. विजेन्द्र, नागदेव, बुझे स्तंभों की छाया (कविता संग्रह) पृ. 114
27. विजेन्द्र, मैं अपने काम पर हूँ, बेघर का बना देश (कविता संग्रह) पृ. 61

28. विजेन्द्र, कठफूला बाँस, पृ. 24

29. विजेन्द्र, उठे गूमड़े नीले, पृ. 29

30. विजेन्द्र, चैत की लाल टहनी, पृ. 112

31. विजेन्द्र, नव पथ आएगा, धरती कामधेनु से प्यारी (कविता संग्रह) पृ. 22

32. वही, पृ. 22

33. विजेन्द्र, जनपद का वृक्ष, धरती कामधेनु से प्यारी (कविता संग्रह) पृ. 56

34. टूटती हैं ढाएँ, उठे गूमड़े नीले (कविता संग्रह) पृ. 32 – 35

35. विजेन्द्र, ओ एशिया, कठफूला बाँस(कविता संग्रह) पृ. 108

36. विजेन्द्र, मैंने देखा है पृथ्वी को रोते, पृ. 102

37. विजेन्द्र, ठिठुराती रात, मैंने देखा है पृथ्वी को रोते (कविता संग्रह) पृ. 140

38. विजेन्द्र, प्यार, भीगे डैनों वाला गरूण(कविता संग्रह) पृ. 30

39. विजेन्द्र, धरती कामधेनु से प्यारी, कवि ने कहा (कविता संग्रह) पृ. 65

40. विजेन्द्र, साबिर का घोड़ा, धरती कामधेनु से प्यारी (कविता संग्रह), पृ. 94

41. विजेन्द्र, अरावली, ऋतु का पहला फूल (कविता संग्रह) पृ. 166

42. संपा. मंजू शर्मा, डॉ. जीवन सिंह का लेख, बूँद तुम ठहरी रहो पृ. 71

43. विजेन्द्र, शब्द, पहले तुम्हारा खिलना (कविता संग्रह) पृ. 63

44. विजेन्द्र, मैं लोगों के बीच, धरती कामधेनु से प्यारी (कविता संग्रह) पृ. 29

45. संपा. प्रेमशंकर रघुवंशी, समय का भुजबंध,(अरूण कमल का लेख) लेखन सूत्र पत्रिका पृ.225

46. विजेन्द्र, धरती जग गई है, कवि ने कहा (कविता संग्रह) पृ. 26

47. विजेन्द्र, मेवात की धरती, कवि ने कहा (कविता संग्रह) पृ. 31

48. वही, पृ. 31

49. विजेन्द्र, धरती अब भी प्यासी है, आँच में तपा कुंदन (कविता संग्रह) पृ. 31

50. विजेन्द्र, बूँद के गिरने से, चैत की लाल टहनी (कविता संग्रह), पृ. 12

51. विजेन्द्र, धरती जग गई है, कवि ने कहा (कविता संग्रह) पृ. 26 – 27

52. विजेन्द्र, चैत की लाल टहनी, कवि ने कहा (कविता संग्रह) पृ. 33 – 34

53. विजेन्द्र, ओ एशिया, कठफूला बाँस (कविता संग्रह) पृ.91 – 92

54. वही, पृ. 103

55. वही, पृ. 99

56. वही, पृ. 99

57. वही, पृ. 92

58. वही, पृ. 94 – 95

59. विजेन्द्र, मैंने देखा है पृथ्वी को रोते, पृ. 71

60. वही, पृ. 72

61. वही, पृ. 79

62. विजेन्द्र, आधी सदी, मैंने देखा है पृथ्वी को रोते (कविता संग्रह) पृ. 71

63. विजेन्द्र, मैं चातक हूँ, बनते मिटते पाँव रेत में (कविता संग्रह) पृ. 89

64. वही, पृ. 93

65. विजेन्द्र, दादी माई, बनते मिटते पाँव रेत में (कविता संग्रह) पृ. 114

66. वही, पृ. 118

67. विजेन्द्र, ढल रहा है दिन, पृ. 16

68. विजेन्द्र, ओ एशिया, कठफूला बाँस (कविता संग्रह) पृ. 99

69. विजेन्द्र, पहले तुम्हारा खिलना, पृ. 99, भारतीय ज्ञानपीठ नयी दिल्ली 2004

अध्याय – 5

समकालीन काव्य बोध की दृष्टि से विजेन्द्र की लंबी कविताओं का महत्त्व

भूमिका

5.1. लंबी कविता का स्वरूप एवं संरचना

5.2. लंबी कविता में निहित तत्त्व

5.2.1. प्रदीर्घता

5.2.2. दीर्घकालीन सर्जनात्मक तनाव

5.2.3. नाटकीयता

5.2.4. यथार्थ का गतिशील रूप

5.2.5. बिम्ब, विवरण और विचार का संयोजन

5.2.6. अन्विति

5.2.7. वैचारिक बनावट

5.3. विजेन्द्र की लंबी कविता का वैशिष्ट्य

5.3.1. प्रश्नाकुलता

5.3.1.1. लोकतंत्र में लोक की उपेक्षा

5.3.1.2. सामाजिक वर्ग भेद का चित्रण

5.3.1.3. असमानता और शोषण का चित्रण

5.3.1.4. साम्प्रदायिकता

5.3.2. जीवनधर्मी चेतना की अभिव्यक्ति

5.3.3. सामाजिक निर्भरता

5.3.4. धर्म के छद्म रूप का प्रतिरोध

5.3.5. श्रम की प्रतिष्ठा

5.3.6. स्त्री विमर्श और समकालीन बोध

5.3.7. जनशक्ति की आवश्यकता पर बल

5.4. समकालीनता की दृष्टि से विजेन्द्र की लंबी कविताओं में शिल्प संयोजन और स्थापत्य

5.5. निष्कर्ष

अध्याय – 5

समकालीन काव्यबोध की दृष्टि से विजेन्द्र की लंबी कविताओं का अध्ययन

भूमिका

आधुनिक युग में परंपरागत काव्यशास्त्रीय चहारदीवारी का उल्लंघन कर नए युग के जीवन स्पंदनों को अपने में समेटने वाली विधा का नाम लंबी कविता है। इसमें दबी हुई भारतीय जनमानसिकता का प्रस्फुटन हुआ है। जटिल एवं तनावपूर्ण परिस्थितियों से तनता, फैलता और गहराता वैचारिक पक्ष, और पीड़ादायक संघर्षपूर्ण मानसिकता को व्यक्त करने वाली नाटकीयता, तनाव, विचार तथा अन्विति इस कविता की विशेषता है। विजेन्द्र की लंबी कविताओं के पाँच कविता संग्रह अब तक प्रकाशित हुए हैं। जिनमें 'उठे गूमड़े नीले', 'जनशक्ति', 'कठफूला बाँस', 'मैंने देखा है पृथ्वी को रोते', और 'ढल रहा है दिन' है। इसके अतिरिक्त विजेन्द्र ने 'धरती कामधेनु से प्यारी' और 'बनते मिटते पाँव रेत में' में भी कुछ लंबी कविताएँ लिखी हैं। हम इस अध्याय में इन सभी कविताओं का समकालीन काव्यबोध की दृष्टि से अध्ययन करेंगें।

5.1. लंबी कविता का स्वरूप एवं संरचना

लंबी कविता सचमुच आधुनिक जन मानस के अंतरंग की कविता है। यह आधुनिक मनुष्य को अपने पूरे माहौल के साथ प्रस्तुत करने का कार्य करती है। इसे आधुनिक युग की काव्याभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम कहा जाए तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी, क्योंकि व्यक्ति और समष्टि की अंतरंग समस्याओं, उलझी हुई संवेदनाओं, परिवेशगत दबाव, तनाव, घुटन एवं संत्रासों का साक्षात्कार इसमें हुआ है। राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक परिप्रेक्ष्य में भिन्न – भिन्न मानसिकता को लेकर विभिन्न संदर्भों में इसका सृजन हुआ है। आधुनिक जीवन के संश्लिष्ट, गतिशील और परस्पर गुंफित यथार्थ के संप्रेषण के संदर्भ में लंबी कविता प्रासंगिक हो गई है। कवि जब अनुभूत सत्य को संप्रेषणीय बनाने का प्रयत्न करता है तो अनायास ही कविता लंबी हो जाती है। मुक्तिबोध की दृष्टि से यह रचना विधान के समसामयिक यथार्थ की गहराई को नापने के कारण होता है। उनके अनुसार –'रचना प्रक्रिया वस्तुतः एक खोज और एक ग्रहण का नाम है।'[1]

लंबी कविता की लंबाई बढाने में कवि की द्वंद्वात्मक स्थिति उसका तनाव और जटिलताएँ भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। डॉ. कमलेश्वर प्रसाद के अनुसार –'लंबी कविताएँ युगीन पृष्ठभूमि पर प्रतिफलित नवीन और अनिवार्य काव्य माध्यम है, जिसके द्वारा कवि सहज रूप में संपूर्ण तनाव, द्वंद्व और

जटिलताओं को अभिव्यक्ति देता है।'[2] डॉ. युद्धवीर धवन इस संदर्भ में लिखते हैं–'लंबी कविता नए जीवन विधान और यथार्थ बोध को अभिव्यक्ति देने की सृजनात्मक विवशता के परिणाम स्वरूप सामने आयी है। लंबी कविता ने एक विस्तृत फलक पर आधुनिक व्यक्ति के तनावों, यातनाओं और संकल्पों को व्यक्त किया है।'[3] आधुनिक व्यक्ति की इन तनावग्रस्त जटिलताओं को प्रगीत या किसी लघु कविता के माध्यम से चित्रित करने में कहीं कोई बात छूटने का भय बना रहेगा। इसी कारण डॉ. बलदेव वंशी ने कहा–'आधुनिक जीवन बोध के अतिशय दबाव में हुए अनिवार्य वृहत्तर परिवर्तनों के कारण लंबी कविताओं का उदय हुआ है।'[4]

लंबी कविता के स्वरूप पर विचार करते हुए डॉ. रमेश कुन्तल मेघ ने लिखा है–'समकालीन लंबी कविताएँ 'तराशी' हुई कविताएँ नहीं है, प्रत्युतः देश और समाज, मनुष्य और व्यक्ति की खंड – खंड, पट – पट, गड्ड – मड्ड, गाथाएँ हैं। लंबी कविताएँ एक संपूर्ण परिवेश और जटिल संदर्भ का अयत्नीकरण करती है, इसलिए इनमें अनुभूति– खंडों और संदर्भ खंडों का गड्ड – मड्ड काव्य वस्तु में कवि और व्यक्ति के, कवि और समाज के द्वन्द्वों का साक्षात्कार करता है। इन लंबी कविताओं में बाहरी दुनिया की क्रूरता को झेलते हुए अन्दर के अँधेरे से आत्मसंघर्ष करते हुए व्यक्ति, दिशा, अर्थ, मुक्ति की तलाश कर रहे हैं। अतः ये लंबी कविताएँ मुकम्मिल आर्टिफेंक्ट नहीं है, अनन्त भी नहीं हैं, बल्कि अंतहीन गाथाएँ हैं जिनमें अनुभव निरंतर बढ़ता चलता है, चेतना अनवरत दीप्तिमान होती चलती है तथा संघर्ष क्षणे – क्षणे तीव्र और त्रासद होता जाता है। आज का कवि समकालीन समाज के संदर्भो तथा सांस्कृतिक संवेदना की काव्यात्मक खोज में एक जटिल तथा संपूर्ण इकाई को पहचानने को व्याकुल है। इसलिए आज की श्रेष्ठ कविता की विधा 'लंबी और लंबी कविता' हो गयी है।'[5]

इस प्रकार समकालीन लंबी कविता समसामयिक जीवन के यथार्थ की कविता है। इसमें जीवन की दारूण यातनाग्रस्त स्थितियों का वर्णन है। मानव जीवन राजनीति के क्रूर हाथों में छटपटा रहा है। समकालीन कवि इस मानसिकता की चीर फाड़ करता है, तो पाता है, कि कुत्सित राजनीति इसका संचालन कर रही है। मूल्यहीन जीवन और संबंधहीन संवेदना का जन्म इसी से हुआ है। इन सबका प्रभाव यह हुआ है, कि आज मानव दिशाहीन, नेतृत्वहीन होकर अपने जीवन में सदैव विसंगतियों को ही देखता है। वह निराश है, व्यवस्था से, सत्ता से, सरकार से। डॉ. रत्नलाल ने लिखा है–'लंबी कविताएँ समसामयिक स्थितियों में आधुनिकता से ग्रस्त, महानगरीय प्रभावों से युक्त जीवन – यथार्थ से हमारा साक्षात्कार कराती है, जो सोच एवं संवेदन के स्तर

पर उद्घाटित होता है। इनमें सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक जीवन में व्याप्त विसंगतियों और विद्रूपताओं का जीवन्त चित्रण है। जिनके प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष प्रभावों की संश्लिष्टता के कारण कवि मारक स्थितियों का अंकन कर सके हैं। ये दारूण स्थितियाँ विषाक्त व्यवस्था का परिणाम है जिनका शिकंजा व्यक्ति पर कसता ही जा रहा है, और व्यक्ति की छटपटाहट निःशेष है। इस प्रकार इन कविताओं की धुरी है, व्यक्ति, जिस पर व्यवस्था का चक्र घूम रहा है। कवि ने इन दोनों पक्षों को आमने सामने लाकर टकराव की स्थिति में खड़ा कर दिया है, जहाँ व्यक्ति पराजित हो जाता है और व्यवस्था विजयी रहती है।'[6] डॉ. राजकुमार शर्मा ने लंबी कविता को रचनात्मक संघर्षो की परिणति मानते हुए कहा—'अकेले मुक्तिबोध ही नहीं, उनकी श्रेणी के दूसरे महत्त्वपूर्ण कवियों ने भी रचना प्रक्रिया के दौरान काव्यानुभव के वस्तुनिष्ठ वैचारिक आधार से जोड़ने की कोशिश में कविता को लंबी करने की जरूरत महसूस की। इस जरूरत और इसे पूरा करने के लिए किए गए विभिन्न रचनात्मक संघर्षो के बीच से 'लंबी कविता' के एक विशिष्ट फॉर्म का उदय हुआ, जो परंपरागत लंबी कविताओं से निश्चित आधारों पर भिन्न था। इस लंबी कविता ने कथा तत्त्व की प्रबंधात्मकता दीर्घता से मुक्ति प्राप्त कर नया विश्लेषणात्मक वैचारिक आधार प्राप्त किया। अपनी दीर्घता में यह कविता यथार्थ की एक अंतहीन विश्लेषण प्रक्रिया की तरह उभरती हुई अभिव्यक्ति की उस अनवरत खोज में बदल गई है, जिससे तीव्र आत्मसंघर्ष, विवेचनात्मक संवेदना और विश्व दृष्टि के व्यापक परिप्रेक्ष्य में मानव संवेदना के उदात्त रूप का सीधा साक्षात्कार होता है।'[7]

प्रभाकर श्रोत्रिय के अनुसार लंबी कविता के सृजन के लिए कवि के वैयक्तिक अनुभव में चिन्तन, कल्पना, अन्तर्दृष्टि, विवेक, संवेदना, यथार्थ, अन्वीक्षण, ज्ञान और महत् संरचनात्मक कौशल की जरूरत होती है। वे लंबी कविता को द्वन्द्वात्मक संश्लिष्ट में उपलब्ध 'संक्षिप्ततम' रचना मानते हैं। उनके अनुसार—'प्रलंब कविता का रचना विधान विरलता और सघनता के तनाव में निहित है। कवि के पास कहने को बहुत कुछ होता है जो उसे विस्तार की ओर खींचता है, जबकि उसका संरचना मानस उसे भाषा के अत्यंत सांकेतिक और संश्लिष्ट साधनों, छलांगों और सघनताओं मे बंदी बना लेना चाहता है। यह रस्साकशी पूरी कविता में चलती रहती है। बहुत विस्तृत और जटिल कथ्य को जहाँ एक ओर सीमित साधनों में संयत किया जाता है, वहीं दूसरी ओर कथ्य भी अपनी संपूर्णता और परिणति के लिए घमासान लड़ाई लड़ता है। इसी प्रक्रिया में कविता लंबी होती चली जाती है, और जब तक अभिव्यक्ति संपूर्ण नहीं होती, कवि उससे पीछा नहीं छुड़ा पाता।'[8]

अतः सृजनात्मक तनाव और दबाव से ही लंबी कविता का रूप विधान हुआ है। मानव, समाज और विश्व के प्रति कवि का दृष्टिकोण बिल्कुल बदल गया है। कवि इतिहास और वर्तमान के प्रति अधिक संवेदनशील है। राजनीतिक विसंगतियों में घिरी हुई यह कविता मानवीय मूल्यों के विघटन को सूक्ष्म – दृष्टि से विश्लेषण करती है। विश्व में बढ़ रहे तनाव और देश के अव्यवस्थित लोकतंत्र को देख कर कवि का द्वन्द्व गहराने लगता है। देश में व्याप्त भ्रष्टाचार के बदलते रूप, अवसरवाद और अमानवीयता कवि को संवेदनात्मक आघातों से त्रासद स्थिति में पहुँचा देता है। पीड़ाओं और यातनाओं की यह दहशतभरा सिलसिला ही आधुनिक लंबी कविताओं के रूपायन का कारण बन गया है। इस प्रकार लंबी कविता का विषय भावावेश की नहीं, बल्कि चिंतन की उपज है। यह विचारात्मकता से परस्पर जुड़ी होने के कारण दीर्घ स्वरूप बना लेती है।

5.2. लंबी कविता में निहित तत्त्व

लंबी कविता के स्वरूप और संरचना के संदर्भ में विभिन्न विद्वानों की जितनी भी परिभाषाएँ प्रस्तुत की गई है, उन परिभाषाओं और विचारधाराओं के आधार पर लंबी कविता के कुछ अभिलक्षण दिखाई देते हैं। जिससे एक साहित्यिक विधा के रूप में उसकी स्वतंत्र सत्ता एवं अस्मिता दिखाई देती है, साथ ही इन परिभाषाओं में लंबी कविता के साहित्यक रूपबंध के कुछ तत्त्व उजागर होते हैं। इस आधार पर लंबी कविता का तात्त्विक विवेचन निम्न बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता है।

5.2.1. प्रदीर्घता

लम्बी कविता की पहली विशेषता उसका आकारगत स्वरूप है। लम्बी कविता के नाम से ही स्पष्ट हो जाता है कि इस कविता का फलक विस्तृत है। आधुनिक जीवन के जटिल, तनावग्रस्त एवं संघर्ष भरे यथार्थ को अपनी पूरी समग्रता के साथ समेटने के प्रयत्न में कविता अनजाने ही बड़े आकार की हो जाती है। इसका कारण यह है, कि लम्बी कविता का आकार भावावेश की देन नहीं बल्कि चिन्तन की परिणिति है, विचारात्मकता के ताने बाने के साथ जुड़ी यह कविता वर्तमान के ठोस धरातल पर अपने इर्द – गिर्द संदर्भ, प्रसंग और एवं स्पंदित जीवन को अभिव्यक्त करती रहती है।

5.2.2. दीर्घकालीन सर्जनात्मक तनाव

लम्बी कविता की केन्द्रीय विशेषता दीर्घकालिक तनाव है। लम्बे समय तक कवि के मन में घुमड़ने वाला यह सर्जनात्मक तनाव उसे भीतर – बाहर से पूरी तरह मथता है, और बेचैन किये रहता है। इस तनाव से अनुभव और विचार, ज्ञान और संवेदना एक साथ लम्बी कविता में फैलने लगते

हैं और कविता का आकार विस्तार पाने लगता है विजेन्द्र की लम्बी कविताओं में यह तनाव एक आयामी नहीं है इसके पीछे भावना है, विचार है, अनुभव है, बिम्ब है, विचारों का गुम्फन है जिसके आधार पर एक लम्बे समय तक, एक बडे फलक पर विचारों का संयोजन रहता है।

5.2.3. नाटकीयता

नाटकीयता लम्बी कविता के रचनाविधान का अनिवार्य गुण है। इसके बिना युगीन यथार्थ की द्वैधता और अन्तर्विरोधपूर्ण स्थिति के विविध पक्षों, रंगों, और रंगतों को अनावरित कर सकना संभव नहीं है। युगीन यथार्थ के बहरूपियेपन के मुखौटों को उतारने के लिए नाटकीय संरचना आवश्यक हो जाती है। नाटकीयता के उपयोग से ही कवि ने अपनी लम्बी कविताओं में स्थितियों के पीछे की स्थितियों, चेहरों के पीछे चेहरों को, घटनाओं के पीछे घटनाओं को दृश्यात्मक या चित्रात्मक रूप में प्रस्तुत किया है।

विजेन्द्र की कविताओं में नाटकीयता के आधार पर जीवन की द्वन्द्वात्मक स्थितियों, मानव के अन्तर्विरोधों के साथ समकालीन काल की स्थितियों, व्यवहारों, मानसिक आत्मिक क्रिया कलापों को भी अभिव्यंजित किया गया है। इन कविताओं में नाटकीय संवाद और सम्बोधन शैली का भी विशेष महत्त्व हैं। नाटकीयता के कारण ही वाक्यांश, दृश्य परिवर्तन और परिच्छेद बदलाव आसान होता है और कविता बोझिल और दुरूह होने से बचती है।

5.2.4. यथार्थ का गतिशील रूप

लम्बी कविता की रचना – प्रक्रिया में यथार्थ के गतिशील रूप का होना महत्त्वपूर्ण लक्षण माना जाता है। लम्बी कविता में सर्जनात्मक तनाव की जो दीर्घकालिकता, विविधता और निरन्तरता दिखायी देती है, वह यथार्थ के गुम्फित और गतिशील रूपों को विशाल रूप में अभिव्यक्त करने का नतीजा होता है। यथार्थ के गतिशील रूपों को समझने के लिए समसामयिक संदर्भो को इतिहास में फैलाना जरूरी होता है, जिसके आधार पर ही सर्जनात्मक तनाव का बहुआयामी रूप सामने आता है। लम्बी कविता में गतिशील यथार्थ के केवल एकरूप, एक स्तर, या एक आयाम को पकड़ना अभिप्रेत नहीं होता। कवि यथार्थ को ऐतिहासिक गतिशीलता, और संश्लिष्टता से ग्रहण करना चाहता है, और ऐसा करते हुए वह तनाव के सभी सम्भव रूपों, विविध स्तरों और आयामों से गुजरता है, और उन्हें अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है। यथार्थ के तनाव का यह मिजाज भावपरक या उत्तेजनात्मक नहीं होता वरन् अनुभव और विचार से संश्लिष्ट होता है।

विजेन्द्र की लम्बी कविता में यथार्थ के गतिशील रूप दिखाई पडते हैं। उनके काव्य में सामाजिक यथार्थ को ग्रहण करने की विशेष प्रवृत्ति है। यह प्रवृत्ति केन्द्रीय स्थितियों, समस्याओं ओर पात्रों

को इसके जरिये विस्तृत रूप में अभिव्यक्त होती है। साथ ही साथ इस अभिव्यक्ति में मानवीय सरोकार के बिन्दु भी उभरकर सामने आते हैं। विजेन्द्र की लम्बी कविता में यथार्थ के गतिशील रूप ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक असंगतियों– विसंगतियों के आधार पर प्रकट होते हैं। जो सर्जनात्मक तनाव और बहुआवर्ती में लिपटी यथार्थ चेतना को अभिव्यक्त करते हैं।

5.2.5. बिम्ब, विवरण और विचार का संयोजन

बिम्ब, विवरण और विचार का संतुलन और संयोजन लम्बी कविता के रचना – विधान हेतु आवश्यक है। लम्बी कविता जिन संदर्भो, प्रसंगों और लक्ष्यों से बड़ी होती है। उसके मूल में बिम्ब या विचार चलता रहता है। लम्बी कविता का एक सफल रचनारूप तभी सम्भव हो सकता है, जब लम्बी कविता की क्रमबद्धता, और सम्बद्धता को सर्जनात्मक धरातल पर अंतग्रंथित करनेवाला कोई केन्द्रीय विचार या बिम्ब हो।

लम्बी कविता भाव, विचार, बिम्ब और विवरण को केवल प्रस्तुत नहीं करती, बल्कि उन्हें परस्पर सम्बद्ध करती है, उनमें संतुलन साधती है और उसे एक साथ अनेक अर्थो – संदर्भो, तथा आशयों से समृद्ध करती है। यही वजह है कि लम्बी कविता न केवल विचारधर्मी, न भावधर्मी और न ही बिम्बधर्मी होती है।

5.2.6. अन्विति

अन्विति लम्बी कविता का विधायक तत्त्व है। लम्बी कविता का यह वही तत्त्व है, जो ऊपर से विश्रृंखल और अराजक लगने वाली लम्बी कविता को भीतर से संगठित करता है। यह अंकुश की भाँति काम करते हुए कविता के बिखराव को नियंत्रित करता है। कविता के प्रसंगों, कथात्मक अंशों, और संदर्भ संकेतों को एक सूत्र में बाँधने का कार्य अन्विति करती है। एक बात यह भी महत्त्वपूर्ण है कि प्रगीत की अन्विति और लम्बी कविता की अन्विति में अंतर है। प्रगीत में अन्विति सीधी, सपाट स्तर पर झलकती दिख जाती है, जो एक क्रम में, एक तर्क में, एक निष्कर्ष में ढली हुई और परिणत दिखाई देती है जबकि लम्बी कविता अपने क्रम और निष्कर्ष में प्रायः अतिक्रमण कर जाती है। दूसरी बात यह भी की प्रगीत में भावमूलक अन्विति होती है जबकि लम्बी कविता की संरचना वैचारिक अनुभूति होती है।

5.2.7. वैचारिक बनावट

लम्बी कविता सामाजिक, राजनीतिक दबावो, टकरावों, मूल्यों, सम्बन्धों और विसंगतियों से गुजरती है, इसलिए उसकी बनावट और उसका मुख्य उद्देश्य वैचारिक हो गया है। लम्बी कविता में कथ्य से लेकर संरचना तक प्रभावी दखल रखनेवाला तत्त्व विचार है, जो अन्य तथ्यों, प्रसंगों, विवरणों

को अन्तःसूत्रों में पकड़ता और नियोजित करता है। यह विचार मानववादी और संघर्षशील पक्ष से जुड़ा होने के कारण समूची कविता का प्राणतत्त्व भी है। यह विचार जीवन परिदृश्य में व्याप्त राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक प्रभावों के परिणामस्वरूप उभरी विसंगतियों, मूल्यहीनताओं, विडम्बनाओं एवं अमानवीय स्थितियों के चयन का कार्य करता है। साथ ही इन संदर्भो, प्रसंगों को कविता के समूचे ढाँचे में संश्लिष्ट रचना विधा में ऐसे पिरो देना, अन्वित करना कि जिससे समय, जीवन की समस्त विद्रूपताएँ, सौन्दर्य – प्रतिमाएँ और विचार – सृष्टियाँ मुखर हो उठे।

इस प्रकार हिन्दी कविता में लम्बी कविता एक नये काव्य रूप, एक स्वतंत्र विधा और एक लोकप्रिय फॉर्म के रूप में प्रतिष्ठित हुई है।

5.3. विजेन्द्र की लंबी कविता का वैशिष्ट्य

5.3.1. प्रश्नाकुलता

विजेन्द्र की लंबी कविताएँ समकालीन हिन्दी कविता का आईना हैं। अनेक समकालीन प्रश्नों के साथ उनकी कविता देश की मौजूदा व्यवस्था की पोल खोलती है। वे मनुष्य और मनुष्यता के लिए सवाल करते हैं। वे उन सवालों के साथ हमारी कविता में आते हैं जिनसे समाज और सभ्यता को वास्तविक विकास की गति मिलती है। वे अपनी कविताओं में कोई वायवीय मुद्दा नहीं रखते वास्तविक मसलों पर बात करते है। उनकी कविता दैनिक जीवन की विडंबनाओं से जूझते हुए मनुष्य के लिए कुछ अच्छा होने की उम्मीद भर है। जिसके लिए वे कविता को माध्यम बनाते है।

5.3.1.1. लोकतंत्र में लोक की उपेक्षा

देश में लोकतंत्र की स्थापना को 70 वर्ष हो गये है, पर विकास के नाम पर केवल पूँजीवादी ताकतों को ही बढ़ावा मिला है। नेतृत्व शक्ति क्षरित होकर आज पतनोन्मुख स्थिति में है। श्रमिक किसान और आम आदमी सामान्य सुविधाओं से कोसों दूर हैं। मजदूर, श्रमिक और किसान भूखों मरने पर मजबूर हैं और सूदखोरों के कर्ज नहीं चुका पाने के चलते आत्महत्या जैसे कदम उठा रहे हैं। प्रशासनिक अधिकारी और कर्मचारी रिश्वत लेते पकड़े जा रहे हैं। सोचने की बात है कि किस भारत का निर्माण हो रहा है। कवि ने 'दादी माई' नामक कविता में इस सवाल को उठाया है–

'जो बनते रखबारे
वे ही अँतडियाँ खाबैं

जित देखो तित बोदे ही मरते हैं।'[9]

आज प्रशासन की संवेदनहीनता का आलम यह है कि यदि रूपये घूस के रूप में नहीं दिए जाये तो कार्यालयों में काम नहीं होता है। आजाद भारत में गरीब अवसाद में हैं। आजादी से मोहभंग हुआ है। जिस रामराज्य की परिकल्पना गाँधी ने की वैसा इस देश में कुछ भी नहीं हो रहा है –

'कैसा तो रामराज है
गाँधी बाबा आके तो देखैं
सिर कटते हैं पैसे देकर
मुँह बँधा मुचीका मेरे
कहने को आजाद बहुत हूँ।'[10]

हम सब जानते हैं कि भारत में विकास की बात नई नहीं है। अनेक योजनाएँ गरीबों के उत्थान के लिए बनाई जाती है, पर उनका वास्तविक क्रियान्वयन वास्तविक रूप में नहीं हो पाया है। आज भी गरीब दो जून की रोटी के लिए मसक्कत करते अभावों में जीने को मजबूर दिखाई देते हैं –

'कोई नहीं जानता
फूलों को चुनते – चुनते
जुग बीता जिनका
वे उनकी गंध नहीं ले पाए
गजरे गूँथे
हार बनाए
तब जाके घर में
दाने आए
लेकिन ऊपर से
यह दुनिया रंग रँगीली।'[11]

कवि ने अपनी कविता में उन लोगों की भावनाओं और संवेदनाओं को अभिव्यक्त किया है, जो दिन रात इस देश के सौन्दर्य में अपना योगदान देते हैं, पर व्यवस्था उनका उपयोग केवल वोट बैंक के रूप में करती है जो गरीब, दलित, पीड़ित, शोषित, और अतिसामान्य जन है। जो

वास्तविक भारत है। 'मुर्दा सीने वाला' नामक कविता में पोस्टमार्टम करने वाले व्यक्ति के माध्यम से कवि इस मोहभंग को व्यक्त करते हैं वे उस सामान्य जन के व्यक्तिगत आक्रोश को कविता में प्रस्तुत कर सामूहिक बना देते हैं –

'हुआ होगा आजाद मुलक.....
मुर्दो की कमी नहीं है
पिछले चालीस बरस से
देख रहा हूँ।'[12]

5.3.1.2. सामाजिक वर्ग भेद का चित्रण

विजेन्द्र सरकारी नौकरी में रहे। ऐसे में दोआब से लेकर राजस्थान के मरूभूमि तक उनका वास्ता इन क्षेत्रों में काम करने वाले मिल मजदूरों, श्रमिकों और किसानों से लेकर दुकानदारों, व्यापारियों, और उच्च संस्कारवान लोगों से हुआ। उनकी कविता में ये लोग ही चरित्र रूप में भारत की तस्वीर साफ करते हैं। विजेन्द्र बताते हैं कि भारत में किस प्रकार जाति, और धर्म के आधार पर भेद किया जाता है। विजेन्द्र 'अधबौराया आम' कविता के माध्यम से समाज के उस वर्ग भेद को चित्रित करते हैं, जहाँ आज भी कोई व्यक्ति केवल जाति के कारण कितना छोटा और कितना बड़ा देखा जाता है। रामदयाल नामक व्यक्ति को रमदिल्ला नाम से पुकारा जाना उस जातिगत मानसिकता और व्यवस्था का ही परिणाम है, जहाँ व्यक्ति की पहचान का आधार केवल और केवल जाति है–

'मेरे पुरखों के आस पास
रहते थे बाबा
नाम भला सा– रामदयाल
जात के धोबी
लेकिन ठकुराइस में
उन्हें पुकारा जाता रमदिल्ला।
कौन कहे –
नाम की महिमा जुड़ी हुई है
सिंहासन से।'[13]

विजेन्द्र ने सामाजिक परिवेश में प्रचलित कहावत 'अमीर की पूछ और गरीब की छूँछ' को भी नजदीक से अनुभव किया। नत्थी के माध्यम से गरीब के जीवन और जिजीविषा का चित्रण कवि ने इस समकालीन प्रश्न के साथ किया है कि गरीब को ही सबका कोपभाजन क्यों बनना पड़ता है ? क्या ये सब विधाता ने भाग्य में लिखा बदा है। यदि कर्म ही व्यक्ति की पहचान है, तो फिर अच्छे कर्म और कड़ी मेहनत करने के बावजूद उसे कर्महीन क्यों कहा जाता है? गरीब की मेहनत उसके अभावों को क्यों पूरा नहीं कर पाती? आज भी धनिकों की ही सत्ता और व्यवस्था क्यों है? कवि ने नत्थी से संवाद के माध्यम से आम आदमी के मन की बेचैनी को आवाज दी है –

'लगता है लिखा बदा होता है
नत्थी भाई
तुम भी कलाकार हो
लिखा बदा तो अनपढ़ कहते हैं.....
यह तो ठीक कहा आपने–
लेकिन जुग – जुग से यही रहा है
यही रहेगा
जो गरीब है
वह सबका गस्सा बनता है
कौन छोड़ता उन भेड़ की
आजादी के बाद क्या हुआ
हम जैसों को
धनिकों की अब भी माया है।'[14]

'ऋतु का पहला फूल' काव्य संग्रह में 'मिस मालती' नामक कविता के द्वारा कवि ने वर्ग भेद को जन्म देने वाले पूँजीपतियों की विलासिता, संवेदनहीनता और स्वार्थबद्धता का चित्रण किया है। कुत्तों को बिस्किट और दूध पिलाने वालों को सड़क पर दीन हीन भूखें मनुष्य और कातर निगाहों से रोटी को निहारते बालक नहीं नजर आते। मिस मालती की पपी जब बीमार हुई तब वह कहती है –

'पपी हमारी बडी निजाकती
अद्भुत सुन्दर है।

जब तक नहीं करूँ मनामने
नहीं मुँह चूमूँ
मक्खन लगा टोस्ट नहीं खाती है । ......
आस पास के अधनंगे बालक
बडी हुड़क से ताक झाँक देखा करते हैं ....
लगता है – कहीं इन्हीं की छूत नजर तो
नहीं लगी है।'[15]

विजेन्द्र ने अत्यन्त नाटकीयता के साथ इस विषमता को चित्रित करने में सफलता पायी है।

5.3.1.3. असमानता और शोषण के प्रति आक्रोश

कवि का मानना है कि आज भी मेहनत मजदूरी करने वाले लोगों के प्रति सहानुभूति और संवेदना का अभाव है। सदियों से गरीबों के प्रति हीनता का भाव देखा जाता रहा है। आजादी के बाद भी यह शोषण अनवरत जारी है। कभी सामंतों और दरबारों के शोषण से त्रस्त यह जनता आज साम्राज्यवादी एवं पूँजीवादी ताकतों से शोषित हो रही है। 'पारो' बकरी चराने वाली लड़की है। वह दिन भर बिना रूके, बिना थके अपने लक्ष्य 'पेट भरने' को लेकर जतन करती है। बकरी चराने के साथ – साथ लकड़ी इकट्ठा करती है। ये लकड़ियाँ श्मशान के ठेकेदार को बेचती है। पर ठेकेदार उसकी गरीबी और मजबूरी का फायदा उठाकर दाम घटा कर लकड़ी खरीदता है। कहता है, लकड़ी गीली है। कवि का मर्म छिद जाता है। उसका चिंतन यह है कि शोषण श्मशान तक फैला हुआ है। क्यूँ यह मरते दम तक गरीब का पीछा नहीं छोड़ता?

'हर रोज मरा करते हैं मानुख
लकड़ी चाहिए दाह कर्म को
सो वो मनमानी करता है
ठेकेदार काइयाँ, जान गया है
यह समय है पैसे का
जब भी मौका हो
गाँठ काटो जरूरतमंद की
अनुमान गया है
गरज बिना कौन देता है

सन्नो दे आती लकड़ियाँ
मजबूरी में।'[16]

कविता में प्रयुक्त दो पदबंध 'जान गया है' एवं 'अनुमान गया है' पूँजीवादी मानसिकता की पहचान है जो अवसर आते ही शोषण करने से नहीं चूकते।

इसी प्रकार 'लोग भूले नहीं' कविता में 'कानसिंह' के माध्यम से विजेन्द्र ने मेहनतकश लोगों की त्रासदी का दृश्य चित्रित किया है। कवि कहता है कि वे लोग जो मेहनत के बल पर जीवन जीना चाहते हैं, उन्हें पूँजीवादी लोग किस प्रकार तिरस्कृत और उपेक्षित करते है। वे श्रमिक जो अपने मालिक के लिए अपना जीवन दाँव पर लगा कर उन्हें मुनाफा कमा कर देते हैं। वे मालिक उनका किस भाँति शोषण करते हैं। कानसिंह कर्नल के खेत पर साझेदारी में फसल करता है, परंतु फसल के आते ही कर्नल उसे बेदखल करने का झूठा षड्यंत्र करता है और उसे अपने खेत से बेदखल करता है। आक्रोशी कानसिंह कहता है –

'लगा नहीं धेला भी उसका
पानी बीज न खाद निराई
फिर कैसी यह आधबटाई।'[17]

इस प्रकार विजेन्द्र ने असमानता और शोषण की संवेदनहीन और आक्रोशित भाव को समकालीन प्रश्न के रूप में पाठकों को चिन्तन करने के लिए प्रस्तुत किया है।

5.3.1.4. साम्प्रदायिकता

लंबी कविता 'तस्वीरन बड़ी हो चली' में विजेन्द्र भारत के उस वर्ग का चित्रण करते हैं जो आज भी अपने आप को असुरक्षित महसूस करता है। देश की आजादी में कंधे से कंधा मिलाकर सहयोग करने वाले इस तबके को आज संदेह की नजर से देखा जाता है। साम्प्रदायिकता का यह घिनौना स्वरूप लोकतंत्र की स्थापना के बाद भी आज भी आज ज्यों का त्यों है। कुछ राजनीतिक चालबाज इस मुद्दे को ज़िन्दा रख अपनी रोटियाँ सेकते हैं। अपने फायदे के लिए भारत की आवाम को विभाजित करने में भी इन्हें कोई गुरेज नहीं। आज भी बाबरी से लेकर वर्तमान दादरी तक यह सांप्रदायिकता का घिनौना खेल देखने को मिल ही जाता है। कवि 'तस्वीरन' के कथन में विभाजन से जन्मे इस त्रासद द्वन्द्व को चित्रित करते हैं–

'यह मुलक अजब है

यहीं पले जन्में
हम सब
इस मिट्टी पानी में
सने पुते
खेले कूदे
फिर भी हमसे
आसपास के घिन करते हैं
यों बागों में हो हो करवाते
गजरे कंगन
पूजा को गुलदस्ते बनवाते
लेकिन हम सुन्नी हैं
वे कहते
खून हमारा जहरीला है।'[18]

आज भी ख्यातनाम लेखक देश में सांप्रदायिक एकता और अखंडता के गीत गाते देखे जा सकते हैं परंतु वे यदि आमजन में जाकर देखें तो उन्हें वास्तविकता से परिचय हो जायेगा। 'तस्वीरन' के माध्यम से कवि ने उसी वास्तविकता को व्यक्त किया है। उस झूठी संस्कृति के प्रति तीखा व्यंग्य किया है, जिसमें आज भी धर्म के आधार पर मानव, मानव से घृणा करता है –

'क्या है यह मुलक
ऊँच नीच का सड़ता मलबा
घिन का गारा.......
अहमद भैया को कटुआ कहते।'[19]

कवि का मन इस बात से खिन्न है कि आज हम चाहें कितने ही विकसित क्यों न हो गये हों पर हमारी मानसिकता विकसित नहीं हुई। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना के गीत जाति, संप्रदाय के खोल में ही रहकर गाये जा रहे हैं। इंसान की सहज संस्कृति के निर्माण में हम अभी बहुत पीछे हैं। सत्ता के गलियारे केवल वोट बैंक के चलते हमें एक दिखाते हैं, पर हमारी सहज प्रवृत्ति में आज भी जातिगत कट्टरता हमें सभ्य समाज का हिस्सा नहीं बनने दे रहा है।

विजेन्द्र की एक अन्य लंबी कविता 'जुम्मन मियाँ' में हिन्दु – मुस्लिम वैमनस्य की परिणिति दंगे का चित्रण हुआ है। दंगे से होने वाले मानसिक, सामाजिक और आर्थिक नुकसान की वजह भी इसी साम्प्रदायिक वैमनस्य के कारण ही है। 'जुम्मन' अल्पसंख्यक समुदाय का चेहरा है। वह मानता है कि सत्ता मुस्लिमों के प्रति हेय दृष्टि रखती है। धर्म के आधार पर राजनीति करने वालों से वह खफा है। उसका मानना है, कि से राजनेता अपनी सत्ता के लिए हमें आपस में लड़ाते हैं, और हम एक दूसरे के प्रति नफरत से देखने लगते हैं–

'तुम्हारी पूरी कौम
गायब होने के डर से
काँपती गुजरात से।'[20]

कवि का मन्तव्य सिर्फ इतना है कि धर्म के नाम पर विनाशक तत्त्वों का नंगा नाच बंद हो। जहाँ दोनों प्रमुख धर्म भारत की संस्कृति का हिस्सा हैं, वहीं दोनों बिना एक दूसरे के रह भी नहीं सकते हैं। आज देश में सांप्रदायिक सौहार्द्र आवश्यक है। इसके लिए हमें मिलकर मुकाबला करना होगा। लोगों को वास्तविकता से परिचय कराना होगा–

'हमारी आस्तीनों में घुसा बैठा साँप
ये सब सफेद सन्नाटे से ढका है
जैसे हमारी नैतिकता.... जुम्मन भाई
कुत्ते की जीभ है
दर्शन बिल्ली का पंजा
कुलीनता खरगोश का काँपता दिल है
आँखों को दीठ चाहिए
उसके बिना
ये काले बटन हैं।'[21]

5.3.2. जीवन संघर्ष एवं जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति

विजेन्द्र राजस्थान के मरूप्रदेश चूरू के चुनौतीपूर्ण प्राकृतिक परिवेश पर कविता लिखते हैं। सूखा और अकाल के साथ भीषण गर्मी और हाडकँपाती सर्दी यहाँ के जन – जीवन का हिस्सा है। कवि अपनी नौकरी के दौरान यहाँ के श्रमशील लोगों के जीवन में गहरे उतर कर उनके

जीवनसंघर्ष का अनुभव करता है। भेड़पालक 'लादू' के जीवन को गहराई से देखकर वह उस क्षेत्र के परिवेश और जीवन संघर्ष को पहचानने की कोशिश करता है। मरूभूमि के भीषण अकाल में उसकी भेड़े मर जाती है। दुख से भरा हुआ लादू विधाता की इस अवांछित क्रिया से विचलित होता हुआ भी हिम्मत नहीं हारता। वह फिर से अपने काम की शुरूआत करता है। वह विधाता की इस दुनिया में गरीब के प्रति सहानुभूति नहीं देखकर उसे दोष देता है, पर अपने कर्तव्य से नहीं डिगता। इन विषम परिस्थितियों में भी लादू की चारित्रिक दृढ़ता और उसके कार्य व्यवहार से उत्पन्न सौन्दर्य सत्ता का अनुभव कर विजेन्द्र द्रवीभूत हो जाते हैं, और सोचते हैं कि यह कम से कम उन लोगों से तो अच्छा है जो तिकड़म और बिना किए धरे बहुत कुछ पाने के बाद भी अनैतिक आचरण नहीं छोड़ पाते। आज मशीनी युग के बढ़ते प्रभाव से हम हमारे बुनियादी जीवन मूल्यों से दूर होते जा रहें है परंतु लादू जैसे चरित्र के माध्यम से विजेन्द्र कविता में वह बनक तैयार करते है, जिससे साफ पता चलता है कि कवि लादू के जीवन में उस बुनियादी मूल्य को देखते हैं, जो उसे सही मायनों में इन्सान की हैसियत प्रदान करता है। लादू की क्रियाशीलता, विपदा आने पर भी शांत और शिकायत से परे पुनः अपने जीवन को आरंभ कर लेने की दृढ़ता कवि को उसके चरित्र में उस उत्साह की ओर ले चलती है, जहाँ जीवन है –

'कौन कहाँ सिरजनहारा
दया नहीं रत्तीभर
जो नहीं कभी कुछ करते धरते
पलते हैं ओरों के दम से
उनको कभी नहीं कुछ होता .....
हो अकाल, चाहे सूखा, ओला
उनका सोना पकता रहता
कैसे हो विश्वास विधाता
तू उनका भी है
जो दिन रात खपा करते हैं।'[22]

लादू के माध्यम से वे श्रमशील व्यक्ति की उस कर्मठता को अभिव्यक्ति देते हैं, जो इस वर्ग के लोगों का जीवन मंत्र है, लादू कहता है –

'मुझे भरोसा अपने बल पर
देख रहा हूँ ये पेड़ खड़े हैं
घोर तपन सूखा आतप में
मेरे अपने भले सगे हैं।'[23]

कवि उक्त पंक्तियों मे लादू के भविष्य के प्रति आश्वस्ति के भाव को देखकर नतमस्तक है। विजेन्द्र के मन में गहरा विश्वास है, कि मेहनतकश का कर्त्तव्य के प्रति निष्ठा ही उसका वास्तविक सौन्दर्य है। अभाव, खूबसूरत दुनिया का विकृत रूप है पर विश्वास उसे सुंदर बनाता है। 'मागो' नामक बकरी चराने वाली युवती का पूरा परिवार मेहनतकश है, जीवन की संवेदना में उसका विश्वास है –

'मेरी बकरी भूखी है
उसके बच्चे मिमियाते
पीछे आते
भागे....
पहले इसका पेट भरूँ
फिर छाँटू बीनूँ सूखा ईंधन....
दिन ढलता है।'[24]

विजेन्द्र की कविता में जीवनधर्मी मूल्य उनके चरित्रों में जीवंतता के साथ आते हैं। उनकी कविता 'नत्थी' में वे नत्थी की चारित्रिक खूबी को उसके विविध आयामों के साथ प्रस्तुत करते हैं। नत्थी कॉलेज का माली है, पौधे उसके संगी साथी हैं, संगीत उसकी साधना का हिस्सा है। इन दोनों के बलबूते वह अभाव से भाव की ओर जाता है। असंतोष से संतोष की ओर जाता है। वह वायलिन वादक है। संगीत उसका जूनून है, साधना है, और पेड़ – पौधे उसकी आजीविका। उसके जीवन में आई हुई विषम परिस्थितियों में वह संगीत और प्रकृति के माध्यम से अपने को संयत करता है। यह कविता आज के परिवेश में जीवन से हार मानकर आत्महत्या करने वाले मनुज के वीभत्स कृत्य को रोककर, उसे जीवन पथ पर आगे बढ़ने और संयम से भविष्य को सुंदर बनाने की प्रेरणा देती हुई प्रतीत होती है। कवि नत्थी के इस जीवनधर्मी पक्ष के सौन्दर्य को उद्घाटित करता है–

'मैं कभी नहीं उकताया जीवन से –
चाहे जो कुछ हो
पौदे बाँट लिया करते हैं
मेरा सुख दुख ...... ।'[25]

नत्थी के मन में कभी अवसाद नहीं आया उसका कारण भी संगीत ही है –

चाहे कितना की कठोर है जीवन
पल को हल्का होता मन
स्वर की यह माया
आदि
अनोखी..... ।'[26]

विजेन्द्र का काव्य संग्रह 'ढल रहा है दिन' में संकलित लंबी कविता 'मिट्ठन' में कवि ने मिट्ठन के माध्यम से कलाकार के जीवन और उसकी साधना के प्रति अटूट निष्ठा को चित्रित किया है। कला जीवनधर्मी चेतना है इसका साधक प्रत्येक स्थिति से साधना से जुड़ाव रखता है। साथ ही साथ समाज को अपनी कला से चेतन बनाकर जीवंत करता है। मिट्ठन भरतपुर कस्बे में मंसा माता मंदिर में जाकर नगाड़ा बजाता है। गरीब है, अनेक तकलीफें हैं, पर वह याचक नहीं है। श्रमशील है, उसके अंदर विश्वास है। सदैव हँसता और मुस्कुराता रहता है। कद से ठिगना पर स्वाभिमानी कद का मिट्ठन अपनी कला के प्रति संवेदनशील है। उसे कला के अतिरिक्त और किसी भी बात से कोई इत्तफाक नहीं है। उसका मानना है कि साधना से भटकाव पतन की ओर ले जाता है –

'नहीं रहता ध्यान कपड़े लत्तों का
दुनियादारी का
अपनी पराजय सफलता का
एक ही लक्ष्य होता है
अपनी कला को साधना।'[27]

विजेन्द्र की कविता 'बैनी बाबू' में आज के दूषित कार्यालयी वातावरण के बीच ईमानदार व्यक्तित्व 'बैनी बाबू' जैसे कर्मठ मानव की प्रतिष्ठा है। वे चारित्रिक दृढता के प्रतीक हैं। उनके चरित्र में

स्थिरता है, वे जानते हैं कि आज के युग में क्या चलता है। लेखक के सरकारी मकान आवंटन के लिए चक्कर काटने पर बैनी बाबू अपना अनुभव देते हैं –

‘कैसी बातें करते हैं यह प्रोफेसर
अपनी औकात नहीं जानते
नहीं जानते यह सब माया है अफसरों की
नहीं हुआ करते काम इस तरह।’[28]

पर स्वयं बैनी बाबू उस पचड़े से दूर हैं, एकदम अछूते। वे कर्म में विश्वास करने वाले वैष्णव हैं। अपने काम में उनकी निष्ठा देखकर कवि अभिभूत होता है। उनकी इस निश्छलता के संबंध में जब कवि पूछता है तो बैनी बाबू जवाब देते हैं–

‘दाने दाने पर मोहर लगी है
जो कुछ मिलना है जरूर मिलेगा
भाग्य रेख नहीं टरेगी टारे
पर उद्यम में कमी नहीं करेंगे
जो अपनी करनी है उसे भरपूर करेंगे
फल की इच्छा क्या करना।’[29]

इस चरित्र के माध्यम से कवि ने सामान्य चरित्र में उस द्वंद्व को दिखाने की चेष्टा की है जो जीवन के अच्छे बुरे पक्ष को देखकर अपना जीवन पथ चुनते हैं। उन्होने जीवन में कभी बुरा नहीं किया। जबकि वे कलेक्टरी में काम करने वाले बाबू थे। कवि ने यहाँ एक नवीन प्रश्न भी जोड़कर रखा है, जिससे पाठक स्वयं निर्णय कर पाने में समर्थ होगें, कि उन्हें किस प्रकार का जीवन चाहिए। विजेन्द्र बैनी बाबू के व्यक्तित्व में अनुभव करने वाले भाव को इन शब्दों में लिखते हैं–

‘मैंने पाया उनके चेहरे पर
कोई भाव नहीं है
यद्यपि अन्दर गहरा स्रोत उमड़ता
जो लगता ऊपर ऊपर से बंजर है
नीचे टोहो तो वसुंधरा उर्वर है।’[30]

5.3.3. सामाजिक निर्भरता

विजेन्द्र भारत के अतीत से भारत के वर्तमान को देखते हैं। वे उस भारत की एकता और अखंडता में विश्वास रखते हैं, जहाँ गंगा जमुनी संस्कृति का मेल है। हिन्दू, मुस्लिम, जैन, सिख, ईसाई, पारसी धर्मो की संस्कृतियाँ हैं। उनकी विविधता, विभिन्न भाषा, बोली, पहनावा संस्कार आदि अनेक होने पर भी हमें एक भारतीय होना बताती है। वे इस पावन धरा पर कबीर, तुलसी, जायसी, सूर, मीराँ, रहीम, और रसखान सरीखे कवियों की गूँज सुनते है। वे उस सांप्रदायिक समरसता के कायल हैं, जहाँ आपसी भायापन और आत्मीयता है। विजेन्द्र का मानना है भले ही शहरीपन आज बढ़ रहा है, इसके बावजूद ग्रामीण परिवेश में आज भी हमारा जीवन सामाजिक समरसता से पूर्ण है। किसी भी गाँव के जीवन में जाकर देखेंगे, तो पता चलता है कि हमारा जीवन बुनियादी कामों पर एक दूसरे पर टिका है। वहाँ कोई जाति आड़े नहीं आती, कोई धर्म बाधा नहीं पहुँचाता। जाति संप्रदाय के भेद ऊपर के हैं, थोपे हुए हैं। अगर हम चाहे तो इसे पाट सकते हैं। परंतु कवि को अफसोस इस बात का है कि विघटनकारी ताकतें हमें एक करने से रोकती हैं। 'अल्लादी शिल्पी है' कविता के माध्यम से कवि इस सोच को इन पंक्तियों में व्यक्त करता है –

'अल्लादी लोहा ढाल रहा है
लौहसारी में
तपा तपा कर
सुर्ख पिण्ड को पीटा
घन से
रूप दिया
जो चाहा
तेज धार दी
मन से ....
आभारी में उसका
दिया रूप
उन भावों को
जो मैंने सँजो धरे
चुपचाप
कभी चयन कर
यों ही जाने अनजाने

सच्चे मोती बनने को।'[31]

5.3.4. धर्म के छद्म रूप का प्रतिरोध

'धरती कामधेनु से प्यारी' कविता संग्रह की लंबी कविता 'बाबा आया' में बाबा के माध्यम से समाज की उस वर्गीय मानसिकता को सामने रखा है, जो धर्म और पाखंड के नाम पर लोगों के साथ छल कपट कर अपना उल्लू सीधा करते हैं। भोली – भाली जनता आस्था के नाम पर आँख मूँद कर उन पर भरोसा करती है, और ये साधुवेश धारी ठग उनकी आस्था से खिलवाड़ करते है। धर्म को धन्धा बना देने वाले इन बाबाओं के आचरण को, कवि ने बाबा के कथन के माध्यम से कहा है –

'कैसा मन है
छलता हूँ सबको
नहीं न्याय इस धरती पर
पहचान रहा हूँ
जो सबसे अधिक छली
वह उतना ही सुख में।'[32]

विजेन्द्र का काव्य संग्रह 'ढल रहा है दिन' में संकलित लंबी कविता 'मिट्ठन' में कवि ने मिट्ठन के माध्यम से धर्म की आड में फैले व्यभिचार, झूठे धर्म की पहचान, लोक में प्रचलित अज्ञान एवं जातिगत मान्यताओं का मनोवैज्ञानिक रीति से चित्रण किया है। 'मिट्ठन' कलावंत है और मंसा माता मंदिर में नगाड़ा बजाकर आजीविका चलाता है। उसकी कला की वहाँ कोई कद्र नहीं करता। वहीं उस मंदिर का पुजारी भँगेड़ी और कदाचारी होने के बावजूद भी, लोगों के द्वारा पूजा जाता है। कवि इस मानसिक संकीर्णता से खिन्न होकर लिखता है–

'सब झुकाते सिर
उस पुजारी को
जो छानकर बैठा बूटी
शिवशंकर की ।.............
ताकता पुजारी भक्त महिलाओं को
कोई नहीं सुनता – देखता

मिट्ठन के नगाड़े को।'[33]

कवि मंसा मंदिर के सामने बने गाँधी पार्क में, गाँधी की मूर्ति पर कबूतरों की बीट और गंदगी देखकर दुखी होता है। वह चिन्तन करता है कि देश पर अपना जीवन न्यौछावर करने वाले इस महात्मा की दुर्दशा क्यों हो रही है? क्या कारण है कि हम इस महापुरूष के प्रति श्रद्धान्वित नहीं है? यह कैसा धर्म है? जिस व्यक्ति ने हमें आजादी दिलाई, उसकी उपेक्षा और ईश्वर के नाम पर अनाचार और ठगी। क्या प्रगति और विकास का यही स्वरूप है? कवि ऐसे धर्म का प्रतिरोध करता है, जहाँ वर्तमान की उपेक्षा होती है, जहाँ कलावन्तों को हीनता से देखा जाता हो। विजेन्द्र जीवित धर्म के अनुकरणकर्ता हैं। वे उस धर्म की निन्दा करते हैं जो खाने और कमाने का कोरा साधन हो। उनका कहना है –

'धर्म भी खरा सिक्का है
खाने कमाने का
ढोंग, आडम्बर, झूठ, फरेब
कण्ठाभरण हैं दुनिया के।'[34]

कवि ने कविता में मिट्ठन के नगाड़े की धौंस के माध्यम से प्रतिरोध करने के अवसर को पैदा करने की जरूरत को अभिव्यक्त किया है। हमें पाखंड को खंड – खंड करना है। दुर्भावनाओं का दूर करना है। कविता या कला के माध्यम से यह किया जा सकता है –

'जब लगता है धौंसा मिट्ठन का
नहर का काला जल हिलता है
पके पत्ते गिरते हैं
हवा से टूटकर
नगाड़े की ध्वनि से उत्पन्न थरथराहट से
जागता है मन भीतर का
सोया मन।'[35]

5.3.5. श्रम की प्रतिष्ठा

श्रम जीवन का सौन्दर्य है। श्रम शिल्प का प्राण है। श्रम से निर्मित कोई भी वस्तु या वास्तु निरर्थक नहीं है। मनुष्य इस सुंदरता का भोजक है। 'उठे गूमड़े नीले' कविता संग्रह की पहली कविता

'टूटती हैं ढाएँ' में विजेन्द्र ने धमनभट्टी पर काम करने वाले मजदूर का चित्रण कर स्पष्ट चित्रित किया है, कि दुनिया को मेहनतकश मनुज अपने बल से सौन्दर्यवान बनाता है। वह धमनभट्टी में स्वयं को तपाकर इस दुनिया के सौन्दर्य का निर्माण करने वाला चितेरा है। उसकी शक्ल पूँजीवाद के आरोपित अँधेरे में दिखाई नहीं देती। यह श्रम जब दुनिया को सुंदर बनाने के लिए अपने आप को तैयार कर लेता है, तो प्रेरणास्रोत रूप में प्रवाहित होता है –

'श्रम ही है क्रिया सौन्दर्य की
सर्वोच्च नैतिक बल कवि का
प्रेरित करती जीवनेच्छायें
रचने को
एक उन्नत ....बेहतर मनुष्य
एक बहुत सुंदर दुनिया।'[36]

कवि मेहनतकश लोगों के जीवन संघर्ष को देखकर यह विचार करता है, कि जो दुनिया को इतना सुंदर बनाने में अपने संपूर्ण जीवन को समर्पित कर देते हैं, उन लोगों के श्रम के प्रति किसी की भी संवेदना नहीं है। पूँजीवादी प्रभाव में आकर हम श्रमिकों और कलाकारों के श्रम की उपेक्षा करते देखे जाते हैं। कवि कहता है–

'ओ कवि तुम समझो
जिन्होंने किया है अपना खून पसीना एक
संगमरमर तराशने में
क्या उनका नाम नहीं खुदेगा उन पर।'[37]

विजेन्द्र के मन में यह सवाल हमेशा रहा है, कि जो लोग दिन रात एक करके अपने परिश्रम से इस समाज को सौन्दर्यवान बनाते है उन्हें क्यों कर्महीन कहा जाता है?

'नहीं रहा विश्वास हाथ पर
करते रहे काम अथक जो
कर्महीन कहलाए.... ।'[38]

विजेन्द्र आज के रचनाकारों द्वारा इन श्रमिकों को अनदेखी को अनुभूत कर खिन्न होते हैं। वे इस बात का बडा दुख अनुभव करते हैं, कि जिन मजदूरों, श्रमिकों और किसानों की बदौलत हम

अपना जीवन सरल और सुविधासंपन्न तरीके से जीते हैं उनकी तरफ हम ध्यान भी नहीं देते हैं। किसी महल की तारीफ करते समय भी केवल महल के मालिक की प्रशंसा में कसीदे पढ़ते हैं, पर उसके निर्माण में लगे श्रम की अनदेखी करते हैं। कवि कहता है–

'श्रम से ही रचे जाते सुंदर मेहराब
गोल चिकने स्तंभ
सुंदर खिडकियाँ
सुविधाजनक दरवाजे
जीवन के विविध पुष्प......
सुनो कवि, वे आवाजे भी सुनो।'[39]

विजेन्द्र अपनी कविता में इन श्रमिकों के अथक परिश्रम को चित्रित करना चाहते हैं। वे कविता के केन्द्र में दलित और शोषित के साथ श्रमिक और किसान को स्थान देना चाहते हैं। वे उन लोगों का प्रतिनिधि कवि बनने की चाह रखते हैं, जिनके श्रम से पूरी दुनिया अपने जीवन को सुखी और सुविधासम्पन्न बना रही है –

'मैं चाहता हूँ कविता बने
किसान का हल फाल
राज की कन्नी वसूली
लुहार का घन।'[40]

कवि उन विशाल भवनों और अट्टालिकाओं के निर्माण में दिन रात खपने वाले मजदूरों के प्रति संवेदनशील है। उसकी दृष्टि कंगूरे पर नहीं नींव पर है। वह उन लोगों का समर्थक है जो लोक के जुड़ाव को महसूस करते हैं। कवि कहता है इसे देखने के लिए हिये की आँख का होना आवश्यक है–

'हिये की आँख ही देख पाती है
पृथ्वी गंध को
जल की तरलता को
अग्नि के तेज पुंज
आकाश में ध्वनित रसमय शब्द को।'[41]

विजेन्द्र उन कवियों को इस श्रम की महत्ता बताना चाहते हैं, जो सुंदर मेहराबों पर कविता लिखते हैं, पर उनकी रचना करने वालों के लिए उनकी लेखनी मौन है। कवि इस मौन को तोड़ना चाहता है। वह श्रम को सिरमौर बना देने के लिए आतुर है। वह पसीना पौंछते श्रमिकों के चित्र कविता में अंकित करना चाहता है। वह उन कवियों का आमंत्रण देता है, जो लोक को सतही तौर पर देखकर उसे मनोरंजन का साधन मानकर कविता कर अपने कवि कर्म की इतिश्री कर लेते हैं–

'ओ कवि आओ मेरा साथ दो
बोलो मेरे साथ
फिर आओ एक बार छोड़कर राजपथ
राजभवन, स्वर्ण मुद्राओं के उपहार, हार
देखो यहाँ किसान की पीठ को तपते
श्रमियों को पौंछते माथे से पसीना।'[42]

कवि यहाँ अपनी कविता के विस्तार में यह कहना चाहता है, कि किस प्रकार आधुनिक और सभ्य कहे जानी वाली इस दुनिया के निर्माण में उत्पादक वर्ग अपना योगदान देता है। यह दुनिया मनुष्य की बुद्धि और श्रम के मेल से ही खड़ी हो सकती है। यह एक 'नई अधिरचना' है जिसका निर्माण 'फौलादी चोट' के बिना संभव नहीं है। 'टूटती है ढाएँ' नामक कविता में विजेन्द्र कारखाने में काम करने वाले श्रमिकों के काम करने के दौरान होने वाली आवाजों को ध्यानपूर्वक सुनते हैं। वे इसे अनसुना करने वाले को अन्यायी कहते है। इस कविता में कवि संरचना के उस विज्ञान का परिचय देते हैं जो कठोर धातुओं से जन्मता है। यह उस विश्व की कविता है, जो द्रव और ऊर्जा से बनती है। इसका नियंता कोई ईश्वर या अदृश्य शक्ति नहीं, वरन् वह मनुष्य है जो खनिज को इस्पात में ढालता है, वह उत्पादक वर्ग है, जो रात दिन खुदाई कर खनिज निकालता है। विजेन्द्र इन श्रमिकों की एकता चाहते हैं, वे इन्हें संगठित होकर नई मुक्ति और नई अधिरचना से युक्त देखना चाहते है –

'अधिरचना से बदलता
सौन्दर्य बोध।
नक्श।
रेखाएँ।

वर्ण।

आकृतियाँ।

ढलता है रचना का बाह्यान्तरंग।'[43]

इस प्रकार विजेन्द्र की कविता उस मनुष्य को समर्पित है जो अपने श्रम से दुनिया को सुंदर बनाने में जुटा है।

5.3.6. स्त्री विमर्श और समकालीनता

स्त्री मानव समाज के विकास की धुरी है। भारत में शास्त्र एवं पुराणों में स्त्री को देवी, पूज्या, मातृस्वरूपा आदि संबोधन देकर सम्मान दिया गया है। पर उसी भारत में युगों – युगों से स्त्री की दुर्दशा देखी जा सकती है। भारतीय समाज में उसे दूसरे पायदान पर खडा किया गया। दोयम दर्जा स्त्री की नियति हो गया। उसे सदैव परमुखापेक्षी बनाने का प्रयास किया गया। समकालीन कविता स्त्री की स्वतंत्रता, समानता और सामाजिकता के संपूर्ण अधिकार देने के पक्ष में है। कारण यह है, कि नारी भी समाज की एक शोषित इकाई है। उसे आज तक उपेक्षित रखा गया है। उसके जीवन जीने के सभी अधिकार छीने गए। कभी धर्म के नाम पर, कभी समाज के नाम पर, तो कभी परिवार और मर्यादा के नाम पर। स्त्री ने पुरूष, परिवार, और समाज के विकास में बराबरी से अपना योगदान दिया, परंतु उसे कमजोर मानकर हाशिये पर रखा गया। उसके श्रम का मूल्यांकन आज भी साहित्य में पूरी तरह से नहीं हो सका है। विजेन्द्र अपनी कविताओं में इसी बेबस नारी के अनेक चित्र खींचते है। उनके मन में सवाल उठता है कि अत्यन्त श्रमशील और सामाजिक होने के बावजूद क्या कारण है कि स्त्री को ही बहुत कुछ सुनना पडता है? भारतीय समाज के इस अजब गजब स्थिति को 'दादी माई' कविता के माध्यम से वे अभिव्यक्त करते हैं –

'अजब खेल है बाबू जी

इस दुनिया का

कोई समझ नहीं पाया अब तक

माया इसकी

जात स्त्री की पिटती कुटती है।'[44]

स्त्री के प्रति आये दिन होने वाले दुर्व्यवहारों से समाचार पत्र अटे पड़े हैं। ग्रामीण क्षेत्रों की बात ही क्या जब शिक्षित और शहरी वातावरण में भी स्त्री सुरक्षित नहीं है। कामकाजी महिलाओं के साथ भी उनके कार्यालयों में इस दुर्व्यवहार के बारे में पढ़ा और सुना जाता है। विजेन्द्र ने अनुभव किया कि पुरूष मानसिकता में जब तक स्त्री को सम्मान की नजर से नहीं देखा जाएगा, तब तक स्त्री को पूज्या कहना केवल ढोंग और पाखंड के अतिरिक्त कुछ भी नहीं होगा। दादी कहती है–

'धना धोरी नहीं है कोई उसका
सुहागिन हो चाहे विधवा
या आधे दर्जन बच्चों की माँ
हाट मुहल्ला देखा करते हैं सब
बुरी निगाह से।'[45]

आधी सदी कविता में कवि ने स्त्री की सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति पर भी चिन्तन करते हुए लिखा है कि आज भी समाज में यदि कोई स्त्री निःसन्तान अथवा विधवा हो तो अनुष्ठान या पूजा इत्यादि में उसकी उपस्थिति अशुभ मानी जाती है। कवि ने ऐसा व्यवहार करने और करवाने वालों को विवेकशत्रु कहा है। कवि प्रश्न करता है कि निस्सन्तान और विधुर पुरूष के साथ ऐसा व्यवहार क्यों नहीं होता? सारा दोष स्त्री का ही क्यों?

'बाँझ स्त्रियों को समाज समझता
नेठ की मारी ।
सब करते हैं परहेज उत्सव में
अनुष्ठान कार्यो में नहीं छुआते कुछ भी
कैसा समाज है पिछड़ा, मरियल
इसमें सहना है केवल स्त्री को
बच्चे के जनम हुये को
स्त्री ही क्यों दोषी।'[46]

आज आदमी झूठे धर्म का उपासक है। देवी मंदिर जाता है। वैष्णों देवी मंदिर में मनौती माँगता है। कन्या पूजन करता है। शायद मातारानी उसके मनोरथ भी पूरे करती हों, परंतु अपने घर में लड़की का होना उसे खलता है। उसके सच्चे भक्त होने पर विजेन्द्र को संदेह है। देश में बढ़ते लिंगानुपात के लिए कौन जिम्मेदार है? यह प्रश्न विजेन्द्र को बेचैन करता है। ऐसे कौनसे कारण है जिसके चलते स्त्री को कोख में मार देने में उसे जरा भी हृदय विदीर्णता का अनुभव नहीं होता–

'अंकुरित कन्याओं को
हम बने पिशाच
रेते हैं गले अबोध बच्चों के
अँधेरा चीखा देखकर भ्रूण हत्याएँ।'[47]

इस प्रकार विजेन्द्र ने स्त्री जाति की विवशता और सामाजिक स्तर को चित्रित कर उसकी संवेदना को कविता में निरूपित किया है। कवि एक सजग कवि कर्म का निर्वाह कर स्त्री को मुक्त स्रोतस्विनी के रूप में देखना चाहता है जो सृजन का स्रोत बने।

5.3.7. जनशक्ति की आवश्यकता पर बल

विजेन्द्र जानते हैं कि शोषण का कारण अशिक्षा, और शोषित लोगों का असंगठित होना है। भारत की गुलामी का कारण संगठित नहीं होना था। आजादी के दीवानों ने संगठन की ताकत को पहचाना और भेद करने वाले सभी कारकों को उखाड़कर जन को जन से जोड़ा तब जाकर हम आजाद भारत का सपना देख पाये, परंतु आज भी शोषण और दमन का रोग हमारा पीछा नहीं छोड़ता है। केवल इनका स्वरूप बदला है। आज देश में पूँजीवादी ताकतें गरीब का शोषण करने में लगी हैं। सूदखोर, व्यापारी, जमींदार, और यहाँ तक कि उच्च शिक्षा प्राप्त अधिकारी भी गरीब और किसान का हिमायती नहीं है। आम जन इस भ्रष्टाचार से त्रस्त है। इसे समूल नष्ट करने के लिए जन को एक होना होगा। जनशक्ति का आह्वान करना होगा। जनशक्ति की ताकत से जन को परिचित कराना होगा। विजेन्द्र किसानों की सभा नामक कविता में कहते हैं–

'संगठन ही आज की कविता का प्राण है
उभरती जनशक्ति उसकी जैविक लय।'[48]

पूरी दुनिया में पूँजी का बोलबाला है। साम्राज्यवादी ताकत उदार व्यापार के नाम पर गरीबों के हितों को रौंद रहीं है। मॉल संस्कृति ने दुनिया भर में पैर पसार रखा है–

'उदार आर्थिकी मधुमेह रोग है
हड्डियों को गलाता मन्द मन्द।'[49]

कवि आमजन को संगठित होने का आह्वान करता है। उसका मानना है कि एक बार फिर हमें आजादी के लिए लड़ना होगा। यह आजादी पूँजीवाद से होगी। यह आजादी आमजन के हित और किसान और मजदूर के भविष्य के लिए होगी। देश में फैली इस पूँजीवादी मानसिकता को बदलना होगा। अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना होगा। एकजुट होकर ही हम इस बड़ी लड़ाई को लड़ पाने में सक्षम हो सकते हैं।

'संगठन से ही सत्ता हिलती है
इसी अस्त्र से मिलता है अधिकार भी
सबसे बड़ा अस्त्र है लड़ाकू जनता की ताकत।'[50]

कवि प्रतिरोध के लिए सर्वहारा को एकजुट होने की अपील करता है। सर्वहारा को पूँजीवादी मानसिकता वाले लोगों ने कभी भी एक नहीं होने दिया। सर्वहारा जन को इसके मर्म पर प्रहार करना होगा, तभी वह इस धरा पर अपने को विकसित कर पायेगा। विजेन्द्र कहते हैं–

'आदमखोर दैत्य अभी जीवित है
उसे नाथने का बल्लम है
सर्वहारा की शक्ति अदम्य
उठो और जागो
डालों उसके नथौरों में भारी कड़ा।'[51]

कवि 'लोग भूले नहीं हैं' कविता के पात्र कानसिंह के माध्यम सभी दलितों और पिछड़ों को एकजुट होकर पूँजीवादियों से लोहा लेने के लिए संगठित रहने को कहता है। वह हिम्मत बँधाता हुआ सर्वहारा को सम्बोधित करता है –

'दबे पिचे सब जागेंगे
तभी टूट पाएगा
यह सड़ा गला ठठ्ठर दुनिया का
जब तक नहीं करोगे हिम्मत
कैसे पता चलेगा गुण
गुनिया का।'[52]

कानसिंह उस श्रमिक चेतना का संवाहक है, जो संगठन की ताकत को जानता है। वह कहार, काछी, धीमर, मछुआरे, मेव, घोसी, लुहार, नुनहरे, हरिजन, गादी, मल्लाह, बुनकर, अहीर, गूजर ,मीणा, सिलहारे आदि सभी निम्न और दोयम समझे जाने वाले लोगों को संगठित करता है। कवि इसे 'जनशक्ति का उदय' मानते हैं। कानसिंह कहता है, यदि इन पूँजीवादी और साम्राज्यवादी मानसिकता के लोगों का समय पर विरोध नहीं किया जायेगा, तो ये इसी प्रकार शोषण करते रहेंगे–

'गाँधी नेहरू के भारत में
ऐसे कब तक दबे रहेगें
नहीं किया विरोध यदि इनका
ऐसे ही खून पियेगें।'[53]

5.4. समकालीनता की दृष्टि से लंबी कविताओं में शिल्प संयोजन तथा स्थापत्य

साहित्य विधा में कथ्य, कवि या लेखक की अपनी वह संवेदना होती है, जो उसे किसी घटना या संदर्भ से प्राप्त हुई हो। संवेदना का यह गृहीत रूप साहित्यकार की बेचैनी बढ़ाता है, और इसे वह अपनी रचना के बहाने पाठकों तक पहुँचाता है। चूंकि विजेन्द्र कवि हैं, और कविता के

संदर्भ में हमें कहना होगा, कि जब कवि अपने अनुभवजन्य संवेदनात्मक ज्ञान को अपने पाठकों के साथ साझा करना चाहता है, तो कभी – कभी इस प्रक्रिया में कवि को एक लंबी काव्य यात्रा करनी पड़ती है, फलस्वरूप कविता लंबी हो जाती है। इस बिन्दु के अन्तर्गत हम विजेन्द्र की लंबी कविताओं में निहित शिल्प संयोजन एवं स्थापनाओं का अध्ययन और विवेचन करेंगे।

'उठे गूमड़े नीले' कविता संग्रह की पहली कविता 'टूटती हैं ढाएँ' में विजेन्द्र ने स्पष्ट मान्यता के साथ यह स्थापना की है, कि दुनिया को मनुष्य ने ही सुंदर बनाया है। वह मनुष्य और कोई नहीं, वह मजदूर है, वह श्रमिक है, जो धमन भट्टी में इस्पात ढालता है और उसकी शक्ल पूँजीवाद के आरोपित अँधेरे में दिखाई नहीं देती। लेकिन वह उस अँधेरे में भी झाऊ की जड़ों के समान धरती में गहरे तक जुड़ा है मशीनों के साथ वह नई रचना कर रहा है –

'रात दिन,
अग्निचक्र, दाँतदार पहिए
पता लगता है
मनुष्य की शक्ति का
जब कटतें हैं गाटर
नबती हैं छड़ें
बनकर निकलती
बडी बडी स्पाती चादरें
काँटेदार तार
रेल के डिब्बे, पटरियाँ – फिश प्लेटें।'[54]

कवि यहाँ अपनी कविता के विस्तार में यह कहना चाहता है, कि किस प्रकार आधुनिक और सभ्य कहे जानी वाली इस दुनिया के निर्माण में उत्पादक वर्ग अपना योगदान देता है। यह दुनिया उच्च शिक्षित मनुष्य की बुद्धि और श्रम के मेल से ही खड़ी हो सकती है। यह एक **'नई अधिरचना'** है, जिसका निर्माण 'श्रम' के बिना संभव नहीं है।

विजेन्द्र कविता के आरंभ में अंधकार और स्तब्धता के बीच उस 'दहल' को रेखांकित करते हैं जो वस्तुतः पहियों के ढलने की आवाज है। एक ऐसी आवाज जिसे अनसुना करना कवि कर्म के साथ अन्याय करना है। इस कविता में कवि संरचना के उस विज्ञान का परिचय देते हैं जो कठोर धातुओं से जन्मता है। यह उस विश्व की कविता है जो द्रव और ऊर्जा से बनती है। इसका

नियंता कोई अदृश्य शक्ति नहीं, वरन् वह मनुष्य है जो खनिज को इस्पात में ढालता है, वह उत्पादक वर्ग है, जो रात दिन खुदाई कर खनिज निकालता है। विजेन्द्र इन श्रमिकों की एकता चाहते है। वे इन्हें संगठित होकर नई मुक्ति और नई अधिरचना से युक्त देखना चाहते हैं –

'अधिरचना से बदलता
सौन्दर्य बोध।
नक्श।
रेखाएँ।
वर्ण।
आकृतियाँ।
ढलता है रचना का बाह्यान्तरंग।'[55]

उठे गूमडे नीले' कविता कवि की दार्शनिक धरातल पर **नए सौन्दर्यशास्त्र** की रचना करने वाली कविता है। इसमें जीवन की पहचान विपुल, विरल, अथाह और कठोर जैसे विशेषणों के साथ संश्लिष्ट रूप में की गई है। विजेन्द्र कविता के आरंभ में कहते हैं– 'अग्निदाह के भीतर भी चलती हैं क्रियाएँ'। कविता में आगे विजेन्द्र ने लिखा है –

'रोज रोज उगती हैं
नयी पत्तियाँ
छुपे
छुपे अनदेखे
अनजाने
बिन पानी
बिन खाद
बढ जाते हैं टहनी के ओर छोर
झेल – झेल कर झल्ल आँच की
हरियाती है
फुनगें ....
गति से कंप जनमता है
अंदर ही अंदर

उन खंकड ढीमों के
बनता है कोयला
मणियों का सरताज
चमकता हीरा
वेगमय
जीवन।'[56]

सृजन की इस नित्यता को कवि अपनी कविता की रचनाशीलता से जोड़ता है। कवि के अनुसार सृजन सृष्टि की हर इकाई का जीवन धर्म है। वह अच्छा, बुरा, विशिष्ट, साधारण जो कुछ भी हो यह सब मानव धर्म के अंतर्गत आता है। जड़सूत्रवाद के सहारे उसे सटीक समझने का दावा करना मूर्खता है। एक रचनाकार को बहुत कुछ अपनी ज्ञानात्मक संवेदना के भीतर अर्जित करना पड़ता है। स्वयं भाषा भी अर्जित की जाती है, जीवनव्यापी संघर्षों के बल पर। पर कवि के संस्कार अचानक नहीं बदल सकते। उसके संस्कारों का निर्माण जिन कई तत्त्वों से होता है। उनमें एक है पुराण गाथाएँ – शेषफण, कामधेनु, पारिजात, कल्पवृक्ष, नन्दन वन, देवी–देवता, समुद्र मंथन, चौदह रत्न – इनकी कविताएँ सुनकर जिस व्यक्ति का निर्माण होता है वह जल्दी से अलीकपंथी नहीं हो सकता। वह अनेक अंधविश्वासों से जुड़ जाता है। 'यह भी लिखा बदा है', युगों से ऐसा ही होता आया है'। ये बाते वैज्ञानिक चेतना के मार्ग में अड़चन है। लेकिन प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण विकास – प्रक्रिया की वैज्ञानिकता को अमूर्त नहीं रहने देता। मनुष्य का श्रम ही सौन्दर्य का मूल है।

'मेरा भरोसा
बहुत – बहुत दबा के भी
डिगा नहीं पाया कोई
जिसे आज तक
उसको उसके
पथ से
और उसी ने
काट काट के
भरा है लॉक भुजाओं में

पाँव से रौंद बनाया गारा
हर बार हर बार
रचा है
उसने शिल्प
सौन्दर्य।'[57]

विजेन्द्र की कविता उस मनुष्य को समर्पित है जो अपने श्रम से दुनिया को सुंदर बनाने में जुटा है। पर कवि यह भी कह देना चाहता है, कि वे लोग जो सौन्दर्य की परिभाषा सुंदरता को देखकर देते हैं, वे सतही परिभाषक हैं। असल सौन्दर्य तो उन हाथों में है, जो गजरे बनाते है पर उसकी खूशबू नहीं ले पाते। **कविता और कला बाजारवाद की वस्तुएँ** नहीं हैं । विजेन्द्र लिखते हैं –

'कलाकृतियाँ बिकती हैं सस्ती
चाँदनी चौक
चौरन्गी
म्लाड में
खड़े देखते विक्रेता
कवि
आलोचक धनी
लगी भीड़ सागर तट पे
देख रही है
छिपता सूरज
जल में
आदमी की शक्ल हो रही धुँधली
मैली
अमूर्त।'[58]

कवि की चिन्ता है कि भूमंडलीकरण की अंधी दौड़ में **मनुष्यता** धुँधली होती जा रही है। पर कवि देख रहा है कुछ परिवर्तन नित्य प्रकृति और विश्व जीवन में हो रहा है। पुरानी दुनिया खत्म हो रही है। नयी दुनिया उसकी जगह ले रही है। विजेन्द्र इस नई दुनिया का भूगोल गहरी आत्मीयता से अपनी लंबी कविताओं में रचते हैं। इन कविताओं में पुरानी मान्यताप्राप्त सुविधासंपन्नों

के बेदखल होते जाने का दृश्य जगह जगह आकर्षक है। वह चाहे 'कुकुर भाँगरा' हो अथवा 'धरती कामधेनु से प्यारी' का 'मुर्दा सीने वाला' हो – सभी वास्तविक दुनिया में अपनी प्रतिष्ठा के लिए संघर्षरत शताब्दियों से उपेक्षित समाज को प्रतिरूपित करते हैं। इनकी केंद्रीयता से **समकालीन कला मूल्य की अवधारणा** बनती है। पुरातनपंथी इन्हें स्वीकार नहीं करना चाहते। महाप्राण निराला ने भी 'कुकुरमुत्ता' की रचना की थी, लेकिन 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' के प्रबंध विधान के सामने उसे मान्यता नहीं मिली। अकादमिक बहसों में 'शक्तिपूजा' की श्रेष्ठता कायम रही। विजेन्द्र 'कुकुरमुत्ता' के कला मूल्य को अपनी गहरी सूझ बूझ से एक सुसंगत सांस्कृतिक परंपरा में ढालते हैं। इसके पीछे भी उनकी सौन्दर्य दृष्टि सक्रिय है – वही सौन्दर्य दृष्टि जो श्रम और संघर्ष के साथ लगी चलती है। 'खड़ा मेड़ पर कुकुर भाँगरा' कविता में 'कुकुरभाँगरा' की स्थिति लगभग वही है, जो निराला के 'कुकुरमुत्ता' की। कुकुर भाँगरा की आपबीती में उत्पादन के कार्य में लगे लोगों की नियति से साक्षात्कार है –

'बार बार उखाड़ देता है
जड से भू स्वामी
उगि आता है
निर्लज्ज
फिर भी
वह।'[59]

प्रसिद्ध साहित्यकार हजारी प्रसाद द्विवेदी का 'कुटज' और 'शिरीष के फूल' इस समय अनायास याद आ जाते हैं। द्विवेदी जी के 'कुटज' में जो जिजीविषा है वही कुकुरभाँगरा में नजर आ जाती है। विजेन्द्र इसे अच्छी धरती का 'श्याम सलोना बालक' कहते हैं। नए लोकतांत्रिक जीवन मूल्यों को मन से जिन्होने स्वीकार नहीं किया, वे या तो गेहूँ की बात करते हैं या गुलाब की। उनकी नजर में कुकुर भाँगरा अपनी संस्कृति का कूड़ा – करकट है। उसके छूने से उनकी खाल गंदी होती है। फूलों की क्यारी में उससे उन्हें बू आती है। उन्हें लगता है –

'रौनक गई बाग की
आँखों में छिदता है
इसका बढ़ना ऊपर।'[60]

विजेन्द्र प्राकारांतर से नए लोकतांत्रिक समाज में रचनाकारों की छद्‌म प्रगतिशीलता को भी बेनकाब करते है। इसमें अज्ञात कुलशील प्रतिभाओं को भी प्रतिरूपित करता है 'कुकुरभाँगरा'। आज भी उन कुलीनों की कमी नहीं है, जो रचनाशीलता के नवीन दृश्यों को फूटी आँख देखना नहीं चाहते। यहाँ तक कि वे इस सच को भी नहीं स्वीकारते, कि वे ध्वस्त हो रहे हैं।

विजेन्द्र **परिवर्तनात्मक सृजन को कविता के लिए आवश्यक** मानते हैं। उनके अनुसार श्रेष्ठ कविता सदैव यथास्थिति को भंग कर एक नयी दिशा का संकेत करती है। ऐसा करना उसकी जीवंतता की निशानी है, और ऐसी कविता हमारी भाव दशा को बदलने का कार्य करती है। विजेन्द्र की 'जनशक्ति' कविता इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। कवि जनशक्ति को संगठित कर पूँजीकेंद्रित व्यवस्था को तोड़ना चाहता है। इसी व्यवस्था को खंडित करना चाहता है –

'तू ही हँसिया क्यों न ले
और काट......
उसी से यह आवाज उपजती है
इन कहने सुनने वाली बातों से
चट्‌टाने नहीं पिघलेंगी।'[61]

डॉ. जीवनसिंह के अनुसार 'जनशक्ति' कविता संग्रह की कविताओं में विजेन्द्र ने जिस परिवेश को देखा है, साक्षात किया है, उसी की चीजों ,परिदृश्यों, आचार – व्यवहारों, क्रियाकलापों, प्रकृति और विचारों ने इसका पुनःसृजन किया है।'[62]

विजेन्द्र ने देखा, और जाना कि मेहनतकश किसान और श्रमिकों का हौंसला कभी पस्त नहीं होता। ये लोग राष्ट्र को समृद्ध करते हैं, धरती को उर्वर बनाते हैं चट्‌टानों से कोयला, हीरा और सोना तक निकालते हैं, परंतु पूँजीवादी लोग इनके असंगठित होने का फायदा उठाकर इनका शोषण करते हैं। यदि ये किसान और श्रमिक संगठित हो जाए तो इन्हें कोई भी चुनौती नहीं दे सकता। ये संगठित होकर इस शोषण की व्यवस्था से मुक्त हो सकते हैं। कवि इससे आगे भी कहता है कि **समतामूलक समाज के गठन और आत्मनिर्भरता के लक्ष्य को पूरा करने के लिए जनशक्ति का आह्वान आवश्यक है।**

जनशक्ति कविता संग्रह की कविता 'मैग्मा' अपने आप में **नये विषय वस्तु का पुनःसृजन** है। 'मैग्मा' भूगर्भ में घटित रासायनिक क्रियाओं के फलस्वरूप चट्‌टानों के पिघलने से रिसा हुआ

गाढ़ा द्रव पदार्थ है। ठीक उसी तरह प्रत्यक्ष तथा परोक्ष जगत् के व्यापक संज्ञान से निर्मित इस बड़े कवि की चेतना। कवि आरंभ में ही कहता है 'मैग्मा से ही बना है, मेरी आत्मा का स्थापत्य'। विजेन्द्र गंगा के खादर से लेकर मरूस्थल तक जीवन को देखते हैं। लुप्त हुई नदियों के उद्गम, सूखे झरनों के चट्टानी स्रोत, क्षय होते मनुष्यों की पीडाएँ, लहरदार टीलों में छिपी रेगिस्तानी लोगों के जीवन की कठोरताएँ, लड़ते आदमी का समर तथा कवि का अपना परिवेश, उसके मन के अँधेरे कोनों में रोशनी देते हैं। यही उसकी कविता का जातीय वेश है। उसके जीवन का कल्पतरू इसी चट्टानी अतीत से फूला फला है। कवि को पता है, कि आदमी अपनी नियति को बदलेगा। सृजन और विनाश दोनों को एक साथ देखने वाले कवि को नए – नए रूपाकार रचने को उठे महाबली हाथ प्रेरित करते हैं।

कवि नए सौन्दर्यबोध का रचयिता है ऐसा करने के लिए उसनें अनेक बंधों को त्यागा है। अपनी व्यापक अंतर्दृष्टि से वह खदानों की उभरी पसलियों को देखता है। वह धरती की अँतडियों तक पहुँचना चाहता है वह महसूस करता है –

'मेरे भीतर भी सोए हैं ज्वालामुखी अशेष
जैसे पृथ्वी के गर्भ में है
लावा, द्रव, गाढ़ा, ठोस
जो बेचैन है
बाहर आने को......।'[63]

कवि जानता है कि 'मैग्मा' का ताप बढ़ रहा है। अन्दर की आग अभी तक नहीं बुझी है। तभी तो धरातल फोड़कर निकलता है, सुर्ख कल्ला बीज का। विजेन्द्र की यह कविता वही जैविक मैग्मा है। आदमी की हर साँस, धडकनों का कम्प – प्रकम्प, रोयों का उजासित स्फुरण, उसकी नम आह तथा उसमें बसा ताप, लपटों की वर्षा से। इस लड़ाई में कवि के अग्रज और सहोदर भी साथ नहीं है। लेकिन वे उन शब्दों के द्वारा अपनी उस चेतना को जिंदा रखने में काबिल हुए है जो गहरे तक देखने की ताकत रखते हैं –

'मैग्मा की नसें फैली हैं अन्दर – अन्दर
बाहरी और भीतरी चट्टानों के रिश्ते
जानने को ही ।
मैंने भूगर्भ पथ चुना है

धरती की कमजोर परतों को तोड़कर ही
वह चट्टानों को उगाता है।'[64]

'मैग्मा' कविता की विषय वस्तु मैग्मा, कवि विजेन्द्र की सूक्ष्म वैज्ञानिक विश्वदृष्टि का अपूर्व शोध है, और जनपक्षधर कविता का उत्स भी। यहाँ सिर्फ विचार ही नहीं, बल्कि कवि के अद्भुत काव्य कौशल द्वारा कविता के नए सौन्दर्यबोध तथा आधुनिक प्रतिमानों की अपूर्व सृष्टि हुई है।

'कठफूला बाँस' कविता संग्रह की कविता 'संवाद स्वयं से' में कवि अपने परिवेश, साधन और **कवि कर्म** का अत्यंत सूक्ष्मता के साथ निरीक्षण करता है। कविता की रचना प्रक्रिया, सही और गलत के अंतर को जानने की तीक्ष्ण बुद्धि, लोक में फैले विश्वास और अंधविश्वास की प्रकृति, नए रचना विधान, लोक का सौन्दर्य, और श्रम की प्रतिष्ठा में अपनी इस कविता का सृजन करता है। कवि कविता के लिए 'पहले देखता हूँ..... सुनता हूँ/ फिर छूता हूँ जानने को' की प्रक्रिया को अपनाता है। मनुष्य और उसके महत्त्व का आकलन करता है –

'गाय के सींग पर नहीं
धरती घूमती है अपनी ही धुरी पर
उन्हें अंध कोठरियों से बाहर निकालो
जिससे वे देख सकें।'[65]

कवि का मानना है कि सच्चा सौन्दर्य श्रम में निहित है, जब एक सुंदर दुनिया की कामना का भाव जन्म लेता है, तो उसकी संरचना के लिए श्रम अनिवार्य हो जाता है। श्रम सदैव प्रेरणा का स्रोत है –

'श्रम ही है क्रिया सौन्दर्य की
सर्वोच्च नैतिक बल कवि का
प्रेरित करती जीवनेच्छायें
रचने को
एक उन्नत......... बेहतर मनुष्य
एक बहुत सुंदर दुनिया।'[66]

परंतु कवि अपनी उम्मीदों को पूरा होता नहीं देखकर खिन्न होता है, वह क्षरित होती मनुष्यता को देखकर चिंतित है और अपने आप से संवाद करते हुए अपनी बात पूरी करता है –

'उम्मीदें अब छीजतीं हैं
इरादों में जमते देख रहा हूँ काई
कब तक करता रहूँ संवाद स्वयं से।'[67]

विजेन्द्र की कविता 'कौतूहल' **पदार्थ के निर्माण के साथ जीवन निर्माण**, गति, कार्यशैली आदि का सूक्ष्म अध्ययन है। कवि कहता है कि प्रत्येक पदार्थ अपने दूसरे पदार्थ से जुड़ा है । प्रत्येक पदार्थ की अपनी गतिकी है जिसका निर्वाह वह स्वतः करता है –

'घटक हैं बहुत सारे द्रव्य के
जुड़ता है एक धातुक घटक दूजे से तीजे से
मनुष्य का चित्त मनुष्य से
रिक्त ही जोड़ता है उन्हें दिक् से
काल से, विमा से, मुझ से
चाहिये हर तृण को दिक्काल खड़े होने को
नई उर्वरा
नये बीज बोने को।'[68]

कवि प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में जीवन देखता है। वह सृष्टि के अन्दर गुंथी बिंधी हर रचना को उसके क्रियाशील गतिमान को और उसको भी जिसे कोरी आँख से नहीं देखा जा सकता है। कवि उस ऊर्जापुंज को भी देखता है जो आँखो से नहीं दिखाई देने पर भी अत्यंत ताकतवर होता है, विस्मयकारी होता है।

कवि प्रत्येक रचना से पूर्व उसके **सतत् अभ्यास और उसकी वस्तुपरक जानकारी** का होना आवश्यक मानता है। साधना तप है, कविता साधना है, और उसे तपकर ही साधा जा सकता है। इसके लिए जलना होता है ठीक उसी तरह जिस तरह आग में सोना तपकर कंचन बनता है और कच्ची मिट्टी सुर्ख ईंट –

'दहन की प्रक्रिया है हर जगह
सतत, अविराम........ अविरल
तपकर ही होती है
आत्मा पवित्र

स्वर्ण होता है कंचन
कच्ची मिट्‌टी बनती है सुर्ख ईंट।'[69]

विजेन्द्र के अनुसार रचना की प्रक्रिया को जानने के लिए हमें उसके अन्दर तक उतरना होगा। उसकी लौ को पहचानना होगा। उसके भावों से तादात्म्य स्थापित करना होगा। रसायन की क्रियाओं को सूक्ष्मता के साथ देखना होगा –

'नमक भोजन का स्वाद सार है
कहते है कोविद जिसे सोडियम क्लोराइड
कैसे जान सकोगे पथर पूजन से
परमाणुओं के बीच जुडा गठबंधन
कैसे कर पाओगे बिना दीठ
संश्लिष्ट यौगिक।'[70]

कवि इस संदर्भ में इतना ही कहना चाहता है कि **वही कवि स्थापित हो सकेगा जो लोक से जुडा** है। बिना लोक को जाने समझे जो कविता रचता है उसकी रचना पूर्ण नहीं हो सकती है–

'डूबेगा वही गहरे जल में
आता नहीं है तैरना जिसे
साध सकता नहीं जो
अपने घनत्व को।'[71]

इसी तरह विजेन्द्र की एक लंबी कविता 'प्लाज्मा' है। प्लाज्मा क्या होता है इसका जवाब वे यह देते हैं कि प्लाज्मा भौतिकी और जैविकी दोनों में होता है। दोनों रूपों में द्वंद्वात्मकता से ही जीवन जगत् बना है। भौतिकी मे उच्चताप की गैस का नाम प्लाज्मा है और जैविकी में प्लाज्मा वह तरल द्रव्य है, जिसमें कोशिकाएँ रहती हैं। इस तरह प्लाज्मा के भौतिक तथा जैविक रूपान्तरण को जानने के लिए दोनों तरह के प्लाज्मा को समझना बेहतर होगा। विजेन्द्र जीवन – जगत् के प्रति भौतिकवादी हैं, जो विज्ञान सम्मत है और इतिहास सम्मत भी। ऐसा इसलिए कि वे जीवन, जगत् और इतिहास की व्याख्या मार्क्सवादी दृष्टि से करते हैं। विजेन्द्र कहते हैं कि प्रत्येक पदार्थ में गतिशीलता उसमें निहित द्वंद्व के कारण होती है। भाववादी दर्शन को मानने वाले भी सृष्टि के विकास में द्वंद्वात्मकता को स्वीकार करते हैं।

'प्लाज्मा' कविता की रचना प्रक्रिया से पता लगता है कि विजेन्द्र किसी भी विषय पर पूर्व तैयारी किस तरह और कितनी गहराई से करते हैं। वे सम्पूर्ण इन्द्रिय बोध के साथ दृश्य से आगे उस अदृश्य को जानने की जिज्ञासा रखते हैं जहाँ तक जाना हर किसी के लिए असंभव सा है। एक सर्जनशील कवि की कविता की रचना प्रक्रिया किस प्रकार की हो सकती है यह इस कविता के अध्ययन करने से पता चलती है –

'धरती की परत दर परत
लिखा है मेरा जीवन
क्रियाओं का अंश अंश रोमिल इतिहास है मेरा
खोजे हैं मैनें जीवन स्रोत जहाँ तहाँ
चट्टानों में टीलों में, बीहड़ों में खदानों में
दाखिल हुआ हूँ ज्ञान विज्ञान के
नये रचे द्वारों में
खिला हूं, पला हूँ, उन्हीं के बीच।'[72]

आज के युग में आत्मा की अवधारणा की बात करना बेमानी प्रतीत होता है। आत्मा का संबंध यदि चेतना से जोड़ें तो कुछ तर्कसंगत होगा। जैसे मृत्यु होने पर चेतना नहीं रहती है और जीवित व्यक्ति में चेतना होती है। कुछ लोग आत्मा का संबंध पुनर्जन्म से जोड़ते हैं कवि इसे भी उचित नहीं मानता। कवि का मानना है कि **चेतना सृजन का आधार** है। कलाकार की चेतना ही जगत् में झिलमिला रही है। विजेन्द्र अपनी वैज्ञानिक दृष्टि से कहते है –

'ओ मेरी विकासमान चेतना के गति कण
द्रव्य ही सच है
गति ही जीवन है
आदि अन्त
उस का सार तत्त्व
यही है मेरी आत्मा की एन्थ्रोज्योग्राफी' अर्थात मानव भूगोल।'[73]

उक्त कविता का अंत भरत वाक्य से होता है जिसमें विजेन्द्र के वैज्ञानिक दृष्टिकोण की व्याख्या दिखाई देती है –

'समर अभी बदस्तूर....... जारी है

यह रहेगा बहुत आगे तक
पराजय ही विजय की जननी है
जडें बहुत गहरी हैं .... सतह के नीचे मिट्‌टी नम है
समर जारी है बदस्तूर।'[74]

5.5. निष्कर्ष

इस प्रकार विजेन्द्र की लंबी कविताओं का महत्त्व उनकी स्थापनाओं से है, जिनमें उन्होनें एक सच्चे कवि की प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। इन कविताओं में चरित्रों के माध्यम से परिवेशगत कथ्य है जिनमें आमजन के संघर्ष उसकी पीड़ा और उसके संवाद है, जिनको कवि के संवेदनशील मन ने पढकर पाठकों तक पहुँचाया है। विजेन्द्र की कविताओं को पढकर कहीं भी कुछ भी पराया नहीं लगता। उनकी कविताओं में किसान और श्रमिकों के सौन्दर्य के चित्र हैं, साथ ही कवि कर्म की गंभीरता, रचना प्रक्रिया है। कवि ने विज्ञान और भूगोल के ज्ञान को भी कविता से जोड़ा है। जो उनके समकालीन परिवेश के प्रति जागरूकता को दर्शाता है। अंत में यह कहा जा सकता है कि दीर्घ तनाव को लेकर उनकी कविता ने जो रचा है वह समकालीन कविता की अजस्र धारा है जो आगामी कवियों की पैतृक सम्पत्ति होगी जिसे वे आगे विकसित कर सकने में समर्थ होगें। उनकी स्थापनाएँ मौलिक एवं नवीनता से युक्त हैं वैज्ञानिक है जो उन्हें समकालीन कवि ठहराती है।

संदर्भ –

1. गजानन माधव मुक्तिबोध, नई कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध, पृ. 26
2. डॉ, कमलेश्वर प्रसाद, हिन्दी में लंबी कविता अवधारणा स्वरूप एवं मूल्यांकन, पृ. 68
3. डॉ. युद्धवीर धवन, समकालीन लंबी कविता की पहचान, पृ. 13
4. बलदेव वंशी, लंबी कविताएँ : वैचारिक सरोकार, पृ. 7
5. डॉ रमेश कुन्तल मेघ, क्योंकि समय एक शब्द है, पृ. 485
6. संपादक जगदीश चतुर्वेदी, रत्नलाल शर्मा का लेख, भाषा, पृ. 320
7. सं. डॉ नरेन्द्र मोहन, लंबी कविताओं का रचना विधान, पृ. 137 – 138
8. डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय, कालयात्री है कविता, पृ. 101
9. विजेन्द्र, दादी माई, बनते मिटते पाँव रेत में, (कविता संग्रह), पृ. 114
10. वही, पृ. 115
11. विजेन्द्र, तस्वीरन अब बड़ी हो चली, उठे गूमड़े नीले (कविता संग्रह) पृ. 62 – 63
12. विजेन्द्र, मुर्दा सीने वाला, धरती कामधेनु से प्यारी (कविता संग्रह) पृ. 112
13. विजेन्द्र, अधबौराया आम, धरती कामधेनु से प्यारी (कविता संग्रह) पृ. 113
14. विजेन्द्र, नत्थी, धरती कामधेनु से प्यारी (कविता संग्रह) पृ. 153
15. विजेन्द्र, मिस मालती, ऋतु का पहला फूल (कविता संग्रह) पृ. 147
16. विजेन्द्र, पारो, बनते मिटते पाँव रेत में (कविता संग्रह) पृ. 105
17. विजेन्द्र, लोग भूले नहीं हैं, बनते मिटते पाँव रेत में (कविता संग्रह) पृ. 82
18. विजेन्द्र, तस्वीरन अब बड़ी हो चली, उठे गूमड़े नीले (कविता संग्रह) पृ. 60
19. वही, पृ. 61
20. विजेन्द्र, जुम्मन मियाँ, ढल रहा है दिन (कविता संग्रह) पृ. 151
21. वही, पृ. 175 – 176
22. विजेन्द्र, धरती कामधेनु से प्यारी, पृ. 78
23. वही, पृ. 78
24. विजेन्द्र, मागो, धरती कामधेनु से प्यारी (कविता संग्रह) पृ. 84 – 85
25. विजेन्द्र, नत्थी, धरती कामधेनु से प्यारी (कविता संग्रह) पृ. 144 – 145
26. वही, पृ. 148
27. विजेन्द्र, मिट्ठन, ढल रहा है दिन (कविता संग्रह) पृ. 33 – 34

28. विजेन्द्र, बैनी बाबू, ऋतु का पहला फूल (कविता संग्रह) पृ. 150

29. वही, पृ. 152

30. वही, पृ. 153

31. विजेन्द्र, अल्लादी शिल्पी है –3, धरती कामधेनु से प्यारी (कविता संग्रह) पृ. 92

32. विजेन्द्र, बाबा आया, धरती कामधेनु से प्यारी (कविता संग्रह) पृ.135

33. विजेन्द्र, मिट्ठन, ढल रहा है दिन (कविता संग्रह) पृ. 35

34. वही, पृ. 46

35. वही, पृ. 47

36. विजेन्द्र, कठफूला बाँस, पृ. 71

37. वही, पृ. 31

38. विजेन्द्र, धरती कामधेनु से प्यारी, पृ. 80

39. विजेन्द्र, कठफूला बाँस, पृ. 32

40. विजेन्द्र, मैंने देखा है पृथ्वी को रोते, पृ.117

41. विजेन्द्र, कठफूला बाँस, पृ. 43

42. वही, पृ. 50

43. विजेन्द्र, टूटती हैं ढाएँ, उठे गूमड़े नीले (कविता संग्रह) पृ. 39 – 40

44. विजेन्द्र, दादी माई, बनते मिटते पाँव रेत में (कविता संग्रह) पृ. 114

45. वही, पृ. 114

46. विजेन्द्र, आधी सदी, मैंने देखा है पृथ्वी को रोते (कविता संग्रह) पृ. 36 – 37

47. विजेन्द्र, संवाद स्वयं से, कठफूला बाँस (कविता संग्रह) पृ. 79

48. विजेन्द्र, किसानों की सभा, बनते मिटते पाँव रेत में (कविता संग्रह) पृ. 51 – 52

49. विजेन्द्र, ढल रहा है दिन, पृ. 135

50. विजेन्द्र, कठफूला बाँस, पृ. 44

51. विजेन्द्र, मैंने देखा है पृथ्वी को रोते, पृ. 118

52. विजेन्द्र, लोग भूल गए हैं, बनते मिटते पाँव रेत में (कविता संग्रह) पृ. 88– 89

53. वही, पृ. 83

54. विजेन्द्र, उठे गूमड़े नीले, पृ. 33

55. विजेन्द्र, टूटती हैं ढाएँ, उठे गूमड़े नीले (कविता संग्रह) पृ. 39 – 40

56. वही, पृ. 69 – 70

57. वही, पृ. 79

58. वही, पृ. 83 – 84

59. विजेन्द्र, खड़ा मेड़ पर कुकुर भाँगरा, उठे गूमड़े नीले (कविता संग्रह), पृ. 88

60. वही, पृ. 92

61. विजेन्द्र, जनशक्ति, पृ. 311

62. संपादक मंजु शर्मा, बूँद तुम ठहरी रहो, पृ. 213

63. संपादक देवेन्द्र गुप्ता, सेतु पत्रिका, पृ. 196

64. वही, पृ. 197

65. विजेन्द्र, संवाद स्वयं से, कठफूला बाँस (कविता संग्रह) पृ. 65

66. विजेन्द्र, कठफूला बाँस, पृ. 71

67. वही, पृ. 90

68. विजेन्द्र, कौतूहल, कठफूला बाँस (कविता संग्रह) पृ. 120

69. वही, पृ. 125

70. वही, पृ. 127

71. वही, पृ. 128

72. विजेन्द्र, प्लाज्मा, बनते मिटते पाँव रेत में (कविता संग्रह), पृ. 121

73. वही, पृ. 149

74. वही, पृ. 152

अध्याय –6

विजेन्द्र की कविता में काव्य शिल्प तथा भाषा की समकालीनता

भूमिका

6.1. विजेन्द्र की कविता की भाषा

6.1.1. शब्द चयन

6.1.1.1. आंचलिक शब्द

6.1.1.2. अप्रचलित शब्द

6.1.1.3. विदेशी शब्द

6.1.1.4. तकनीकि या वैज्ञानिक शब्द

6.2. मुहावरे और कहावतें

6.3. बिम्ब

6.3.1. दृश्य बिम्ब

6.3.2. घ्राण बिम्ब

6.3.3. श्रव्य बिम्ब

6.3.4. स्पर्श बिम्ब

6.3.5. आस्वाद्य बिम्ब

6.3.6. संश्लिष्ट बिम्ब

6.4. प्रतीक

6.4.1 परंपरागत प्रतीक

6.4.2 नवीन प्रतीक

6.5. काव्य रूप

6.6. छंद विधान

6.6.1 बरवै

6.6.2 दोहा

6.6.3 रोला

6.6.4. आल्हा

6.6.5. सॉनेट

6.7. विजेन्द्र की कविता में शैली वैविध्य

6.7.1 सूक्ति

6.7.2 क्रियापदों का प्रयोग

6.8. अलंकार

6.9. निष्कर्ष

अध्याय – 6

विजेन्द्र की कविता में शिल्प तथा भाषा की समकालीनता

भूमिका

कोई भी रचनाकार अपनी रचना करते समय अपने भावों के उद्वेलन को कुछ शब्दों के द्वारा व्यक्त करता है। यह कार्य योजनाबद्ध नहीं होता। रचनाकार को यह भी नहीं पता होता, कि आलोचक किस रीति से मेरी रचना का मूल्यांकन करेगें। देखा जाय तो प्रतिभासम्पन्न रचनाकार के लिए रचना की अंतर्वस्तु और बर्हिवस्तु उधार की चीज नहीं होती। कविता के मूल कथ्य को अभिव्यक्ति देने के लिए भाषा की आवश्यकता होती है। इसी तरह भावों की अभिव्यक्ति में बिंब, प्रतीक, शैली छंद आदि स्वतः समाहित होते जाते है। 'कविता का मूल कथ्य उसकी अंतर्वस्तु या भाव पक्ष है तथा अंतर्वस्तु जिस माध्यम या आधार को लेकर प्रकट होती है, वह काव्य का शिल्प या रूप पक्ष है। इन्द्रिय बोध भाव और विचार द्वारा कविता अपनी अंतरात्मा का संस्कार करती है और शिल्प से अपना बाहरी रूप संवारती है। अतः भाव और शिल्प एक दूसरे के पूरक हैं और दोनों का समन्वय काव्य की अनिवार्य शर्त है।'[1] छायावाद में कवियों ने छंद और भाषा के प्रति सजगता से कार्य किया है वहीं प्रगतिवाद में यह प्रवृत्ति दिखाई नहीं देती। यहाँ कविता की अंतर्वस्तु के प्रति सचेतन दृष्टि दिखाई देती है। निराला, त्रिलोचन और केदारनाथ सिंह की कविताओं में भाषा और भाव दोनों के प्रति सजगता है। कथ्य प्रमुख और प्रधान है। यद्यपि भाव और शिल्प के संयोग से कविता का निर्माण होता है, परंतु जोड़ – तोड़ कविता को उसके पद से च्युत कर देता है। भाव और शिल्प के विषय में रामविलास शर्मा का कथन है –'साहित्य के रूप और उसकी अंतर्वस्तु का बहुत गहरा संबंध है। ये एक दूसरे से एकांत भिन्न न होकर परस्पर संबद्ध एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। कविता की भाषा उसकी चित्रमयता, छंद योजना आदि विषय वस्तु में तटस्थ न रहकर उसे प्रभावशाली बनाते हैं।'[2] कविता में शिल्प के प्रमुख घटक के रूप में भाषा, बिम्ब, प्रतीक, अलंकार, छंद और काव्य रूप आदि माने जाते हैं। विजेन्द्र की कविता में इन घटकों का अध्ययन हम क्रमशः करगें।

6.1. विजेन्द्र की कविता की भाषा

भावों और विचारों की अभिव्यक्ति के लिए जो सार्थक ध्वनि प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है, उसे भाषा कहते हैं, किंतु कविता में यह भाषा संकेत एक विशिष्ट क्रम में होता है। 'कविता का आदर्श ऐसी भाषा है, जो एक ओर तो कवि के भावों और अनुभूतियों को अच्छे ढंग से व्यक्त कर

सके पर साथ ही साथ दूसरी ओर जिसे उसके पाठक सरलता से समझ भी सके।'[3] भाषा गूँगे का गुड़ नहीं है। कवि के भावों और विचारों को पाठक तक पहुँचना भी परम आवश्यक है। काव्य चिंतन, काव्य रचना और अभिव्यक्ति भाषा के द्वारा ही होती है। पंत जी के अनुसार 'भाषा संसार का नादमय चित्र है, ध्वनिमय स्वरूप है, यह विश्व की हृत्तंत्री की झंकार है, जिसके स्वर में वह अभिव्यक्ति पाता है।'[4]

भाषा के माध्यम से कवि के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होती है। इस अभिव्यक्ति से तथ्यों (बाह्य यथार्थ) और भावनाओं (आंतरिक यथार्थ) को जाना समझा जा सकता है। इस संदर्भ में क्रिस्टोफर कॉडवेल कहते हैं – 'भाषा बाह्य यथार्थ और और आंतरिक यथार्थ से तथ्यों और भावनाओं दोनों को ही अभिव्यक्त करती है। यह काम प्रतीकों के माध्यम से अर्थात् मानस में एक स्मृति बिंब, जो कि बाह्य यथार्थ के किसी अंश का मानसिक प्रक्षेपण है, और एक भावना जो कि किसी सहज वृत्ति का मानसिक प्रक्षेपण है, को उभार कर करती है।'[5] आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'कविता क्या है' निबंध में काव्य भाषा की चार विशेषताएँ बताई हैं – 'मूर्ति विधान या चित्रात्मकता के लिए भाषा की शक्ति, विशेष रूप व्यापार सूचक शब्दों का प्रयोग, वर्ण विन्यास और नाद सौन्दर्य, व्यक्तियों के नामों के स्थान उनके रूप गुण या कार्यबोधक शब्दों का व्यवहार।'[6] काव्य भाषा के संदर्भ में सोचने पर यह पाते हैं, कि कवि या भोक्ता दैनिक बोलचाल में जिस भाषा का प्रयोग करता है, कविता उस भाषा में नहीं लिखता। पाठक या श्रोता की भाषा भी काव्य भाषा नहीं है। 'कविता की भाषा न तो उस व्यक्ति विशेष, जो भोक्ता है, की होती है, न ही श्रोता की। यानि, दोनों की सामान्य भाषा से अलग होती है .... काव्य भाषा भोक्ता द्वारा अपने भाव एवं विचार को श्रोता की भाषा में प्रस्तुत करने का प्रयास है। इसी प्रयास में सामान्य भाषा से अलग हो जाती है काव्य भाषा। सामान्य भाषा के शब्द नये संयोजन के कारण एक नया अर्थ देने लगते हैं।'[7] साहित्यकार का चिंतन प्रयोगात्मक होता है। वह समय – सापेक्ष भी होता है और इतिहास के ज्ञान से भविष्य दृष्टा भी होता है। इसीलिए एक समय में लिखी गई कविता दूसरी काल अवधि से भिन्न होती है। 'साहित्यकार अपने पूर्ववर्ती की अपेक्षा एक नए और अलग भाषिक मुहावरे, शिल्प का अन्वेषण करता है। एक ही साहित्यकार की कृतियों के बीच भी इस प्रकार का संबंध देखा जा सकता है। साहित्यकार की रचनाओं के समग्र कालखंड में उसका कथ्य, भाषा शिल्प परिवर्तित होता रहता है, भले ही परिवर्तन की दिशा गति भिन्न हो।'[8] विजेन्द्र की भाषा का एकाधिक स्तर देखे जा सकते हैं। कुलीन लोगों की भाषा ग्रामीण अंचल की भाषा, विद्रोह की

भाषा आदि। ये विविधता इसलिए कि कथ्य की संप्रेषणीयता में किसी भी प्रकार की बाधा न हो। कथ्य की प्रकृति से भिन्न भाषा कवित्व के नकलीपन का अहसास कराती है। विजेन्द्र कहते हैं–

''ओह..... क्या करूँ इन कविताओं का
छंदों का, लय का, यति का,
जिनमें कहीं नहीं दिखते चित्र
लड़ती जनता के।'[9]

इसलिए विजेन्द्र क्रियाशील मनुष्य के जीवंत व्यवहार से भाषा सीखने की कोशिश करते हैं। इस प्रक्रिया में जन से जुड़ने की छटपटाहट उनमें देखी जा सकती है। दोआब के होते हुए भी राजस्थानी के शब्द उनकी कविताओं में जिस प्रामाणिकता के साथ आते हैं वह इस बात का प्रमाण है। प्राणवान क्रियाओं से जुड़े होने के कारण उनकी भाषा में व्यंग्य, विडंबना और आक्रमण करने की क्षमता है, तथा भाषा ऐंद्रिक और बिम्बात्मक हुई है, साथ ही उसमें विविधता दिखाई देती है। कहीं आम बोलचाल की तद्भव प्रधान भाषा है, जिनमें लोकबोलियों के शब्दों को भरपूर स्थान मिला है, तो कहीं संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्द। आवश्यकतानुसार जिस जीवन को व्यक्त करना है उसी तरह की भाषा। उनका मानना है –

''असरदार भाषा हलक से नहीं –
बडे इरादों वाले दिल से निकलती है।'[10]
भाषा की दरिद्रता शब्दो से नहीं
विश्वास की कमी से
पहचानी जाएगी।'[11]

विजेन्द्र प्रचलित काव्य संरचना की परिधि को लाँघकर जनता के कवि बनते है। वे जनता के लिए कविता करते है। विषय की नवीनता में उनकी रूचि है पर वह जन के विरूद्ध नहीं है। वे जन के कवि हैं जनपद की बात करते हैं –

'शब्दों की साधना से ही चलके आया हूँ यहाँ तक,
मुझे बोलने दो जनपद की भाषा।'[12]

विजेन्द्र को अनेक भाषाओं का ज्ञान है, बावजूद इसके वे 'प्रयोग के लिये प्रयोग' नहीं करते। उनकी कविताओं में जड़ियापन या टकसाली भाव नहीं है। वे शब्द पर विशेष भार देते हैं पर

किसी विशिष्ट प्रयोजन से। अज्ञेय ने काव्य में शब्द के संदर्भ में कहा है – 'काव्य सबसे पहले शब्द हैं और अंत में यही बात बच जाती है कि काव्य शब्द है। सारे कवि धर्म इसी परिभाषा से निःसृत होते हैं।'[13] परंतु दूसरे सप्तक की भूमिका में वे महसूस करते हैं –'भाषा के विकास के क्रम में कविता की भाषा निरन्तर गद्य की भाषा होती जा रही है।'[14] तो ऐसी स्थिति में शब्द का स्थान वाक्य ले सकता है।

विजेन्द्र, हिन्दी वाक्यों में हिन्दी कविता लिखते हैं। भाषा बोध की इकाई वाक्य है, शब्द नहीं। विजेन्द्र ने शब्दों में जीवन भरा है, उनके लिए शब्द का अर्थ है, जीवन से घनिष्ठ साक्षात्कार होना। विजेन्द्र के काव्य शिल्प पर विचार करें तो दिखाई देगा, कि उनकी कविता साहित्यिकपने से दूर रहती है, क्योंकि नियत साहित्यपन या निश्चित लालित्य कविता को यथार्थ से दूर रखता है, जो उनके कवि कर्म से मेल नहीं खाता है। उनका मानना है, कि भाषा के ठेठपन को नष्ट करके या किसी नियत भाव से गढ करके या किसी तर्ज पर कविता करना नकल करने जैसा है। उसके लिए नकली भाषा और नकली कवि होना होगा, और यह उन्हे कतई पसंद नहीं होगा। कोई इसे हठ माने, तब भी वे किसी की परवाह नहीं करते। वे अपनी बनाई राह पर चलते हैं, यह राह जन के मन की है, और भाषा भी इसी जन मन के अंदर की है। त्रिलोचन ने 'जनभाषा और काव्य भाषा' नामक लेख में लिखा है –'काव्य की दृष्टि से तो नहीं, पर भाषा के अर्थों की दृष्टि से द्विवेदी युग के कविताओं ने हिन्दी के सहज रूप को रखा है। छायावाद काल में काव्य का स्तर ऊँचा हुआ है, किन्तु भाषा घायल दिखाई देती है। पुरानी भाषा, जिसे काव्य भाषा कहकर पढ़ा और पढ़ाया जा रहा है, वर्तमान रचनाधर्मी के प्रयोजन की वस्तु कम ही है।'[15] विजेन्द्र के काव्य की भाषा में जीवन की हलचल है, सामान्य बोलचाल की भाषा का ठाठ है–

'खेत काटने जाती सिलहारिन, रंग चटक है
लहँगा फरिया के।
हाथ धरे सिर हँसिया है
पासी कंधे पर, बगल लगी पोटली, सिया है
अधेड, नवेली बहुएँ, कन्या पीछे, मटक है
चाल अजब सी
टोल बाँध कर चुलबुल करती।'[16]

कवि प्रकृति के भावविभोर कर देने वाले स्वरूप को कविता में ढालकर कहता है –

'डार डार भौरें झूले हैं
राई मटर रँगन मगन है
धूप सना खुला गगन है
बौर आम का देखा पहले
आँखों से जो चाहे कहले।'[17]

विजेन्द्र की कविता में ठेठ देशज शब्द जितनी सहृदयता से अनायास चले आते हैं, पर साथ ही साथ उनकी अर्थव्याप्ति भी उन शब्दों की गरिमा को बढ़ा देती है। प्रकृति के बीच जीने वाले प्राणी में उत्तम प्राणी किसान है, जो अपने श्रम से पशु और प्रकृति सभी को नया जीवन देता है। उसके लिए खेत सगे भाई से कम नहीं होते। इस दृष्टिकोण से उनकी कविता 'खेत सगे हैं' उल्लेखनीय है जहाँ उन्होंने सामान्य शब्दों से विशिष्ट अर्थ प्रदान किया है –

'खेत पके हैं सखा सगे हैं
कहीं हरित हैं
कहीं रजत हैं
सोम चढे हैं
ढेर बडे हैं
केर लगे हैं
वसन चढ़े हैं।'[18]

विजेन्द्र लोक के कवि हैं, जन के कवि हैं । उनकी काव्य भाषा आभिजात्य के ढाँचे को तोड़ती है। उनकी कविता दरबार से मुक्त लोक क्रियाओं की सक्रियताओं की कविता है।

''मैं हूँ जनतंत्र का कवि
दूर हूँ दरबार से
लिखता हूँ मुक्त छंद लयवान
चरित्र सृष्टि को
लोक क्रियाओं में बाँधकर
कह रहा प्रवाह प्राणों का।'[19]

उनका मानना है, कि भाषा किताब पढ़कर नहीं सीखी जाती। भाषा तो श्रम करते हुए आदमी को बोलते हुए सुनी जाने से सीखी जाती है।

'शब्द जनमते हैं
क्रियाओं से
उनमें
जीवन का अनुपम बल है।'[20]

यह बल लोक में डूबने से ही प्राप्त किया जा सकता है। वे प्रत्येक रचना करते समय कथ्य में गहरे तक उतरते हैं। उसकी जड़ों को टटोलते हैं, और इतना ही नहीं उसके भौतिक रचाव और स्वभाव को व्यक्त करने के लिए वैसी ही भाषा का प्रयोग करते हैं। प्रसिद्ध आलोचक डॉ. जीवन सिंह ने उनकी भाषा के संदर्भ में लिखा है – 'वे जिस लोकांचल से संबद्ध हैं कविता में उसी लोकराग को शब्दाकृति देते हैं। ब्रज और मरू जनपद की लोकभाषाओं का गहरा रचाव उनके मुहावरे और काव्य भाषा में है, वह कविता की दुनिया में केवल नवोन्मेषी ही नहीं है, बल्कि अपने समय के सच की प्राण प्रतिष्ठा भी करती है।'[21]

विजेन्द्र की कविता में प्रवाह लय और कसाव का समन्वय है। विजेन्द्र की कविता में आंतरिक लय भी दिखाई देती है। यह कसाव और आंतरिक लय अनुशासित है। भाषा एवं शब्द विधान में कवि सतर्क और सचेत है। विजेन्द्र के 'घना के पाँखी' 'पकना ही अखिल है' 'उठे गूमडे नीले' 'धरती कामधेनु से प्यारी' 'जनशक्ति' 'कठफूला बाँस' 'ढल रहा है दिन' 'बनते मिटते पाँव रेत में' आदि कविताओं की भाषा से ही स्पष्ट हो जाता है कि कवि कविता के विषय, पात्र, घटना आदि के प्रति सचेत रहा है।

विजेन्द्र की कविता की भाषिक संरचना में शब्द चयन, कहावतें, मुहावरे, नीतिगत वाक्य, मार्मिक संवेदनापरक संवाद और शब्दों की अर्थव्याप्ति का विशेष महत्त्व है। वे पारम्परिक शब्द में नया अर्थ भरते हैं, लोक शैली की तरह संवादों में कहावतों का इस्तेमाल करते हैं। मुहावरों के द्वारा जीवतंता भरते हैं। वाक्यों को जीवनधर्मी वाक्य में रूपांतरित करते हैं। कहना होगा कि कवि का भाषा बोध, वैज्ञानिक एवं व्याकरणिक ही नहीं संवेदनात्मक एवं ज्ञानात्मक भी है। शब्द के विविध रूप और उनका सम्यक् प्रयोग एवं शिल्प विज्ञता विजेन्द्र की कविता में दिखाई देती है।

6.1.1. शब्द चयन

विजेन्द्र की कविता और जीवन में सादगी और सरलता को विशेष महत्त्व है, इसके बावजूद वे कवि कर्म के प्रति पूर्ण सचेत और संवेदनशील हैं। कवि, कविता और कविता प्रक्रिया से लेकर भाषा के प्रति वे अत्यंत सजग और सचेत हैं। विजेन्द्र जीवन की क्रियाशीलता से शब्द ग्रहण करते हैं। जीवन और कविता को भिन्न नहीं मानते हैं, अतः उनके शब्द भी जन के है। वे कहते हैं –

'जीना और कविता
नहीं हैं दो चीजें भिन्न जीवन में।'[22]

उनकी कविता जब विज्ञान के मैग्मा, प्लाज्मा से संबंध रखे, तो शब्द वैज्ञानिक, जब कविता राजनीतिक और संघर्ष के पायदान पर खडी हो, तो शब्द भी राजनीतिक और सामाजिक जीवन के होते हैं। कवि के द्वारा जब प्रकृति को देखा, जाना और समझा जाता है, तो उनके शब्द किसानी वेश धारण करते है। उनकी शब्द साधना के संबंध में वे लिखते हैं –

'तप है साधना शब्द को
संयमित जीवन में
कवि को देनी होती है
अग्नि परीक्षा हर क्षण
व्यवहार की।'[23]

विजेन्द्र की कविता की भाषा में बोलचाल के शब्दों के अलावा आरंभिक कविताओ में तत्सम शब्दावली और वैज्ञानिक शब्दावली का भी प्रयोग हुआ है। वे शब्दों का चयन करते समय उसके मूल स्वरूप का भी ध्यान रखते हैं, और व्यावहारिक पक्ष पर भी। पारंपरिक शब्दों को खराद कर उसमें जीवंतता भरने की कला वे जानते हैं। इसीलिए उनकी कविता के शब्दों में आत्मीयता है। वे शब्दों के सारथी से प्रतीत होते हैं। उनका मानना है कि शब्दों के पर्याय नहीं होते। यदि भाषा में एक ही वस्तु या विचार के लिए एकाधिक शब्द हैं तो वे समानार्थी नहीं होते। उनके अर्थ में कोई न कोई सूक्ष्म भेद अवश्य होता है। शब्दों में अर्थ व्यंजकता भरना, नवीन अर्थ प्रदान करना कवि सामर्थ्य का परिचायक है। विजेन्द्र को स्पंदन करने वाले जीवित शब्दों की तलाश है। इन जीवित शब्दों में वे जीवन्तता एवं व्यंजकता भरते हैं।

विजेन्द्र जब 'तस्वीरन' के मुँह से कहलवाते हैं – 'अब्बा बाग रखाते बुढ़िआए / कमर झुक गई / मैं स्यानी हूँ' तो वे 'तस्वीरन' की मनोभूमि में पैठ कर यह कहते हैं। 'तस्वीरन' पढ़ी लडकी

नहीं है। उसकी बोली में क्षेत्रीयता का प्रभाव है, इसलिए शब्दों को जैसा वह कहती है, वैसा ही रखा। यहाँ कविता में कवि की सजगता और परिवेशगत भाषा की संपृक्तता के ज्ञान का पता चलता है। शब्द जीवंत हो गये हैं। इसी प्रकार के अन्य शब्दों में उगान, परजना, उजाला, उषा, धूप, पकना, खिलना, बसंत, उर्वर भूमि, बंजर आदि उनके प्रिय शब्द हैं, जिनमें सजीव क्रियाशीलता दिखाई देती है। धरती कामधेनु से प्यारी में लादू का कथन 'थे कोनी जानो... / अकाल में सगो भाई जवाब दे देबे/ पर खेजड़ा जवाब कोनी दे.....। और इसी प्रकार लंबी कविता 'मुर्दा सीने वाला' में 'पिछले बीस बरसों में / जाने कितने – कितने मुर्दों को / सी साँ कर/ नक्की किया' जैसे कथनों में न भाषा नयी है, और न ही शब्द नये हैं। सब कुछ सहज और सचेतन है। विजेन्द्र की शब्द चयन लोक का है, प्रचलन में है। उन्होने कविता के लिए नयी भाषा नहीं गढ़ी, बल्कि पहले से मौजूद जीवित भाषा को उसकी जीवन्तता में ग्रहण किया। उसे कविता में संवादों के जरिये उन लोगों को बोलने दिया जिन्हें अभी तक लोगों ने जाना नहीं था।

ग्रामीण परिवेश में कहावतें, मुहावरे, नीतिपरक सूक्ति, दृष्टांत, उदाहरणों आदि का प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग इसलिए किया जाता है, जिससे बात असरकारक और श्रोता को समझने में सहायक हो। गाँव में किसी को भी लक्षणा, व्यंजना का सैद्धांतिक ज्ञान तो नहीं होता, किंतु व्यवहार में इसका प्रयोग सहज और सरल रीति से करते है। विजेन्द्र का मानना है –

'जहाँ मैं जनमा हूँ.... यहीं –
इन्हीं पकती झरबेरियों में
तँबई धोरों के बीच
बीता है मेरा यौवन
कैसे भूल पाऊँगा उस छितराती घास को
बडा हुआ जिसके संग संग।'[24]

विजेन्द्र की कविता में तस्वीरन, अल्लादी, रमदल्ला, साबिर, मागो, लादू, मीना, मुर्दा सीने वाला, मिटठन, मिस मालती, बैनी बाबू जैसे चरित्र हैं। ये चरित्र लोक के हैं इनमें अधिकांश का संबंध गाँव और गरीबी से है। विजेन्द्र इन्हीं जन की बात कहने के लिए शब्द संयोजन करते हैं, पर उन्हें विषाद होता है, कि ये आखर भी पूरी बात कहने में कभी कभी समर्थ नहीं होते –

'कहाँ भला संभव है
कह पाएँ

अपने मन की बात
होठों पै
आई भाखा
पास हमारे आखर होकर भी
शेष बचा रहता है
अर्थ
औरों को
बहुत कुछ
खोकर भी।'[25]

विजेन्द्र की इन कविताओं में जो अर्थ व्यंजकता दिखाई पडती है, वह कथ्य को अत्यंत मार्मिक और प्रभावपूर्ण बना देती है। ऐसे में कवि को खोलकर बात कहने की आवश्यकता नहीं होती। कवि की कविता 'मुर्दा सीने वाला' की अंतिम पंक्ति, पात्र के अर्थ से ऊपर उठकर असीमित वैश्विक अर्थ व्याप्ति कराते हैं–

'हुआ होगा आजाद मुल्क
मुर्दों की कमी नहीं
पिछले चालीस बरस से
देख रहा हूँ
बढा बहुत है लावारिस लाशों का नंबर।'[26]

इसी प्रकार काली माई कविता में –

'काली माई
कौन कहाँ का रिश्ता – नाता
होगी कोई जाने कितने
चलते फिरते हैं
यों याद करें
जिस – तिस को
तो जीना दूभर है।'[27]

सामंती वर्ग के लिए श्रमजीवी लोग 'जिस – तिस' से अधिक कुछ नहीं होते। उनको इनके जीवन के उल्लास और संघर्ष से कोई लेना देना नहीं है। उनका इनके बीच जीने या चले जाने को कोई अर्थ नहीं है। इन्हें वह 'जाने कितने चलते फिरते हैं' कहकर पशु जैसा भी नहीं समझते। ये रोजमर्रा की जिंदगी के वे सामान्य शब्द हैं, लेकिन कविता में आकर इनकी अर्थ व्याप्ति देखते ही बनती है। इन शब्दों को यह अर्थ व्याप्ति वही दे सकता है, जिसको अच्छी तरह मालूम हो, कि शब्दों के प्राण कहाँ बसते हैं। छाँट – छूँट, रठ्ठ, धरे कंठ , माँग – जाँय, अंगारा, घिघियाई, बढ़बार, अलस, कागद, करब आदि केवल शब्द भर नहीं है, इनसे परिवेश साक्षात् होता है। जीवन संघर्ष बोलता है। सुख दुख बोलते हैं। ये धरती और उसमें जीने वाले आदमी का खाका खींचने में सहायक होते हैं। विजेन्द्र की कविता में ये शब्द प्राणवायु के समान प्रवाहित होते रहते हैं। कहा जा सकता है, कि जिस भाषा में जीवन रस को देने वाले शब्द होगें, उसी भाषा या कविता में गति होगी। जिसमें जीवंतता होगी, उसमें ही कार्य को संपादित करने की सामर्थ्य होगी। विजेन्द्र की कविता में यह सामर्थ्य है। नरेन्द्र पुंडरीक ने 'सूत्र' में विजेन्द्र की कविता में शब्दों के लिए लिखा है – 'विजेन्द्र की कविता की भाषा मे त्रिलोचन, केदार, नागार्जुन, एवं बुंदेलखण्ड के लोककवि ईसुरी की तरह लोक की भाषा शक्ति को पहचानने की एवं प्रयोग की क्षमता है। भाषा को पुनर्जीवन देने की क्षमता विजेन्द्र ने इन्हीं कवियों से पाई है। इनकी कविता में लोकराग के राग का आलाप नहीं, लोक की गहरी पीडा, उल्लास एवं उसकी निजी भीतरी ताकत को परिभाषित करने में अधिक बल देती है। इसी वजह से आज विजेन्द्र की कविता इस उत्तर आधुनिक दौर की कविता की सृजन शुष्कता के बीच हरी दूधिया गेहूँ की बाल की तरह झूम रही है।'28

विजेन्द्र की कविताओं में दोआब की बदायुँनी बोली से लेकर ब्रज और राजस्थानी भाषा के शब्द मिलते है। ये सारे शब्द व्यावहारिक शब्द हैं, जिन्हें स्थानीय लोग अपने जनपद में इस्तेमाल करते है। कवि ने इन शब्दों का प्रयोग भावों को जीवंत और सार्थक बनाने के लिए किया है। शब्द भण्डार की दृष्टि से विजेन्द्र की कविता समृद्ध है। तत्सम् शब्दों का प्रयोग करते हुए, वे कभी – कभी द्विवेदी युग के कवियों के समीप पहुँच जाते हैं। आँचलिक शब्दों के प्रयोग में ही नहीं, भाषा और भाव की दृष्टि से वे कभी – कभी स्थानीय और लोक कवि होने का पूर्ण अहसास कराते हैं। 'मैग्मा' और 'प्लाज्मा' जैसी विज्ञानपरक संदर्भो से युक्त कविताओं में वैज्ञानिक पदों का प्रयोग भी है। जिससे कवि की व्यापक शब्द योजना का पता चलता है। उनके शब्दों को हम निम्न संदर्भो के साथ देख सकते है।

6.1.2. आंचलिक शब्द

विजेन्द्र की कविता में किसान, श्रमिक, मजदूर, और मिट्टी की गंध है, विजेन्द्र की कविता मे आंचलिक शब्दो का प्रयोग अधिक हुआ है, उसकी संक्षिप्त सूची इस प्रकार है। कोष्ठक में दिए गए अंक पृष्ठ संख्या दर्शाते है।

त्रास – भुक्सैले (11) हँकवा (25) इकेला (32) रौरियाते (33) तलछट, भौंडे (42) सुरमई (49) पंचागुरे (73) ।

ये आकृतियाँ तुम्हारी – अधखोट, घमस (9) भुरारा(11) खौंप (13) पिलपिला (15) चीसती (16) खुरंड (17) गुबरैला (26) खलबला (31) भौंदू (32) नथोरो (41) नासपीटा, लोथ, गडूलना (46) ढिंग, मैंगनी, किसनई, कचलैंडी (47) लामनी (52) कहनावत (62)

चैत की लाल टहनी – बौदने, धपार, तडकन, अजबैगी (14) चिनगे (26) जस (28) बटिया (32) हरियास (34) मेंह (62) निराते (73) निथर (79) किंचियाया (80) लतर (88) उगान (104) ।

उठे गूमड नीले – झाउ, ढाएँ (9) गैती (13) मोरियॉ, ठनाठन (14) पाटौर, घिसान (18) लचपचाती (22) सब्ब्ल (23) आरी (25) इक्सार (27) तरमासे (36) सिल्लियॉ (39) पौंडती (45) निगोड़े (51) स्यानी (58) मुलक (60) किलबिल किलबिल (62) लखना, खखोना (64) आधी – पर्धी (67) ढिग्मा (68) गठाने (90) ।

धरती कामधेनु से प्यारी – उखट (21) रब्बी (35) बेगरा, गोफन (37) मॅहदिया (51) भीजना (55) बबज (65) हक्कारे (74) धचक (88) आनगाम (90) पउआ (106) भडुए (108) कनछेर (109) बबाल (113) अनैठ (115) टीकाटीक (116) दिनधौपर (130) ।

ऋतु का पहला फूल – ललौही (14) कुम्मेती, जिबरिया, चौंखते, झौंडे (15) सामरा, बबजाया (26) बिनकूता (28) बनौआ, कनकौआ (38) गस्सा (42) अंघोटा, डमसुरी (46) मरखनी (47) लौहसारी (49) कुन्हैटे (68) टोटा (69) डिमकौरा (103) मिनख (106) पिराई (119) गोड (120) छौंक, सॉंटा (121) टरका, पाचड (165) कनबतियाँ (129) गूमड (133) दाँता किलकिल (135) धाकड (150) पतनालों (166) टटपूँजी (196) ठठरी (203) खादर (208) ।

उदित क्षितिज पर – साँच (11) आँक (12) भीड भड़क्का (19) खसता, परिकम्मा (32) गाँस, खुंदते (46) घमियाते (47) सरबस, मोखा (50) कौहड़ा (80) भौत (85) लट्टू पतिरा (104) टसुआ (105) झूकटे (133) गिचपिच, चौलड़ी (139) हेटी (140) कमबेसी (141) ।

घना के पाँखी – रँगन – मगन, बडकी (13) ताँता (18) पकान ओटता (21) पौदे (29) पिराता, कोइला (33) मटियार (36) बुई (39) सकेला, दुकेला (45) पियरे, ललौंही, कलौंही, चँदोबे (51) सकरपाला (52) इतकूँ उतकूँ (53) लकूरा (54) कथरी (55) साठा (56) लामनी (66) गाम, ढोर (77) सुभीता (87) मुचरकाती (91) बबज, भाखा (99) खरमुदरे (103) सिलपट (111) लीचड (112) लाटसाब (119) तेहरी (121) रचकाती (131) कोइल (144) ।

पहले तुम्हारा खिलना – सलौना (11) खिरान (15) ललौहेपन (17) खरौंच (25) अरचा (26) हिरमिचीपन, तिलसेंटियों (28) भटकटैया, बैजनीं (41) घाम (47) भुक्सैली (48) झबरी (50) भडकूकर, कंसुए (55) भब्बड (57) मसकले (73) पीला जर्द (79) भरक (95) झरकट (96) लट्टू (109) ।

बसंत के पार – पंखडी (11) दुधियाई (15) पौंडती (16) छगुनी (17) छोई (19) अडवा (19) बिसूर (23) नथौरों (25) उचाट (34) दाख चिनौरी (40) उपाटी (43) खदकै लीतर (47) दलिद्दर (53) दडवा (54) कादा (55) कारकुन (58) छोरी (67) तंत (68) भभूका, बिजुरी (69) झैती (71) लिथेरे (95) ।

दूब के तिनके – सेमर, लप्प (1) बलेडी, चिहाय (4) भभका (5) थमसाय (15) बसुआत (16) पाँखुरी (17) थाड (21) मिनख (25) ढचरा (26) कागौर (28) बवजा (30) ताबड़ो (32) टेब (34) टिक्कर, गसा (36) टुच्चे (38) अकौआ (46) उचकाय (61) भुच्च (71) सकेर, चेजारा (78) भौंडू (86) ।

आँच में तपा कुंदन – छाबन, ईंछना (12) माँढ (13) उठान (16) धचका (17) खोपटे (20) रॉफी (25) लचाके (28) न्यारी (31) उगान (36) गुडाई (39) उपटी (63) टिटकारा (75) रँधेगी, चोखी (103) ।

भीगे डैनो वाला गरूण – खौंसता (8) पखाँरू, बिगारू, भाया निथारूँ (9) लोहा लंगड (15) बखत, पोला अदबक (16) ठाडा (21) सुभीता, अडबंगा (22) औधावें, तिरसा (34) भरौटा (66) संखिया (73) धचकी (74) ।

बुझे स्तंभो की छाया – बानी (10) घोंटुओं (11) चिप्पियाँ (15) औलातियाँ, गौहान (16) छाबन (17) पिचकना (22) जुगाड (24) कुन्हैठा (31) चैपा (51) पच्चडों (52) रेढ (54) ढचरा (56) भरियाफूटा (60) रमक (67) चौगिर्द (82)

कठफूला बाँस – जाडा (9) ब्याँत (11) लड़साई (12) पैपचा (13) तर्राया (15) गपच (16) छम्माटा (21) चैंटा (22) मुरैठा (29) अगुआ (31) उसारो (47) भिंचा (85) नकसीध (93) पैनें (106) रमकता(119) ।

बनत मिटते पाँव रेत में – अँगनारे , बाँगर (7) सक्करपारा (8) टिक्कर (9) लिलार (10) बिजाई (15) उडीकती (18) लद्बड, ललछोई (23) मरहोरी (25) पिछलग्गू, ढिंढोरची (30) रतुआ (38) खखारना (48) नौन मिरच (55) ताबडा (64) रॉधता (77) दॉय (87) बहुतेरा (94) पढ्ढूपन (110) धनाधोरी (114) रिगसन (136)

बेघर का बना देश – ललौंहा (13) खरौंचता (19) पचरंगी, नुनखरे (21) पतझरा (24) कीच काँद (25) कालौंच (30) ढूहों (40) अखज (55) इंठने (58) छितराता (60) झरन (73) धुमैली (79) अदेखी (80) खोंच (87) टाँची (91) लिथे (91) पिचते (96) हिरमिची (104) घोटू (110) सिसियॉद (113) भुरभुरी (116) तलछट (118) गाद (123)

6.1.1.2. अप्रचलित शब्द

विजेन्द्र की कविता में अनेक स्थलों पर कुछ तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है, जिनका प्रयोग व्यवहार में न के बराबर है। कवि ने केवल काव्यगत और विशिष्ट अर्थ देने के कारण इनका प्रयोग किया है।

त्रास – वृक्षोद्‌गम, वृक्षाभ, वाहनाकुल, पारदृश्वा, (2), अग्निजात्मा (3), अर्द्धालोकित, आम्रद्योतित (4), अव्याहृत (6), वाष्पाकुल (15), विशापित (17) संध्यांश(23) निदाघाक्रांत (31), अत्यूह (32) मृत्य्वाभास, कुहराच्छादित (46) मुखरासक्त अन्तर्संलापिनी (54) सूर्यलांछित (55) सप्ताश्वयी (88)

ये आकृतियाँ तुम्हारी – हव्यवाक् (19)

उठे गूमड नीले – निर्वाक् (10) अनाहूत (40) ।

ऋतु का पहला फूल – लस्टम पस्टम, अचक पचक (136) व्याख्यात्री (145)

उदित क्षितिज पर – निःसृत (12) आक्षितिज (50) व्रण (55) संचेष्टित, दिक्काल (69) वातायन, स्पंद (72) ब्रहमांड (83) नेहालय (87) अस्तमयी (111) धूमायित (115) प्रत्यंग (116) निर्वाक् (134)

घना के पाँखी – तूर्य, अनुलेख (13) वाकोवाक्य (66) ।

पहले तुम्हारा खिलना – द्विपत्र, भावत्वरित (12) शिखरोन्मुख (15) भविष्योत्कंठित (58) प्रक्षालन (64) पुंसकोकिल (77) जीवनाहत (94) अन्यमन (104) ।

आँच में तपा कुंदन – उर्वर (10) आकृतिवान् (22) स्फुलिंग (30) उत्फुल्ल (49) स्फटिक (53) मनोरचना (63) तप्त (68) उल्लास (81) ।

भीगे डैनों वाला गरूण – श्रमोत्कंठित (79)

बुझे स्तंभों की छाया – कुचक्र (15) ऋतूल्लास (16) अनाच्छादिनी (29) कामेच्छाएँ (43)

कठफूला बाँस – ऋतूल्लास (12) गवाक्ष (14) अग्निज (21) कामोन्माद (22) भूवृत्त (26) अक्षौहिणी (53) विजयोल्लास (57) एकालाप (59) विलोपन (64) क्षुधित (69) कूपमण्डूकता (70) प्रत्यंचा (71) जीवनेच्छाएँ (71) विदूषकीय (73) सूर्योन्मुख (81) निरभ्र (82) रौरव (84) भौम्याकार (97) शिरोभूषण (105) मर्माहत (115) क्रोचमिथुन (117)

बनते मिटते पाँव रेत में – दिक्काल (15) वातास (19) ऋतस्पर्शा (20) सन्यपात (37) भग्नावशेष (47) ऋचा (122) तितीर्षु (127) केन्द्राभिमुख (135) मयूरभन्ज (143) आत्मग्रस्त (150)

बेघर का बना देश – निसर्ग (25) द्यौ, उत्खनित (27) चाक्षुष, बज्रांक (33) क्षुभित (55) गवाक्षकों (75) कामोत्तेजित (82) स्फीत, केतन (102) कर्मोत्कंठित (106) वक्षोज (111) निर्लक्ष्य (119)

6.1.1.3. विदेशी शब्द

विजेन्द्र बहुभाषाविद हैं, किंतु कविता में बोलचाल के वे शब्द, जो भावों की संप्रेषणीयता में सहायक बने हैं, वे प्रयोग किये गये है। अरबी, फारसी और अंग्रेजी के शब्द भी इनकी कविताओं में मिलते है।

6.1.1.3.1. अरबी फारसी

ये आकृतियाँ तुम्हारी – मुफीद (47) नफीरी (63) शरीफजादों (66) अक्स (85) ।

चैत की लाल टहनी – गुरेज (15) नजला (62)

ऋतु का पहला फूल – गम, बेचैन, दोआब (39) उलामत (63) नबी गर्दन, हिफाजत, जिस्म, तिजारत, मजमून (69) बेकाबू, ईनाम (112) कुफर (124) हरामजादा (125) औकात, बख्शीश (150) आलम, फाजिल (203) ।

उदित क्षितिज पर – गजर (90)

पहले तुम्हारा खिलना – मटर गश्ती (50) अबाबील, मैमनें (89) ।

आँच में तपा कुंदन – खून (9) खुराक (67) शक्लों (81) जिन्दा (83) सौदा (98) दर्द, दवा (101)

बुझे स्तंभों की छाया – शहतीरों (10) लबादा (11) अस्तर (13) हरामजादा, कामचोर (16) गोश्त, जिब्हें (26) चरबी (28) इश्तिहार (33) सरसब्ज (35) दबिश (37) खौफनाक (43) जमीर (49) ।

कठफूला बाँस – ताजा, सबूत (14) दम (16) रोशनी (21) बुनियादी (24) आदमकद (25) रूतबा (31) आमादा (48) मुफ़्तखोर (71) महफूज (75) सफेदपोश (76) हैवान (79)

बनते मिटते पाँव रेत में – नफासती (30) खौफनाक अलामत (36) अफवाह (41) हुनरमंद (71) पाजी (82) तगादा (118) दिलेर (150)

बेघर का बना देश – गायब (16) गुमटीदार (22) ताजगी, वजूद (28) मनहूस (32) कमेरे , टोटा (70) इबारत (76) बेदिमाग (87) फरियाद (100)

6.1.1.3.2. अंग्रेजी शब्द

ये आकृतियाँ तुम्हारी – रेडियो (20) फॉस फामिन (27) स्यूटर (30)

उठे गूमडे नीले – बैल्डिंग (10) रिबटिंग, क्रेन (10) गैंग (15) रिबट (24) प्लेटफॉर्म (26) कंक्रीट (41) बोल्ट फिशप्लेट (46) मैनहोल (96) ।

धरती कामधेनु से प्यारी – सायरन (68) मिनिस्टर गाडी (87) ।

ऋतु का पहला फूल – मिल्क केक (113) ऑफिसर, कॉलोनी, गॉर्डन (134) पार्टी (135) फायर ब्रिगेड (136) डिस्पैच (149) डिग्रियां (203) ।

उदित क्षितिज पर – वेलकम (89) सर्किल (115) ।

घना के पाँखी – कोल्तार, ड्रम (112)

पहले तुम्हारा खिलना – चॉकलेटी (11) ग्रेनाइट (72) माउस (73) ।

आँच में तपा कुंदन – डिप्लैक्स (18)

भीगे डैनों वाला गरूण – बोल्ड स्ट्रोक्स (65) कैनवस (75)

बुझे स्तंभों की छाया – पोस्टर (10) एल्यूमिनियम (13) कनस्तर (15) अप्रेल (23) सॉफ्ट कोक, रिजर्व बैंक (77) कोकोनट (82) गारंटी (94)

कठफूला बाँस – सिम्फनी (72) पेंटिंग्स (73) डिजाइन (75) बुलडोजर (85) ट्रेक्टर (112)

बनते मिटते पाँव रेत में – न्यूक्लियर (36) नट बोल्ट (40) ब्रश (42) इंच (43) कर्नल (76) कैंसर (98)

बेघर का बना देश – फुटपाथ (76) चेम्बर (121) ।

6.1.1.4. तकनीकि / वैज्ञानिक शब्द

विजेन्द्र की कविता में कुछ स्थानों पर तकनीकि और वैज्ञानिक शब्दावली का प्रयोग हुआ है । इनका विशिष्ट अर्थ कविता को प्राणवान बनाने में सहायक हुआ है

ये आकृतियाँ तुम्हारी – प्रोटीन (21) शुक्रकीट (30) फफूँद (52) ।

चैत की लाल टहनी – सल्फर, शोरा (63)

उठे गूमड नीले – धमन भट्टी (10), द्रव्य, ऊर्जा (14) उष्मा (17) अयस्क (31) हेमेटाइट (32) जीवाश्म (40) त्वचा, रक्तवाहिनी (41) सांघातिक (44) ।

घना के पाँखी – उर्वरक, उर्जा (29) ।

पहले तुम्हारा खिलना – उद्भिज्ज (12) सान्द्र (77)

आँच में तपा कुंदन – लावा (9) डायनामाइट (83)

बुझे स्तंभों की छाया – बर्मी (10) रसायन (23) अयस्क (25) जीवाश्म (29) जननांग, अण्डाशय (30) खनिज (52) जलवायु अणु (53) भूमण्डलीकरण (87) रंध्र, द्रव्य, जनन विज्ञान (21) गति, पदार्थ (23) उत्खनन, अपक्षय, प्रविधि (26) एन्थ्रोजोगर्फी (27) सैद्धांतिकी (49) विज्ञापन (67) लिपि (68) डेल्टा (85) प्रवाल भित्तियाँ (93) अधिरचना, शैवाल, तरल (97) मैग्मा, रक्तवाहिकाएँ (98) घटक, अपारदर्शी (119) कार्बन डाइ आक्साइड, ऊष्मा (124) ठोस (126) घनत्व (128) ।

बनते मिटते पाँव रेत में – धमनभट्टी (15) त्वचा (18) जैविक (24) सर्वहारा (39) घुलनशीलता (45) भूकम्पीय, क्षोभमण्डल (122) प्लाज्मा (126) तन्तु (129) अमोनिया (131) गैस (134) आकाशगंगा, सौरमण्डल (150) ।

बेघर का बना देश – मज्जा (32) अष्टधातु (35) अनुरणन (39) मैग्मा (80) रक्तचाप (82) ।

6.2. मुहावरे और कहावतें

मुहावरा या कहावतें वे उक्तियाँ होती है जिनका प्रयोग कथन की संप्रेषणीयता को प्रभावी बनाता है। भाषा में जीवंतता का समावेश इन उक्तियों के द्वारा होता है। भाषा की लाक्षणिकता और अर्थ व्यंजकता बढाने में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। कहन में प्रचलित होने के कारण कहावत और लोक में प्रचलित होने के कारण इसे लोकोक्ति भी कहा जाता है। कहावत या लोकोक्ति अनुभव सिद्ध, घटना या प्रसंग से सम्बद्ध एवं अपने आप में स्वतंत्र होती है। मुहावरों का प्रयोग वाक्य में किया जाता है क्योंकि यह एक पदबंध होता है इसका स्वतंत्र अर्थ नहीं होता है।

विजेन्द्र की कविता में मुहावरों और कहावतों का प्रयोग जन संपृक्ति की परिचायक है। कवि ने लोक का सूक्ष्मता के साथ निरीक्षण किया है। उसने जाना कि किस तरह देहाती और कुलीन अपनी बात या कथन को प्रभावी बनाने के लिए कहावतों और मुहावरों का प्रयोग करते हैं। कवि ने अपनी कविताओं में भी उन कथनों के साथ इनका प्रयोग बखूबी किया है। कवि ने देहाती लोगों के मुँह से लोकोक्ति और मुहावरों का प्रयोग करते हुए दिखाया है। धरती कामधेनु से प्यारी कविता में ग्रामीण लादू के मुँह से निकला यह कथन 'थे कोनी जानो, अकाल में सगो भाई जवाब दे देबे' इसी प्रकार 'दादी माई' नामक कविता की दादी की व्यथा 'छाती पर पत्थर रख जीती हूँ' एवं 'जित देखो तित बोदे ही मरते हैं' जैसी कहावते हमें पात्रों के और नजदीक ले जाते हैं। इसी तरह 'बैनी बाबू' नामक कविता में निम्न मध्यमवर्गीय जीवन जीने वाले बैनी बाबू के भाव 'उन्हें लगा उतना ही मिलता जितना भाग लिखा है' एवं 'दाने दाने पर मोहर लगी है' एवं 'भाग्य रेख नहीं टरेगी टारे' आदि कथन आदमी की बेबसी और संघर्ष को मुखरित करने में सहायक होती है। विजेन्द्र समकालीन कवि हैं, और आजादी के बाद देश के बिगड़ते हालात और परिवेश के प्रति वे चिन्तित नजर आते है। उन्हें पीडा है कि आजादी के लगभग 70 वर्षों के बाद भी देश में बदहाली का आलम है। शोषक नई – नई रीति से सर्वहारा का शोषण करने में लगा है। हाथी के दाँत दिखाने के और, खाने के और होते हैं। 'दाँत दीखते और हैं, खाने के कुछ और, कहने को दाता फिरै, छीने मुँह का कौर।' गरीब को सौ प्रकार के कष्ट हैं, यह कहावत लोक में प्रचलित

है। कवि ने इसे 'पिसनारी के पूत को, सौ जोखम सौ घात'। कवि अपने समकालीन परिदृश्य में कवियों की स्थिति को चित्रांकित करते हैं। 'जूती चटकाते फिरै, कवि कोविद विद्वान, सजे मंच पै बैठ के प्रभू बखाने ज्ञान।' इतना ही नहीं 'अपने मुँह मिठुआ बने, हाँके डींग महान' आदि कहावतों के प्रयोग से कवि ने कविता के गिरते स्तर भी कवि ने चिंता जताई है।

विजेन्द्र ने अपनी कविता की भाषा में लोक को जीवंत किया है। इस जीवंतता में भाषा का महत्वपूर्ण योगदान है। कारण साफ है कि कवि जब लोक के साथ जुड़ता है, तो भाषा भी लोक की होती है। ऐसे में हम देखते हैं, कि विजेन्द्र की कविता इसी लोक शैली के कारण सजीव स्पंदित, और सटीक मारक हुई है। कथन की प्रभावोत्पादकता और संप्रेषणीयता में सहायक हुई है। कवि ने अपने काव्य संग्रहों में भी इसका प्रयोग किया है। कुछ महत्वपूर्ण स्थलों पर आए मुहावरे और कहावतों का उल्लेख इस प्रकार है।

6.2.1. मुहावरे

ये आकृतियाँ तुम्हारी – पाँव पीटना (14) मुँह काला होना (18) हाथ नचाना (37) नाक बचाना (40) सींग दिखाना (46) तीसमारखाँ समझना (61) कानाफूसी करना (66) आग में कूदना (72) ।

उठे गूमड नीले – पेट पालना (51) सीना तानना (90) आँख की किरकिरी होना ।

धरती कामधेनु से प्यारी – कमर टूटना (79) जूती चटकाना (112) जूता पूजना (125) ।

ऋतु का पहला फूल – गाल बजाना (30) कलम घिसना (149) डंडी मारना (151) सिंहासन ढोकना (202)

उदित क्षितिज पर – पापड बेलना (33) झाड फूँक करना (52) भाँग छानना, मुँह ताकना (100) घास भी नहीं डालना (105)।

घना के पाँखी – ताना कसना (85) रामकथा कहना (107) हंसा उडना (134) नाक कटना (137) ।

पहले तुम्हारा खिलना – जड़ खोदना (60) पगडंडी पर चलना (119) ।

बसंत के पार – गाल बजाना, बात का बतंगड बनाना (47) पिंड छुडाना (86) धीरज खोना ।

दूब के तिनके – फूला नहीं समाना (2) जूते चटकाना (27) जले पर नमक छिड़कना (28) सल पड़ना (30) खून जलाना (36) गेहूँ के संग घुन पिसना (38) दिन फिरना (73) ।

आँच में तपा कुंदन – दिन में तारे दिखाई देना (112) ।

भीगे डैनों वाला गरूण – बाल की खाल निकालना, लंगड़ी मारना (9) खिचड़ी पकाना (14) जले पर नमक छिड़कना (16) लीपा – पोती करना (17) कन्नी काटना (23) टंगडी मार खेल खेलना (24) पाला पड़ना (81)।

बुझे स्तंभों की छाया – गाँठ काटना, अपना उल्लू सीधा करना, तलवे चाटना (36) आँखे भर देखना (67) मुँह पर ताला पडना (78) आँख फाड़े देखना (92) ।

कठफूला बाँस – कान पर जूँ नहीं रेगना (21) खून का घूँट पीना (27) पीठ फेरना (30) गूँगा बहरा हो जाना (46) अक्कल डाढ़ आना (49) राख होना (56) ।

बनते मिटते पाँव रेत में –आँखे तरेरना (8) पटरी बैठाना (9) मुँह पर ताला जड़ना (34) धुन का धनी होना (79) गाल बजाना, चुल्लू भर पानी में डूबना (87) अंधे की लकडी (107) कान भरना (117) छाती पर पत्थर रखना (118)।

बेघर का बना देश – आंखे तरेरना (27) मुँह लगाना (50) सिर धुनना (79) ।

मंने देखा है पृथ्वी को रोते – सीधे मुँह बात नहीं करना (18) मन ही मन ठानना (30) मान मरना (34) आँसू पीना (35) मन ताड़ना, गम खाना (36) डींग हाँकना (160) ।

ढल रहा है दिन – भौंहे तानना (18) कंधे से कंधा मिलाना (20) मक्खी मारना (24) ।

6.2.2. कहावतें

ये आकृतियाँ तुम्हारी – नक्कारखाने की तूती (32) कोटपुतली के माथे चणकली (50) चोर चोर मौसेरे भाई (62) तेली का बैल, अंधे के हाथ बटेर (68) ।

उठे गूमड नीले – रंगा स्यार, आस्तीन का साँप (10) ढाक के तीन पात, क्या ओढूँ क्या सौर बिछाऊँ (51)

उदित क्षितिज पर – घोड़े गधे एक ठाम (33) चार दिन की चाँदनी फिर अँधेरी रात (80) सावन सूखा न भादों हरा (104) ।

पहले तुम्हारा खिलना – मूरख गाँठें चड्डी भाया, पंडित भरते पानी (109) ।

भीगे डैनों वाला गरूण – बकरे की माँ कब तक खैर मनाएगी (35) ।

बुझे स्तंभों की छाया – घोड़े की नस्ल दौड़ से नहीं उसकी कनौती से पहचानी जाती है (52) आधा तीतर आधा बटेर (77) हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के और (80) ऊँट के मुँह में जीरा (87) ।

बनते मिटते पाँव रेत में – बकरी शेर एक घाट पर पानी पीना (53) जिसकी लाठी उसकी भैंस (62) जैसा बोयेगा वैसा काटेगा (78) चूल्हे में जड़ (81) गीदड भभकी (84) हाथी के पाँव से चींटी का बैर (86) जिस थाली में खाए उसी में छेद करे (87) ।

बेघर का बना देश – नहले पर दहला (25) जहर, जहर को काटता है (58) ।

मैने देखा है पृथ्वी को रोते – सीधे मुँह बात नहीं करना (18) मन ही मन ठानना (30) मन ताडना, गम खाना (36) ।

ढल रहा है दिन – काला अक्षर भैंस बराबर (13) रंगा स्यार (21) आटे में नमक (27) ढाक के तीन पात (153) कोल्हू का बैल (159) आस्तीन का साँप (175) ।

6.3. बिम्ब

बिम्ब का शाब्दिक अर्थ है – चित्र, आकृति या रूप। रचनाकार की सौन्दर्यदृष्टि, इन्द्रियबोध क्षमता और कल्पनाशक्ति की अभिव्यक्ति बिम्ब द्वारा होती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा है – 'कविता में अर्थ ग्रहण मात्र से काम नहीं चलता, बिम्ब ग्रहण अपेक्षित होता है।'[29] रचनाकार की सृजनात्मक शक्ति कल्पना होती है। 'कल्पना से बिम्ब का आविर्भाव होता है और बिम्बों से प्रतीक का। जब कल्पना मूर्त रूप धारण करती है, तब बिम्बों की सृष्टि होती है।'[30] मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि व्यक्ति भौतिक वस्तुओं के सम्पर्क में आता है तब उसकी इन्द्रियाँ प्रभावित होती हैं। व्यक्ति के मन में चेतन अचेतन रूप से एक रूप, छवि या चित्र अंकित हो जाता है। यह प्रक्रिया चलती रहती है। रचनाकार की रचनाधर्मिता इस प्रक्रिया से प्रभावित होती है उसकी कल्पना शक्ति मन में चेतन अचेतन रूप से एकत्रित चित्रों या बिम्बों को ग्रहण करती है। इन्हीं इंन्द्रिय अनुभवों की अभिव्यक्ति रचना में होती है। केदारनाथ सिंह का मत है 'बिम्ब, वह शब्द चित्र है जो कल्पना के द्वारा ऐन्द्रिय अनुभवों के आधार पर निर्मित होता है।'[31]

कविता के अभिव्यक्ति पक्ष के लिए बिम्ब महत्त्वपूर्ण हो गया है। आधुनिक रचनाकारों ने बिम्ब की अवधारणा पाश्चात्य आधारों एवं विचारों से ग्रहण की है। हीगल, लेविस, स्टुअर्ट फिंल्ट, एजरा पाउण्ड आदि कवियों एवं समीक्षकों ने बिम्ब की अवधारणा एवं महत्त्व पर प्रकाश डाला है। हीगल ने अपनी पुस्तक 'दि फिलॉसाफी ऑव् फाइन आर्ट' में कहा है कि बिम्ब विचारों के मूर्त और ऐन्द्रिय रूप होते हैं।'[32] स्टुअर्ट फ्लिंट ने इमैजिज्म : पोएट्री में कहा है – 'An image is that which presents an intelluctual and emotional complex in an instant of time.'[33]

नगेन्द्र ने बिम्ब को कल्पना द्वारा निर्मित मानस छबि कहा है। 'काव्य बिम्ब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानस छवि है, जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है।'[34]
बिम्ब काव्य को सिर्फ अलंकृत ही नहीं करते बल्कि रचनाकार की सर्जन क्षमता को भी उजागर करते हैं, किन्तु बिम्ब चित्र या रूप चित्र को कविता नहीं कहा जा सकता। मूलरूप में भावों की संप्रेषणीयता को बिम्ब सहज रूप से प्रकट करते हैं। विचारों की बोझिलता या शब्दों के व्यापार से सामान्य पाठक ऊब सकता है। सुंदर सरल बिम्बों से उसके मन पर सीधा प्रभाव पडता है। अतः कविता में बिम्बों का प्रयोग परिधान या घटक के रूप में होना चाहिए। बिम्बधर्मिता कविता का गुण है किन्तु बिम्बों का घटाटोप कविता को हानि पहुँचा सकता है, यही बात अलंकार, प्रतीक आदि पर भी लागू होती है।

विजेन्द्र की कविता में लोक की क्रियाओं और उनके चित्रांकन में बिम्बों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। लोक का उनसे रागात्मक संबंध है। लोक का रहन – सहन, खान – पान, वेश – भूषा, बोली – बानी, प्रकृति और लोक संघर्ष, उनकी रचनात्मकता का केन्द्रीय स्वर है। उनकी कविता की जड़ गहरे तक पौंडी हुई है। उनके जीवन में दोआब से लेकर मरूस्थल तक का योगदान है। उनकी कविता में हरी – भरी धरती से लेकर मरूभूमि तक के बिम्बों का निरूपण हुआ है। उनकी लंबी कविताओं के चरित्रांकन में बिम्बों ने जो शब्द चित्र खींचे है वे महादेवी के रेखाचित्रों से किसी भी तरह कमतर नहीं है –

नत्थी कविता में –
'आँखों के नीचे गड्ढे
ऊबड़ खाबड़ बाल
एक तरफ को कढ़े

सूखे खिचड़ी।
खुद पहने है पतलून, मैली कुचैली
बुशर्ट फैली सी
पतला दुबला, पुतला सा लम्बा
जैसे खड़ा हो बिजूका।'[35]

विजेन्द्र की कविता में प्रकृति भी झूमती और स्वछंद भाव की संवाहक है। कवि ने 'घना के पाँखी' में फसल का वर्णन किया है –

'वे फूले हैं,
डार डार भौंरे झूले हैं
राई मटर रँगन मगन है।
धूप सना खुला गगन है।
बौर आम का देखा पहले
आँखो से जो चाहे कह ले।'[36]

'खेत पके हैं
सखा सगे हैं
कहीं हरित हैं
कहीं रजत हैं
सोन चढ़े हैं।'[37]

विजेन्द्र की कविता में बिम्ब ग्राह्य और क्रियात्मक है। उनके बिम्बों में चित्रात्मकता, एकार्थमयता, और बोधगम्यता का गुण है। विजेन्द्र की कविता मे बिम्बों को समझने के लिए हम उन्हें इन्द्रिय भेद के आधार पर पाँच भागो में बाँट सकते है।

6.3.1. दृश्य बिम्ब

आँखों द्वारा जो देखा जाता है, जो कल्पना की जाती है, और इसके कारण अंतःकरण में जो प्रतिबिम्ब उभरता है, उसकी अभिव्यक्ति दृश्य बिम्ब में होती है। इसी प्रकार अन्य इन्द्रियों के मुख्य कार्य तद्विषयक बिम्ब कल्पना द्वारा निर्मित होते हैं। 'दृश्य बिम्ब का आधार दृष्टि संवेदना है।

इसका उत्तेजक कारण प्रकाश तरंगे हैं।'[38] दृश्य बिम्ब के दो भेद माने गये हैं गतिशील और स्थिर। गतिशील बिम्बो में गत्यात्मकता, परिवर्तन, बदलाव, क्रियाशीलता आदि गोचर होती है जबकि स्थिर बिम्ब अगतिशील, स्थिर एवं क्रियाविहीन होते हैं।

विजेन्द्र की कविता में गतिशील बिम्बों के अनेक उदाहरण है–

'हिलती काले जल में हो जैसे छाया मेरी, करती चकित मुझे ही। (उदित क्षितिज पर पृ. 109)

.————————————————————————————

'सतनासी के पीत कटोरे, हिलते डुलते पवन झकोरे'। (घना के पाँखी, कवि ने कहा, पृ. 99)

——————————————————————————

'ओस झिलमिलाती है
अरहर रातभर कोहरे में दाँत किटकिटाती रही।' (बुझे स्तंभों की छाया पृ. 33)

—————————————————————

'बहुत देर तक पौदे पर खुरदरी उँगलियाँ
फिराता रहा, जैसे बच्चे को दुआयें दे रहा हो।' (बुझे स्तंभों की छाया पृ. 36)

—————————————————————

'करूँगा तेरी बारीक कुट्टी विवेक की गँडासी से
जब तक रचता रहूँ, क्रियाओं से निसृत शब्द
कहूँगा नहीं जीवन भार है।' (कठफूला बाँस पृ. 115)

—————————————————————

'देखता हूँ वनस्पतियों का सहज उगान
मेरे अंदर रचे गये भूदृश्यों का अपूर्व हिस्सा है अछोर।' (कठफूला बाँस पृ. 95)

———————————————————————

'जब मैं छूता हूँ
तभी चिकना, खुरदरा, ठण्डा या गर्म
पहचानता हूँ।' (बनते मिटते पाँव रेत में पृ. 43)

——————————————————————————

'अगर मैं नंगे पाँव घूमूँ,

तो मेरी नसें

सजग रहेंगी।' (बनते मिटते पाँव रेत में पृ. 15)

'खुशी के आँसुओं में एक तेज झरन होती है

जैसे चिकने पत्तों से ढरकती पारदर्शी बूँदें।' (आँच में तपा कुंदन पृ. 38)

'दरवाजा खोलते डर लगता है

शीत लहर

मेरी गर्दन दबायेगी।' (मैनें देखा है पृथ्वी को रोते पृ. 91)

'मची है भगदड इधर – उधर

कोई नहीं पहचानता किसी को।' (ढल रहा है दिन पृ. 29)

'बिछाता है गंदे फुटपाथ पै

पतला चिथडा बिछावन का

कहॉ से लाऊँ चित्र मन भावन का।' (बेघर का बना देश पृ. 76)

'जिसे तुम समझते हो

पानी की बूँदें

छलकती माथे पर

वो मेरे रोयों का सत है।' (बेघर का बना देश पृ. 93)

'दुमट मिट्‌टी से फूटता अंकुर

गहरी तपिश में कुम्हलाता सा

धरती देती है स्तन उसे

कोई देवता नहीं आता।' (बेघर का बना देश पृ. 94)

———————————————————————————

'धधकती आँच से डरो मत

यह बड़े इरादों वाले

जीवन से ही पैदा होती है।' (पहले तुम्हारा खिलना पृ. 46)

————————————————————————————

'हाथ पौंछ आँचल से

फिर झबरी को आवाज लगाई

बार बार ललकारा उसको लगी फूँकने बीड़ी

दम कस के मारा

नहीं निकलने दिया धुआँ

सींक भर बाहर।' (बनते मिटते पाँव रेत में पृ. 116)

————————————————————————

'धरती फोड़ कर जो उठता है – सुर्ख कल्ला

उसी को कहते हैं जीवन।' (मैने देखा है पृथ्वी को रोते पृ.130)

इसी प्रकार स्थिर, शांत एवं अगतिशील बिम्बों का प्रयोग भी द्रष्टव्य है –

'मैंने देखी

तुम्हारे चेहरे पर घिरती

कालातुर कालिमा

काँटेदार भय

और गर्दन पर निरभ्र झुर्रियाँ।' (पहले तुम्हारा खिलना पृ.19)

———————————————————————

'काई जमीं है पानी की सतह पर

कैसे देख पाऊॅगा अपना प्रतिबिम्ब यहाँ।' (पहले तुम्हारा खिलना पृ. 23)

——————————————————————————

'मूर्त को अमूर्त और धुँधला होने से बचाना ही

शब्द साधना है।' (पहले तुम्हारा खिलना पृ. 30)

———————————————————————————

'रोज साँझ को मिलती वो रस्ते में। गट्ठर है
सिर पर सूखी लकड़ी का। एक हाथ गट्ठर पर
दूजे में सित बकरी की रस्सी है।' (पकना ही अखिल है पृ. 123)

—————————————————————————

'झारखण्ड मंदिर के बगल में
मनों दूध सड़ते देखा, कीचड़ की नाली में
वहीं आसपास दूध को तरसते बच्चे देखे।' (बुझे स्तंभों की छाया पृ. 74)

————————————————————————

'हम हैं तलछट
नीचे पैंदे में बैठी हुई गाद।' (बेघर का बना देश पृ. 123)

——————————————————————————

'अब वह वैसा ही सख्त है
जैसे सूखा कंकरीट
लोहे का गर्डर।' (पहले तुम्हारा खिलना पृ. 53)

—————————————————

'यह सुबह है आज की
बहुत सुंदर
जैसे पका सेब
आधा सुर्ख, आधा पीला –
मेरे लिए तुम्हारे लिए।' (आँच में तपा कुंदन पृ. 104)

6.3.2. घ्राण बिम्ब

मनुष्य ने अपने विकास के साथ साथ वस्तुओं एवं पदार्थो को सूँघकर जानने की चेष्टा की, और सूँघने की शक्ति को जानकारी का साधन बनाया। गुलाब की खुशबू, पके आम की महक, सड़ता नाला, मछली की दुर्गन्ध, ये सब घ्राणेन्द्रिय शक्ति से पता चलता है। कविता में ऐसे शब्द, कथ्य की संप्रेषणीयता के लिए आवश्यक होते हैं। गंधयुक्त पदार्थो या वस्तुओं का प्रभावशाली बिम्ब

कवि की गंध चेतना से समन्वित होता है। विजेन्द्र ने माटी की सोंधी गंध, दोआब में पौधों की महक, बेला, चंपा, मोगरा के फूलों की गंध, के साथ – साथ रसायनों की गंध, आगरा शहर की सड़ती नालियों की गंध आदि को बिम्बित किया है।

'खसे गुम्बदों से आती चिमगादड़ी दुर्गन्ध
मैं कैसे उतारूँ चट्टानों से नीचे।' (बेघर का बना देश पृ. 75)

———————————————————

'जो पानी रूका है गड्ढों में
वहां सडाँध है
गटर में बिलबिलाते हैं जानलेवा कीड़े।' (कठफूला बाँस पृ. 78)

—————————————————————————

'धीरे – धीरे उठता जाता है यकीन, प्रतीकों से
मिथकों में आती है मृत मछली की दुर्गंध
उपमायें रूपक नहीं।' (मैंने देखा है पृथ्वी को रोते पृ. 136)

6.3.3. श्रव्य बिम्ब

श्रव्य बिम्ब का सम्बन्ध कर्णेन्द्रिय से है। मुर्गे की बाँग, कोयल का कूकना, बादलों की गड़गड़ाहट, पानी की कल – कल, चिड़ियों का चहचहाना, धमनभट्टियों में लोहे को तपाने की ध्वनि, लोहे के गाडर को काटने की आवाज, घायलों की चीत्कार, पुकार और कहराना। ये सब ध्वनि से चलित है, अतः श्रव्य बिम्ब है। कवि कितना सचेत, सूक्ष्म निरीक्षणकर्ता एवं कितना संवेदनशील है, इसका परिचय भी इन उदाहरणों से समझा जा सकता है –

'ऐसी बानी बोलो
जिससे सन्नाटे में दहल पैदा हो सके
शब्द आकाश को गुँजा दे, मन में अपार लहरें उठे।' (बुझे स्तंभों की छाया पृ. 10)

————————————————————————————————

'सुनता हूँ अपने अंदर बजती
धातुक खनक .....
जलतरंग ढलते सूर्य का

सुनता हूँ अँधेरे गर्त में।'   (कठफूला बाँस पृ. 93)

———————————————————————————

'इस चिड़िया की स्फूर्त फुदक
और उसकी चहक में
वह अर्थ मैंने सुना
वह ध्वनि मैंने जानी।'   (पहले तुम्हारा खिलना पृ. 108)

—————————————————————————

'धोरों के पास चरवाहे थे
हमें भौंचक देखा
अपनी बकरियों को टिटकारा।'   (आँच में तपा कुंदन पृ. 75)

6.3.4. स्पर्श बिम्ब

इस बिम्ब का संबंध त्वचा से है। हमें चुभन, ठंडी, गर्मी या सिहरन आदि का अनुभव त्वचा से होता है। स्पर्श बिम्ब से पाठक की स्पर्श चेतना स्पंदित एवं संवेदित होती है। स्पर्श बिम्ब विजेन्द्र की कविता में सर्वहारा वर्ग की क्रियाओं में बहुधा देखा जा सकता है।

'शीतलहर चलती है पूरे उत्तर भारत में
ठिठुर रहे जन – जिनके वसन नहीं हैं तन पर।'   (उदित क्षितिज पर पृ. 66)

——————————————————————————————

'मधुमक्खी हर खिले फूल को
देती है अपना चुम्बन
उसके मस्तक पर देती है थपकी
हवा शाखों से गले मिलती है।   (बेघर का बना देश पृ. 16)

————————————————————————————

'जाने कितनी बार झुलसा है हाथ
भभकती आँच में
किसी ने नहीं जाना
भीगा है अंग अंग पानी में।'   (कठफूला बाँस पृ. 108)

————————————————————————

'शब्दों पर लगी काई
मन पै जीम फफूँद छूटती है रगड़ से।' (कठफूला बाँस पृ. 113)

————————————————————————

'इस कठिन ढलान में
हम
एक दूसरे का हाथ
कसकर
पकड़े रहना चाहते हैं।' (पहले तुम्हारा खिलना पृ. 36)

————————————————————————

'मैने महसूस किया
बन्द मुट्ठी की शक्ल में।' (पहले तुम्हारा खिलना पृ. 71)

6.3.5. आस्वाद्य बिम्ब

स्वाद जीभ का विषय है, अतः इस बिम्ब का संबंध जीभ से है। स्वाद के लिए वस्तु को जीभ पर रखकर उसके बारे में जाना जाता है। कविता में इस बिम्ब का प्रयोग कम ही हुआ है पर संवेदना के ज्ञान के लिए ऐसा बिम्ब कवि ने दिखाया या प्रकट किया है।

'तुम्हें कैसे दिखाँ

मैने हर बूँद

जीवन की कड़वाहट के साथ पी है।' (आँच में तपा कुंदन पृ. 62)

————————————————————————

'बहुत दिनों तक
मैं निरंग चट्टानों से
फीके संवाद उठाता रहा
जीवन जैसे कड़वी गिलोय की

लचक शाख हो।'   (आँच में तपा कुंदन पृ. 55)

6.3.6. संश्लिष्ट बिम्ब

जब एक से अधिक बिम्ब एक ही वर्णन या प्रसंग में हो। वहाँ संश्लिष्ट बिम्ब होता है। विजेन्द्र की कविता में ऐसा प्रयोग अनेक स्थानों पर देखा जा सकता है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है –

'मछली की गंध बसी है। रक्त के दाग
लगे हैं। मांस के छिछड़े हैं। बहुत बुरे धब्बे हैं......
आग धधकती सबके मन में.....।

————————————————————————

'पहले देखता हूँ .... सुनता हूँ
फिर छूता हूँ जानने को
नरम है जिसकी पँखुड़ी
गंधवान
वह फूल है।
खुरदरी है सख्त जिसकी पीठ
वो पत्थर है
पहचानता हूँ।'   (कठफूला बाँस पृ. 62 – 63)

————————————————————

'यह दुनिया नहाई थी रोशनी में
नहीं दिखाई दिया कोई भूखा
कोई थका माँदा
मिट्टी सना पुता
माथे से टपकता पसीना
देह से आती खटास।'   (कठफूला बाँस पृ. 73)

यद्यपि विजेन्द्र की कविताओं में केदारनाथसिंह, मुक्तिबोध या नागार्जुन की सी बिम्बधर्मिता नहीं है, परंतु ऐसा भी नहीं है कि वे बिम्ब की आवश्यकता से अनजान हैं, या बिम्ब उनके लिए अरूचिकर है। बातचीत की लय में कविता में करने वाला ही *'कितना कचरा फैंकूँ भाया, कितनी*

कीच निथारूँ /बात बात में लँगडी मारे, बाल की खाल निकाले' (भीगै डैनों वाला गरूण पृ. 9) यह कह सकता है। विजेन्द्र की कविता में बिम्ब ठूँसे नहीं गए है, और ना ही प्रयोग के लिए प्रयोग किए गये हैं। बिम्बों में कहीं भी दुरूहता या क्लिष्टता नहीं है। लगभग सभी बिम्ब सुलझे और स्पष्ट है। बिम्बों के भेद उपभेद को प्रस्तुत करना कवि का उद्‌देश्य नहीं रहा है। काव्य को परिपक्व बनाने, पाठक के मन में छवि अंकित करके तथ्य को उद्‌घाटित करने, इंद्रिय बोध द्वारा संवेदना की अभिव्यक्ति आदि में बिम्बों का प्रयोग हुआ है। यहाँ बिम्ब सहज रूप में आये हैं सायासित नहीं है।

6.4. प्रतीक

प्रतीक का शाब्दिक अर्थ है – चिह्न, संकेत प्रतिरूप या उपकरण। किसी अगोचर वस्तु, अप्रस्तुत विषय या अमूर्त भाव आदि को संप्रेषित करने के लिए ठोस, मूर्त, प्रस्तुत वस्तु का प्रयोग प्रतीक कहा जाता है। प्रतीक के द्वारा मर्म, विचार, अर्थ आदि की अभिव्यक्ति होती है। विद्वानों का मानना है कि भाषा की संप्रेषण क्षमता जहां पंगु साबित होती है, प्रतीक वहाँ सार्थक सिद्ध होते हैं। सूक्ष्म एवं गंभीर भावों की अभिव्यक्ति प्रतीक द्वारा होती है।

दैनिक जीवन में भी प्रतीकों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, साहित्यिक आदि तमाम क्षेत्रों में प्रतीकों का उपयोग होता है। राष्ट्रीय ध्वज, तीज – त्योहार, रासायनिक एवं गणितीय प्रतीक से सूक्ष्म एवं लक्षित तथ्यों की अभिव्यक्ति होती है। ज्ञान – विज्ञान के तमाम क्षेत्रों में प्रतीकों का उपयोग होता है। इनके माध्यम से अर्थ विस्तार होता है। यहाँ एक बात यह भी उभरती है कि प्रतीक और बिम्ब के मूल कार्य में समानता है, दोनों में एक प्रकार की चित्रात्मकता है। बिम्ब और प्रतीक के अंतर को अंर्स्ट काजिरेर के कथन से समझाने में मदद मिलती है – 'प्रतीकों का निर्माण बिम्बों द्वारा ही किया जाता है फिर भी दोनों के बीच एक पार्थक्य की स्थिति बनी रहती है। इसका कारण है कि बिम्ब स्वतः सम्भवी होते हैं, जबकि प्रतीक बौद्धिक प्रयत्नों द्वारा निर्मित होते हैं।'[39] बिम्ब में चित्रोपमता का अधिक महत्त्व होता है, प्रतीक में प्रभाव साम्य पर बल दिया जाता है। प्रतीक में किसी भाव विशेष की अभिव्यक्ति होती है, बिम्ब में संपूर्ण दृश्य के चित्रण का प्रयास। प्रतीक का ध्येय भाव अथवा विचार की ओर संकेत करना होता है, जबकि बिम्ब का उसे मूर्त रूप देकर प्रेषणीय बनाना। प्रतीक अनुभूति की स्थूलता को तीव्रता एवं गहनता प्रदान कर प्रेषित करता है, जबकि बिम्ब सूक्ष्म और रूपहीन मनोभावों को रूप प्रदान कर सुसंवेद और संप्रेषणीय बनाता है।'[40]

प्रतीक को रचना सौन्दर्यवर्धक उपादान कहा जा सकता है। इसके द्वारा स्थूल को सूक्ष्म एवं सघन बनाया जाता है। इस प्रक्रिया में रचनाकार की निजता पाठकों के लिए कभी – कभी दुर्बोध साबित होती है। प्रतीक सहज सम्प्रेषणीय होने पर अभिधात्मक हो सकते हैं। अज्ञेय कहते हैं – 'प्रतीक वास्तव में ज्ञान का उपकरण है, जो सीधे – सीधे अभिधा में नहीं बँधता उसे आत्मसात् करने या प्रेरित करने के लिए प्रतीक काम देते हैं।'[41] प्रत्येक कवि द्वारा प्रयुक्त प्रतीक उसके निजी होते हैं, लेकिन देखना यह होता है, कि वे मात्र उसकी व्यक्तिगत अनुभूतियों की उपज हैं, या जनता के अनुभवों से भी उनका संबंध है। यदि कवि द्वारा प्रयुक्त प्रतीकों का आधार सामाजिक अनुभव है, तो वे विशेष प्रभावोत्तेजना उत्पन्न कर सकेगें।'[42]

विजेन्द्र की कविता में प्रतीकों का प्रयोग समकालीन अर्थो में हुआ है। इन प्रतीकों के द्वारा आधुनिक भावबोध, विचार एवं संवेदना की अभिव्यक्ति हुई है। ये प्रतीक मुक्तिबोध के जटिल प्रतीकों की तरह नहीं। इनका प्रयोग सादगी के साथ परंपरागत एवं नये रूपों में हुआ है। अपनी अभिव्यक्ति के लिए विजेन्द्र जिन प्रतीकों का चुनाव करते हैं, वे निराला, केदार, और त्रिलोचन की परंपरा के अनुरूप है। इनकी कविताओं में प्रतीकों का प्रयोग भाव और विचारों के अनावश्यक विस्तार को रोकने तथा कथ्य को मार्मिक एवं प्रभावी बनाने के लिए किया गया है। विजेन्द्र ने परंपरागत और नवीन दोनों प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग किया है। सरलता के लिए इन्हें दो भागों में रखा जा सकता है।

6.4.1. परंपरागत प्रतीक

बसंत – नवीनता , किसान का उत्साह। (बुझे स्तंभों की छाया पृ. 24)

पतझर – नवीन परिवर्तन। (पहले तुम्हारा खिलना पृ. 83)

सूर्य – आत्मविश्वास। (बुझे स्तंभों की छाया पृ. 72)

धूप – उल्लास।

ऊषा – नव जीवन।

कोहरा – वे लोग जिन्हें जन दिखाई नहीं देते एवं निराशा। (मैने देखा है पृथ्वी को रोते पृ. 85)

सूर्योदय – परिवर्तन। (दूब के तिनके पृ. 21)

लहरें – जीवन संघर्ष या नियति ।

घास – सामाजिक और आर्थिक स्थिति से पिछडे लोग। (वसंत के पार पृ. 100)

भेड़िया – अवसरवादी ताकत। (मैंने देखा है पृथ्वी को रोते पृ. 135)

सिरगाल – धूर्त, कपटी और झूठी हमदर्दी का दिखावा करने वाला। (वसंत के पार पृ. 54)

पिशाच – शोषक। (ढल रहा है दिन पृ. 108)

बगुला भगत – झूठे लोकसेवक जो जन को ठगते हैं। (ढल रहा है दिन पृ. 221)

6.4.2. नये प्रतीक

विजेन्द्र ने अपनी कविता में कुछ नये प्रतीकों का प्रयोग भी किया है। किंतु ये प्रतीक जनसाधारण की समझ में आ जाते हैं। कहीं कहीं प्रतीक पुराने लगते हैं, किंतु कवि ने उनमें नये भावों एवं विचारों को अभिव्यंजित किया है। प्रतीकार्थ या इंगित अर्थ में कवि ने अपनी ओर से ऐसे प्रयास नहीं किए हैं कि दुर्बोधता आ जाए।

मैग्मा – विज्ञान में ज्वालामुखी के भीतर का गर्म द्रव्य पदार्थ पर कविता में शोषित के भीतर का ताप। (ढल रहा है दिन पृ. 218)

काला जल –रूढि, संकीर्णता एवं मिथ्याचार या पाखंड। (ढल रहा है दिन पृ. 47)

जोति स्तंभ – पथ प्रदर्शक नेतृत्व।

(ढल रहा है दिन पृ. 52, मैंने देखा पृथ्वी को रोते पृ. 152, पहले तुम्हारा खिलना पृ. 21)

धन कुबेर – पूँजीवादी घराने। (ढल रहा है दिन पृ. 199)

पृथ्वी – कवि का मन। (मैंने देखा है पृथ्वी को रोते पृ. 41)

डेल्टा – परिवर्तन करने वाली कविता या कालजयी कविता। (मैंने देखा है पृथ्वी को रोते पृ. 72)

पालतू कुत्ता – श्रमिक और मजदूरों को सेठों और मिल मालिकों द्वारा कहना और समझना।
(मैंने देखा है पृथ्वी को रोते पृ. 102)

ठिठुरन – संघर्षशील स्थिति। (मैंने देखा है पृथ्वी को रोते पृ. 136)

लोहा – मेहनतकश व्यक्ति। (घना के पाँखी पृ. 67)

ब्रज की राधा – सरसों का पौधा। (घना के पाँखी पृ. 80)

जनपद की बेटी – सरसों को। (घना के पाँखी पृ. 117)

कल्ला – नवीनता या परिवर्तन। (पहले तुम्हारा खिलना पृ. 11)

पकना – समृद्ध होना। (पहले तुम्हारा खिलना पृ. 14)

भटकटैया – संघर्षशील और मेहनतकश। (पहले तुम्हारा खिलना पृ. 41)

उगान – नवीनता या परिवर्तन। (पहले तुम्हारा खिलना पृ. 91)

जड – परंपरा। (पहले तुम्हारा खिलना पृ. 99)

दानव – श्रमिक मजदूर का शोषण करने वाले। (बसंत के पार पृ. 13)

फलोदरा – संघर्ष करने वाले। (बसंत के पार पृ. 42)

काला साँप – शोषक का। (बसंत के पार पृ. 59)

बिजका – झूठे जनवादी कवि का प्रतीक। (दूब के तिनके पृ. 3)

थूहड़ – सर्वहारा का प्रतीक। (ऋतु का पहला फूल पृ. 18)

काला कुत्ता – उच्च वर्ग। (ऋतु का पहला फूल पृ. 93)

रंगा स्यार – धर्म के ठेकेदारों के लिए। (भीगे डैनों वाला गरूण पृ. 10)

मरगोजा – श्रमिक और संघर्षी व्यक्ति। (भीगे डैनों वाला गरूण पृ. 40)

विदूषक – नकली कविता करने वाले कवि। (भीगे डैनों वाला गरूण पृ. 49)

जड – परंपरा। (भीगे डैनों वाला गरूण पृ. 58)

प्लाज्मा – पदार्थ की महत्ता। (भीगे डैनों वाला गरूण पृ. 63)

धरती – कन्या किसान की। (धरती कामधेनु से प्यारी पृ. 26)

दैत्य – अमरीका जैसे प्रभुत्व वाले देश। (बेघर का बना देश पृ. 63)

गुलाब – नकली सौन्दर्य। (बेघर का बना देश पृ. 44)

हीरामन – किसान और मजदूर। (कठफूला बाँस पृ. 24)

स्फुलिंग – सत्य का पक्षधर। (आँच में तपा कुंदन पृ. 30)

6.5. काव्य रूप

आधुनिक युग में मनुष्य के जीवन में विसंगतियाँ, जटिलता, विखंडन, अभावमयता का प्रमाण बढ़ा है। मनुष्य के पास इतना समय नहीं है, कि वह सम्पूर्ण जीवन चरित, महाकाय रचनाओं को पढ़े। वह क्षणमात्र में पूरा जीवन जीना चाहता है। 'आज कवि या कलाकार ही नहीं, संपूर्ण मनुष्यता क्षण में जीती है, इसलिए खंडित अनुभूतियों और क्षण को ही काव्य का आधार बनाती है। इन छोटी अनुभूतियों के लिए काव्य का प्रबंधात्मक आधार अप्रासंगिक हो गया है।'[43] लंबी कविताओं में प्रबंधात्मक भावों और शिल्प का समायोजन करने का प्रयास हुआ है। वस्तु और शिल्प की दृष्टि से हिन्दी में महत्त्वपूर्ण लंबी कविताएँ लिखी गई हैं। लंबी कविता के नाम और शिल्प विधान को लेकर विद्वानों में मतभेद रहे हैं, विवाद रहा है। प्रबंध काव्य लिखने और पढ़ने का चलन कम हो गया है। कवि और पाठक 5–7–5 के हाइकू में सब कुछ पा लेना चाहता है। इसके बावजूद प्रबंध काव्य की गरिमा और अभिव्यक्ति क्षमता का विशिष्ट स्थान है। विजेन्द्र की कविता क्षणबोध

से प्रभावित या उत्पन्न नहीं लगती। उनके यहाँ हाइकू जैसी (हाइकू नहीं) छोटी कविता 'सौदा' (27 शब्दों की कविता जो आँच में तपा कुंदन में संकलित है) भी है, तो 'कठफूला बाँस' जैसी लंबी कविता भी। इनकी कविताओं में गीत, चतुष्पदी, सॉनेट, और आल्हा के साथ गद्य कविताओं का रूप भी मिलता है। उनकी लंबी कविताओं के पाँच संकलन 'उठे गूमड़े नीले', 'जनशक्ति', 'कठफूला बाँस', 'मैंने देखा है पृथ्वी को रोते' और 'ढल रहा है दिन' प्रकाशित है। विजेन्द्र की कविताएँ भाव, भाषा और शिल्प की दृष्टि से समृद्ध और प्रौढ़ है। काव्यात्मक गरिमा से कहीं भी कविता स्खलित नहीं हुई है। इनकी कविताओं के काव्य शिल्प को हम निम्न बिन्दुओं में देख सकते हैं।

6.6. छंद विधान

छंद का शाब्दिक अर्थ है बंधन। छंद का दूसरा नाम पिंगल भी है। 'पिंगल या छंदशास्त्र छंद अथवा पद्य रचना बंध का स्वरूप निरूपण करता है। वर्णो या मात्राओं के निश्चित क्रम एवं माप के द्वारा कविता की गति को यति द्वारा अनुशासित करने के लिए छंद अनिवार्य है। मात्रा व वर्ण व दोनों के निश्चित क्रम व माप व संख्या के साथ ही विराम, गति व लय तथा तुक आदि के नियमों से सम्पन्न रचना को पद्य कहते हैं। पद्य और छंद समानार्थक शब्द हैं।'[44] काव्य के शिल्प में छंद की भूमिका अहम रही है। कवि की कसौटी छंदों में होती है। कविता छंदबद्ध हो या छंदमुक्त, उसमें भावों की अभिव्यक्ति सहज होनी चाहिए। अन्यथा काव्यात्मक गरिमा का ह्रास होता है। यद्यपि आधुनिक काल के आते – आते हिन्दी कविता अपने परंपरागत छंदों से मुक्त होना आरंभ हो जाती है। निराला जैसे कवियों ने मनुष्य की स्वतंत्रता के भावना को महत्त्व देते हुए कविता को भी छंद से मुक्त कर दिया। फिर भी यह उल्लेखनीय है, कि ऐसा करते हुए भी कविता की आंतरिक लय का अनुशासन अनवरत बना रहा। विजेन्द्र की कविता में परंपरागत और नवीन छंदों का भरपूर प्रयोग हुआ है। परंतु उन्होनें दोनों ही रूपों में अपनी कविता की लय और तुक को नहीं मिटने दिया है। उनकी कविताओं में प्रयुक्त छंदों का विवरण ओर विवेचन इस प्रकार है।

6.6.1. बरवै

यह अर्द्ध सममात्रिक छंद है। इसके पहले और तीसरे चरण में क्रमशः 12 एवं दूसरे और चौथे चरण में क्रमशः 7 मात्राएँ होती हैं।

रचना का बल आखर, जीवन सार।

खनक सुरों से निपजे, कसकै तार।। (दूब के तिनके पृ. 16)

6.6.2. दोहा

यह अर्द्ध सम मात्रिक छंद है। इसके प्रथम और तृतीय चरण में 13 –13 मात्राएँ तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में 11 – 11 मात्राएँ होती है।

सहज सरल भाषा कहो, लगे देस की बात।
कवित सराहै नेक जन, जैसे झरते पात।। (दूब के तिनके पृ. 26)

6.6.3. रोला

यह सममात्रिक छंद है। प्रत्येक चरण में 11–13 के यति से 24 मात्रा का छंद होता है। अंत में दो गुरू का होना आवश्यक माना जाता है।

महाकाल की वक्र डाल पर खिला हुआ है।
फूल सुबह का हम दोनों को मिला हुआ है।
उत्सव आँखों का संग नियति का सिला हुआ है।
वस्त्रों में जब तक जीवन है पिला हुआ है।। (उदित क्षितिज पर पृ. 15)

6.6.4. आल्हा छंद

आल्हा छंद को वीर छंद भी कहा जाता है। इसका प्रयोग रासो कवि जगनिक ने परमाल रासो नामक काव्य में किया है। ध्यातव्य है कि इस छंद का कथ्य अक्सर ओज या आक्रोश भाव से भरा होता है। जब इस छंद को लय में सुनाया जाता है तो इसके सुनने वाले के मन में उत्साह और उत्तेजना का भाव उत्पन्न हो जाता है। यह मात्रिक छंद है। यह छंद दो पदों के चार चरणों में रचा जाता है। जिसमें यति 16, 15 पर नियत होती है। छंद में विषम चरण का अंत गुरू तथा सम चरण का अंत गुरू लघु से होना अनिवार्य है। विजेन्द्र ने 'बसंत के पार' कविता संग्रह में 'एक था मानुख' शीर्षक से लिखी गई कविता में इस छंद का प्रयोग किया है। यह छंद परंपरागत छंद है एवं आज हिन्दी कविता में विलुप्त प्राय है।

'कौन बिधाता ने खींची है,
भाग रेख जो पढ़ी न जाय।
जित देखो उत दुख ही दुख है,
सुख की कौंध दिखे तक नाय। (बसंत के पार पृ. 69)

6.6.5. सॉनेट

विजेन्द्र ने अपनी कविता में सॉनेट छंद का भी प्रयोग किया है। विजेन्द्र के काव्य गुरू त्रिलोचन ने सर्वप्रथम हिन्दी कविता में इसका प्रयोग किया। विद्वानों का मानना है, कि इटली में ग्येतोन द रेस्तो नामक कवि ने तेरहवीं सदी में सबसे पहले सॉनेट का प्रयोग किया था। बाद में इतालवी कवि पेट्रार्क ने सॉनेट में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए। अंग्रेजी कवि वैट और सरे पैट्रोक ने भी सॉनेट के स्वरूप में कुछ परिवर्तन कर कविता की। उन्होनें पेट्रार्क के 8 – 6 के विभाजन की जगह 12–2 और 4–4–4–2 का ढाँचा अपनाया। शेक्सपियर के सॉनेट सरे से प्रभावित हैं, किंतु सॉनेट में उन्होंने भी कुछ प्रयोग किये और भावपक्ष को भी समृद्ध किया। स्पेंसर ने भी सॉनेट में कुछ बदलाव किया किंतु रूप विधान शेक्सपियर और सरे जैसा ही रखा। विजेन्द्र ने स्पेंसर के सॉनेट के रूप को अपनी कविता में जगह दी। 'बसंत के पार' कविता संग्रह के 'मर्म' नामक कविता से सॉनेट का एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

'भूखी आँखे देख रही हैं। सूख रही है
हरी पत्तियाँ। चेहरे थके नबे कुम्हलाये
निरी पसलियाँ अंधकार में सीझ रही है
पानी गिरा आँख से। कब निर्झर वेग बहाये

कंकड पाषाणों ने। अब ढाँढ़स कौन बँधाये
नहीं तनिक भी रजत उजाला। काला काला
दिखता है अंदर का भव। आशा कहाँ अघाय ।
उजड़ा पूरा वनखण्ड पडा है। मुझे माला

कहाँ पहनने को। वैभव जन को मिला है
कहाँ आज तक। करनी पडी याचना हर दम
उनसे जो भरे हुए खाली हैं। अतल हिला है
जल का अपनी छाया से। सुंदर हो सदा सदय

अरूप – रूप – ऋत नित्य रचा है जो कविता में –
कवि ने। अनगिन ब्रह्माण्ड छिपे हैं उसके सविता में।' (बसंत के पार पृ. 76)

6.7. विजेन्द्र की कविता में शैली वैविध्य

श्यामसुंदर दास के अनुसार 'किसी कवि या लेखक की शब्द योजना, वाक्यांशों का प्रयोग, वाक्यों की बनावट और उनकी ध्वनि आदि का नाम शैली है।'[45] इस कथन से तात्पर्य हुआ, कि शैली रचनाकार के व्यक्तित्व की पहचान है, उसके कवि व्यक्तित्व का हिस्सा है। विजेन्द्र की कविताओं में शैली की विविधता है। उनकी कविताओं में वर्णनात्मकता, विवरणात्मकता, आत्मकथ्यात्मक, उद्बोधनात्मक, सूक्त्यात्मक, व्यंग्यात्मक, नाट्यात्मक आदि शैलियाँ प्रयुक्त हुई है। उनकी अधिकांश कविताओं में बातचीत की लय है। कविताओं को पढ़कर ऐसा लगता है, जैसे वे कहानी कह रहें हों। 'लादू' 'तस्वीरन' 'मागो' 'मिट्ठन' 'दादी माई' 'रूक्मिणी' 'नत्थी' 'बैनी बाबू' जैसे पात्रों को लेकर लिखी गई उनकी कविताओ में इस लयात्मकता को देखा जा सकता है। उनके कविता संग्रह 'मैनें देखा है पृथ्वी को रोते' की एक लंबी कविता 'आधी सदी' में कवि ने अपने जीवन संघर्ष को आत्मकथात्मक रूप में लिखा है। उन छोटी और बड़ी बातों का जिक्र किया है जो कवि के व्यक्तित्व और कृतित्व के निर्माण में सहायक साबित होती है। इस कविता में कवि पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग करते हुए कहता है –

'माँ दुख कर रोती थी
नहीं किसी से कहना कुछ भी
अगिन ताप अंदर सहती थी
सुनता था कहते उनको
हँस हँस कर कहावत भली बनी थी
'ओलम टी टी धम्म
बाप पढे न हम्म' कहकर।' (मैने देखा है पृथ्वी को रोते पृ. 15)

कथन शैली से युक्त इस कविता में विजेन्द्र, उनकी मॉ और उनकी पत्नी उषा जी, के मध्य संवाद का उदाहरण द्रष्टव्य है –

'गुपचुप बातें माँ करती मुझ से
कैसे पढ़ पाओगे आगे

चुकते दिखते हैं साधन सारे
घर में नहीं रहा धन इतना
जो काशी पढ़ पाओ जाके
ऊषा को भनक पड़ी
इस गुपचुप की
लिये कन्सुए लुक छिप कर उसने
माँ से कहा न हों बिल्कुल भी चिंतित
सारे गहने दिये हाथ में उनके
यह आये यदि काम पढ़ाई के
तो मैं अपने को धन्य कहूँगी।' (मैंने देखा है पृथ्वी को रोते पृ. 31)

विजेन्द्र की कविता में ठेठ वर्णनात्मक शैली की लिखी कविता भी सामने आती है। इन कविताओं की विशेषता यह है कि ये क्रियात्मक वर्णन करती है। 'बनते मिटते पाँव रेत में' कविता संग्रह की एक कविता 'दादी माई' का एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

'पतली – दुबली, लौट – तबे सी काली लुक्टा
अधजली लकड़ियाँ
स्वभाव से तेज धार हँसिया की
मुँह पोपल है, आँखें छोटी चमकीली मकोय – सी
नाक सुगढ़, नुकीली, लंबी
सुआ पहाड़ों की जैसी।' (बनते मिटते पाँव रेत में पृ. 106)

आत्मकथात्मक या स्वगत शैली मे कवि स्वयं के बारे में अथवा स्वयं से कहता है। नई कविता में इसे 'मैं' शैली भी कहा गया। कवि का 'मैं' वास्तविक मैं भी हो सकता है, और सामाजिक भी। एक सच्चा कवि और उसका सामाजिक दायित्व कैसे उसे व्यष्टि से समष्टि की ओर प्रेरित कर रचना में सार्वजनीन अभिव्यक्ति देता है। इसका उदाहरण विजेन्द्र अपने कविता संग्रह 'धरती कामधेनु से प्यारी' के 'नव पथ आएगा' कविता में देते हैं–

'नहीं रहूँ मैं
तो क्या
शब्द, चित्र, छंद

ध्वनियाँ जीवित हैं।
नहीं बेध पाएगा
उन्हें काल का बल्लम।' (धरती कामधेनु से प्यारी पृ. 22)

6.7.1. सूक्तियाँ

विजेन्द्र की कविता लोक से जुड़ी कविता है। लोक में सूक्तियों का विशिष्ट स्थान है। इन सूक्तियों में जीवन के मर्म एवं अनुभव छिपे होते हैं। कबीर, तुलसी, रहीम, वृन्द आदि की सूक्तियाँ आज भी प्रासंगिक हैं। विजेन्द्र की कविता में भी अपने अनुभव सूक्तियों के रूप मे अभिव्यक्त हुए हैं। ये आकृतियाँ तुम्हारी, ऋतु का पहला फूल, धरती कामधेनु से प्यारी, चैत की लाल टहनी, पकना ही अखिल है, पहले तुम्हारा खिलना आदि काव्य संग्रहों में सूक्तियों का प्रयोग देखा जा सकता है।

'संगठन में शक्ति होती है' । (पहले तुम्हारा खिलना पृ. 110)
'मूर्त को अमूर्त और धुँधला होने से बचाना ही शब्द साधना है।' (पहले तुम्हारा खिलना पृ. 30)
'भौंकने और रचना में फर्क है।' (ये आकुतियाँ तुम्हारी पृ. 70)
'खिला फूल सब को दिखै, दिखै न पिचता पोर।'
(अर्थात अच्छा परिणाम सभी देखते हैं पर उसके पीछे का संघर्ष नहीं दिखाई देता।
(दूब के तिनके पृ. 1)
'गहरे तल मे बैठकर, विरल साँच नित पाय।' (दूब के तिनके पृ. 41)
'बिना यतन कुछ हो नहीं, सीख समय की मान।' (दूब के तिनके पृ. 92)

6.7.2. कियापदों का प्रयोग

विजेन्द्र की कविता में क्रियापदों का भरपूर प्रयोग हुआ है देखा, जाना, सुना, पहचाना आदि क्रिया पद कवि की अनुभव शैली की ओर इशारा करते हैं। कवि अपने लोक की प्रत्येक क्रिया को सूक्ष्म निरीक्षण के साथ महसूस करता है, और फिर आत्मसात कर पाठकों तक पहुँचाता है। साक्षी के रूप में कवि का उपस्थित होना कवि के दायित्व की गंभीरता को प्रकट करता है। –

'पहचानता हूँ ,
ध्वस्त होते आलोक स्तंभों को।' (मैने देखा है पृथ्वी को रोते पृ. 114)

——————————————————————

'देखो
सूर्योदय नरकुलों में गूँजता
अग्निचक्र दोलित सघन वन
देखो, जलता तेलंगाना, कश्मीर, बंगभूमि।' (कठफूला बाँस पृ. 51)

———————————————————————

'तुम सुनो
उठ रहीं आवाजें धरती के गर्भ से
रचा जा रहा जनन विज्ञान नूतन।' (कठफूला बाँस पृ. 26)

————————————————

'समझ रहा था
धन से चलते रथ के पहिये
धन से ही घोडी सरपट दौड़े।' (मैंने देखा है पृथ्वी को रोते पृ. 16)

———————————————————————

'मुझे लगा –
यह धरती से जुदा रहने की
कोरी सनक है।' (बनते मिटते पाँव रेत में पृ. 15)

6.8. अलंकार

अलंकार शिल्प का महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। कविता में रमणीयता और प्रभावात्मकता बढाने में इनका उपयोग किया जाता है। विजेन्द्र की कविताओं में अलंकारों का प्रयोग प्रभावात्मकता और संप्रेषणीयता के चलते हुआ है, क्योंकि विजेन्द्र समकालीन कवि हैं और उनकी कविता में अलंकारों का अध्ययन इस उद्‌देश्य से परे है, परंतु जहॉ कही भी विजेन्द्र अपनी बात, अनुभव या यथार्थ का चित्रण करते हैं, वहाँ संप्रेषणीयता के लिए अनायास इनका प्रयोग हुआ है। कुछ अलंकारों का प्रयोग द्रष्टव्य है –

'जनमती हैं हर रोज
बडी बडी इच्छाएँ
जैसे टूटे अरावली के पीछे से
उठे गाढे बादल।' ***उदाहरण अलंकार*** (पहले तुम्हारा खिलना पृ. 22)

———————————————————————————————

'तुम्हारा प्यार कच्चे लोहे की तरह भारी है।' ***उपमा अलंकार*** (पहले तुम्हारा खिलना पृ. 37)

————————————————————————————————

'ढली साँझ का सूरज छिपने को
फैंक रहा है जाल
हमें कसने को।' ***मानवीकरण अलंकार*** (मैंने देखा है पृथ्वी को रोते पृ. 24)

———————————————————————————

'उन अँधेरी और सकरी गलियों में
एक वाष्पाकुल सन्नाटा चीखता रहा।' ***विरोधाभास अलंकार*** (त्रास पृ. 15)

इस प्रकार विजेन्द्र की कविता में अलंकार सादगी के साथ अपने प्रभाव को पाठक के चित्त पर छाप छोड़ने के लिए आते हैं। कविता को पढ़ते समय कवि के भाव गहराई में उतरते है। इस उतरान में अलंकार सहयोग करते है। न तो पाठक को अलंकार पकडते हैं, और न ही, कवि ने कविता को अलंकारों के लिए लिखी है। केवल कविता में शब्द की क्षमता बढाने, भावों को उत्कर्ष प्रदान करने या फिर कथन भंगिमा में बदलाव लाने के लिए उपयोग किया है।

6.9. निष्कर्ष

सारांशतः विजेन्द्र का काव्य समकालीन काव्य है, लोक संघर्ष का काव्य है। कवि ने अपनी बात उस लोकभाषा में कही है, जिसे हम सब बोलते और समझते हैं। तद्भव और देशज के साथ साथ स्थानीय शब्दों का प्रयोग कवि ने भरपूर किया है। बिम्ब की सहायता से कवि ने अपने कथ्य को और प्रभावशाली बनाते है। शैली की दृष्टि से कवि ने वक्तव्य, संवाद, वर्णन और विवरण का उपयोग किया है। और छंद की दृष्टि से लुप्तप्राय आल्हा जैसे छंद को अपनी कविता में स्थान दिया। समकालीनता में हम अपने लोक से दूर होते जा रहे है। आजादी के बाद आज भी हमारे सपने पूरे होते नहीं दिख रहे है ऐसे में इस छंद को रचकर कवि अपने आक्रोश को व्यक्त करता है। ऐसे में विजेन्द्र एसे कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं जो भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से लोक के नजदीक वास्तविक समकालीन है।

संदर्भ

1. जगन्नाथ पंडित, नागार्जुन का काव्य और युग : अंतःसम्बन्धों का अनुशीलन, पृ. 216
2. रामविलास शर्मा, मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य, पृ. 287
3. डॉ. रणजीत, प्रगतिशील हिन्दी कविता, पृ. 252
4. सुमित्रानंदन पंत, पल्लव की भूमिका, पल्लव (कविता संग्रह)
5. श्रीराम त्रिपाठी, धूमिल और परवर्ती जनवादी कविता, पृ. 83
6. रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि, भाग – 1,पृ. 115 – 118
7. श्रीराम त्रिपाठी, धूमिल और परवर्ती जनवादी कविता, पृ. 84
8. वीरेन्द्र नारायण सिंह, फणीश्वरनाथ रेणु का कथा साहित्य, पृ. 7
9. विजेन्द्र, बनते मिटते पाँव रेत में (कविता संग्रह), पृ. 29
10. विजेन्द्र, अरावली, ऋतु का पहला फूल (कविता संग्रह) पृ. 166
11. विजेन्द्र, उगान, पहले तुम्हारा खिलना (कविता संग्रह) पृ. 92
12. विजेन्द्र, ओ एशिया, कठफूला बाँस (कविता संग्रह), पृ. 92
13. संपादक अज्ञेय तार सप्तक, पृ. 301
14. वही पृ. 11
15. संपादक ध्रुव शुक्ल, त्रिलोचन संचयिता, पृ. 493 – 495
16. विजेन्द्र, पकना ही अखिल है, पृ. 112
17. विजेन्द्र, घना के पाँखी (कविता संग्रह) पृ. 13
18. वही, पृ. 22
19. संपादक प्रेमशंकर रघुवंशी, अमीर चंद वैश्य के लेख से उद्धृत, लेखन सूत्र पत्रिका, पृ. 137
20. विजेन्द्र, अरावली, ऋतु का पहला फूल (कविता संग्रह) पृ. 166
21. संपादक प्रेमशंकर रघुवंशी, महेश चंद्र पुनेठा के लेख से उद्धृत, लेखन सूत्र पत्रिका, पृ. 122
22. विजेन्द्र, ढल रहा है दिन, पृ. 19
23. वही पृ. 86
24. विजेन्द्र, कवि ने कहा, पृ. 124
25. वही पृ. 30
26. विजेन्द्र, धरती कामधेनु से प्यारी, पृ. 112
27. विजेन्द्र, काली माई, घना के पाँखी, पृ. 131

28. संपादक प्रेमशंकर रघुवंशी, नरेन्द्र पुण्डरीक के लेख से उद्धृत, लेखन सूत्र पत्रिका, पृ. 220
29. रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि, भाग – 1, पृ. 96
30. कुमार विकल, सौन्दर्यशास्त्र के तत्त्व, पृ. 201
31. केदारनाथ सिंह, आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान, पृ. 23
32. जगन्नाथ पंडित, नागार्जुन का काव्य और युग : अंतःसम्बन्धों का अनुशीलन, पृ. 229
33. सत्यदेव मिश्र, पाश्चात्य काव्य शास्त्र, अधुनातन संदर्भ, पृ. 355
34. डॉ. नगेन्द्र, काव्य बिम्ब, पृ. 5
35. विजेन्द्र, नत्थी, धरती कामधेनु से प्यारी, पृ. 144 एवं 148
36. विजेन्द्र, घना के पाँखी, पृ. 13
37. वही, पृ. 22
38. जगन्नाथ पंडित, नागार्जुन का काव्य और युग : अंतःसम्बन्धों का अनुशीलन, पृ. 230
39. श्रीराम त्रिपाठी, धूमिल और परवर्ती जनवादी कविता, पृ. 94
40. सत्यदेव मिश्र, पाश्चात्य काव्य शास्त्र, अधुनातन संदर्भ, पृ. 350
41. श्रीराम त्रिपाठी, धूमिल और परवर्ती जनवादी कविता, पृ. 94
42. आलोक गुप्त, जटिल संवेदना के कवि मुक्तिबोध, पृ. 48
43. जगन्नाथ पंडित, नागार्जुन का काव्य और युग : अंतःसम्बन्धों का अनुशीलन, पृ. 252
44. रामबहोरी शुक्ल, काव्य प्रदीप, पृ. 255
45. श्यामसुंदरदास, साहित्यालोचन, पृ. 164

अध्याय – 7

विजेन्द्र की समकालीन कविता को देन

हिन्दी कविता की समकालीन काव्यधारा की लोकधर्मी काव्य परंपरा के कवियों में विजेन्द्र का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विजेन्द्र की कविताओं में नागार्जुन – त्रिलोचन – केदार की कविताओं का राग है, निराला का सा आक्रोश है, और प्रकृति की क्रियात्मकता का अद्यतन प्रस्फुटन है। विजेन्द्र की कविता समकालीन कविता की उस धारा की कविता है, जो लोक के साथ साथ चलते हुए लोक एवं लोकतंत्र की पीड़ा को शब्दगत करती है। विजेन्द्र की कविता मनुष्य की कविता है। उनकी कविता के केन्द्र में मनुष्य है, अतः उनकी कविता का मूल्यांकन मनुष्य और मनुष्यता के वृत्त में ही किया जाना चाहिए। इसका कारण स्वयं विजेन्द्र बताते हैं कि कविता का कोई देश नहीं होता वह सार्वभौमिक होती है, ऐसे में वही कविता उपयोगी और महत्त्वपूर्ण होती है, जिसके केन्द्र में मनुष्य और उसकी संवेदना मौजूद हो।

हिन्दी कविता में बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध और इक्कीसवीं सदी के आरंभ में कुछ बदलाव आये। यह बदलाव भूमंडलीकरण के जादुई और लुभावने आकर्षण के कारण था। इसका प्रभाव यह हुआ कि पूँजीवादी सभ्यता का जादू, आम आदमी के सिर चढ़कर बोल रहा था। इसका परिणाम यह हुआ, कि लोकधर्म को चुनौती देने वाले कारक यथा मुक्त बाजारवाद, विकृत उपभोक्तावाद, राजनीतिक अधिनायकवाद, पूँजीवादी प्रभुता, भ्रष्ट आचरण, श्रम का अपमान, मूल्यों का विघटन, हिंसक वृत्तियों का उभार, जातिगत एवं धार्मिक उन्माद आदि उत्पन्न हुए। यद्यपि ये कारक वैश्विक थे, पर इसकी परिधि में आम भारतीय आ गया था। साथ ही साथ विजेन्द्र ने यह भी महसूस किया कि उस समय के वे साहित्यकार जो लोक की बात कर रहे थे, वे भी भटकाव की ओर हैं। भले ही उनका कारण चाहे जो भी रहा हो। खैर, यह सब होता देख विजेन्द्र ने इस लोकतांत्रिक खतरे को भाँपा और अपनी वैचारिक अभिव्यक्ति के लिए कविता को चुना। साहित्य की विधा में कविता को ही चुनने के पीछे कवि का यह तर्क रहा, कि समकालीन परिप्रेक्ष्य में कविता अधिक संप्रेषणीय है। विजेन्द्र का कथन है – 'कविता मेरे लिए एक उत्कृष्ट उत्पादक श्रम है। यह श्रम मैं अपने देश की जनता की सेवा के लिए करता हूँ। मेरे लिए साहित्य अपने देश की जनता की सेवा का ही एक रचनात्मक विकल्प है।.......... जनता की सेवा कविता कई तरह से करती है। एक तो मैं उसके सतत् संघर्ष में शिरकत कर उसका पक्ष लेते हुए अनुभव करता हूँ। दूसरे, यदि सामान्य जन मेरी कविता पढ़े तो उसे लगे, कि मैं उसके जीवन, परिवेश या सुख – दुख की बात भी कह रहा हूँ। तीसरे, वह अपनी रचनात्मक क्षमताओं के बारे में सजग

होकर अपनी शक्ति को पहचाने। कलाकृति से उसका मन उन्नत हो, अपने अधिकारों के लिए वह संघर्ष करे, वह समझे कि वे कौनसी शक्तियाँ हैं जो उसका शोषण करती है, उसे आगे बढ़ने से रोक रहीं हैं। समाज में वे कौनसी ताकतें हैं, जो उसकी मुक्ति के लिए संघर्षरत हैं, यही वजह है कि कविता मुझे कलाकृति होते हुए भी एक अस्त्र लगती है। ऐसा अस्त्र जो जनता के वर्ग शत्रुओं के विरूद्ध काम आ सके। जो जनविरोधी है उसके विरोध में कविता खड़ी हो। उसमें श्रम का महत्त्व हो, उसका सौन्दर्य झलके, जनता को संगठित होने का आह्वान करे। उसमें जनता के प्रति सामाजिक अन्याय का प्रतिरोध भी हो।'[1] इस कथन में विजेन्द्र के कवि कर्म के प्रति उनकी गंभीरता और गुरूतर दायित्व बोध की झलक दिखाई पड़ती है। सच्चे समकालीन कवि का महत्त्व इसी बात से आँका जा सकता है, कि वह कवि कर्म को किस भाव और उद्देश्य से देखता है। ऐसे में यह कहना अन्यथा नहीं होगा, कि विजेन्द्र ने ऐसे समय में लोकधर्म का गुरूतर दायित्व वहन कर यथार्थ को स्पष्ट करने का काम किया। यद्यपि व्यवस्था कवि के पक्ष में नहीं थी। फिर भी पूरे जूनून के साथ कवि ने अपना कविधर्म निभाया। विजेन्द्र ने केवल लोक को केन्द्र में रखा और किसी भी ऐसी आलोचना, जो लोक का विरोध करती रही उसका प्रतिरोध किया। इतना ही नहीं विजेन्द्र ने इन उपस्थित चुनौतियों का सामना करते हुए आने वाले समय का मार्ग तय करने हेतु कविता का स्वर निराला, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल की भाँति स्पष्ट प्रखर और मुखरित अभिव्यक्ति का रखा। सही मायने में विजेन्द्र इसी परंपरा के कवि हैं। समकालीन कवि हैं।

विजेन्द्र ने समकालीन कविता के समकालीन शब्द को अपने लेखन में अनेक बार स्पष्ट किया है। वे समकालीन को युग संदर्भ से जोड़ते हुए उसे सार्वकालिक स्वरूप प्रदान करते हैं। इनका मानना है, कि समकालीन शब्द का सामान्य अर्थ ग्रहण नहीं कर विशेष अर्थ ग्रहण करना चाहिए। उनके अनुसार समकालीनता एक समय में रचना करने वाले कवियों की रचना से संबंधित कविता नहीं है, अपितु उस कविता से है, जिसकी प्रासंगिकता प्रत्येक काल में है अर्थात जिसका महत्त्व कल भी था, आज भी है और आगे भी रहेगा।

कवि का मानना है कि समकालीन कविता की रचना के लिए कवि का आचरण और कवि कर्म दोनों उत्कृष्ट होने चाहिए। विजेन्द्र शब्द को ब्रह्म नहीं मानते वे शब्द को परिवर्तन का साधन और कारक मानते है। उनका मानना है कि शब्द का इस्तेमाल मानवीय पहलुओं के चित्रांकन के

लिए ही हो तो उसका सामाजिक उपयोग माना जाता है। कवि के शब्द जीवन से निसृत होते हैं। 'ऋतु का पहला फूल' में वे कहते हैं –

'शब्द जन्म लेते हैं जीवन की क्रियाओं से
उनमें जीवन का अनुपम बल है
शब्दों के गहरे मन में
छिपी हुई है
स्वर की महिमा अपार।'[2]

विजेन्द्र का कहना है कि कवि को अत्यन्त सतर्क होकर काम करना चाहिए। कवि कर्म साधना है। अपने काव्य संग्रहों में विजेन्द्र ने इसे अनेक स्थलों पर अपने कविता संग्रहों में उद्धृत किया है। यहाँ तक कि बार – बार लिखा है। (बार बार लिखने का कारण है कि कवि अपनी बात पर दृढ है) वे लिखते हैं, 'मूर्त को अमूर्त और धुँधला होने से बचाना ही शब्द साधना है।'[3] रंगनायक कविता मे उन्होने लिखा है, 'कवि कर्म अनाड़ियों का मनोरंजन नहीं हो सकता।'[4] कभी मैथिलीशरण गुप्त ने भी इस संदर्भ में लिखा था, 'केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए, उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।' बहरहाल इतना ही कहना पर्याप्त है, कि विजेन्द्र ने कवि कर्म, शौक या मन बहलाने के साधन के रूप में नहीं चुना, बल्कि संवेदना को मूर्त रूप देने के लिए ही इसका चयन किया गया। वे यह भी तर्क देते हैं कि कविता शीघ्र परिवर्तनगामी है, संविधान और लोकतंत्र के मूल्यों को सही रीति से प्रस्तुत करने में स्वयं विजेन्द्र इसमें सहूलियत महसूस करते है। एक बात यह भी है कि कविता कम समय में व्यक्ति तक संवेदना प्रेषित कर सकती है। जबकि अन्य विधाओं के लिए अतिरिक्त समय की जरूरत होती है।

विजेन्द्र की कविता सामान्य मनुष्य को केन्द्र में रखकर लिखी गई कविता है। आम आदमी को जानने के लिए वे सर्वप्रथम सामंत से सामान्य बने। विजेन्द्र पाल सिंह से विजेन्द्र बने। (यह उल्लेखनीय है कि विजेन्द्र का जन्म सामंती परिवार में हुआ और उनका प्रारंभिक नाम विजेन्द्रपालसिंह था, पर कवि को सामंती राग से घृणा हुई और स्वयं को विजेन्द्र बनाया) लोक में गये, आम आदमी को जूझते देखा, और फिर अपनी कलम से उनके अंदर की जिजीविषा और संघर्ष को कविता का आधार बनाया। लोक के लिए लोक की कविता की। इस सबके के लिए कवि को लंबी संघर्ष यात्रा करनी पड़ी है। कवि ने अपनी जन्मभूमि धरमपुर से लेकर अपनी कर्मस्थली भरतपुर और चूरू और जयपुर के संघर्षशील व्यक्ति को देखा, जाना, समझा, सुना और

फिर अपनी कविताओं में उन्हें चरित्रांकित कर उन मूलभूत समस्याओं से पाठक को परिचय कराया जो आज भी भारत की समस्याएँ ही हैं। उनमें किसी भी प्रकार का सुधार नहीं हुआ। आजादी के लगभग 70 वर्ष बाद भी हम उन संकीर्ण और तुच्छ मानसिक और भौतिक समस्याओं से जूझ रहे हैं, जिनका निपटारा किया जा सकता है। ऐसी ही कुछ कविताओं में विजेन्द्र ने इन समस्याओं को मूर्त रूप दिया है। उनमें 'तस्वीरन बड़ी हो चली' में साम्प्रदायिकता की समस्या, 'मिट्ठन' कविता में धार्मिक आस्था के अंधानुकरण एवं कला की उपेक्षा, 'लोग भूले नहीं हैं' में कानसिंह के माध्यम से किसानों की बेकद्री, 'दादी माई' के माध्यम से बेबस वृद्धा की व्यथा और मिथ्या सामाजिक दवाब का चित्रण किया। इतना ही नहीं कुछ अन्य पात्रों मागो, लादू, गंगोली, साबिर, अल्लादी शिल्पी, रमदिल्ला के माध्यम से कवि ने अपने परिवेश को बराबर संभालकर याद किया। विजेन्द्र की कविता में आये ये सभी पात्र सजीव और वास्तविक रहे है बल्कि यह कहना सार्थक होगा कि विजेन्द्र ने इनको प्रतिनिधित्व देकर भारत के उन तमाम उपेक्षित और संघर्षशील लोगों के जीवन को कविता में रूपायित किया है। विजेन्द्र कहते है कि ये केवल पात्र नहीं हैं। ये भारत के जनजीवन का सजीव चित्रण हैं। इनमें किसान, श्रमिक, मजदूर, नौकर आदि सभी ग्रामीण और शहरी लोग हैं। ये वे लोग हैं, जिन्होने अपने श्रम के बूते भारत के हर व्यक्ति को सुखी, साधन सम्पन्न एवं उसके परिवेश को सौन्दर्यशाली बनाया है। ये वे लोग हैं, जिन्होने लोकतंत्र की स्थापना के लिए अंग्रेजों से लोहा लिया, पर विडंबना यह है, कि आज ये ही लोग सर्वाधिक उपेक्षित और विपन्न है। इनका जीवन अत्यन्त संघर्षी है। इनके जीवन की समस्याएँ कभी खत्म होने का नाम ही नहीं लेती। कवि ने इन श्रमशील और जुझारू जीवनचरित्रों से जुड़ाव रचकर कविता को नया सौन्दर्यशास्त्र प्रदान किया। जिसका केन्द्र मनुष्य और उसका परिवेश है जिसमें वह व्यावहारित है। वे अपने इस कथन की पुष्टि अपनी कविताओं में करते हैं – 'इस सृष्टि का केन्द्र मनुज है .....जब तक धरती पर जीवन है, मुझे दिखाई देगा वह।'[5] वे मनुष्य की क्रिया शीलता से प्रभावित है जिसका विवेचन वे अपनी कविता में करते है। 'मनुष्य की क्रियाशीलता से मैं सदा स्पंदित रहा हूँ।'[6]

विजेन्द्र पहले कवि हैं, जिन्होने श्रमशील और मेहनतकश लोगों के सौन्दर्य पर अपना नया दृष्टिकोण स्थापित किया है। उनका मानना है कि अब तक कविता में लोक के उत्सवी या सांस्कृतिक पक्ष का चित्रण कर लोक को व्याख्यायित किया जाता रहा है। ऐसे में लोक का अधूरा पक्ष सामने आता रहा। इस अधूरेपन को लोक के संघर्ष के बिना पूरा नहीं किया जा सकता। भारतीय किसान और श्रमिक के अन्तस् की पीड़ा को अभिव्यक्ति नहीं देकर केवल उसके

सांस्कृतिक और सामाजिक झाँकी को दिखाना उसकी उपेक्षा करना है। यह सच्चा और अच्छा सौन्दर्य नहीं है। सच्चा सौन्दर्य तो उस जीवन की क्षमताओं और सामर्थ्य का चित्रांकन करते हुए उसके संघर्ष और अभावों के साथ साथ उसकी जिजीविषा को अभिव्यक्ति देना है। विजेन्द्र सौन्दर्य के दो पक्ष मानते हैं। एक सौन्दर्य और दूसरा कुत्सित सौन्दर्य। वागर्थ 2008 में केदारनाथ सिंह की प्रकाशित कविता 'फसल' के एक अंश पर विजेन्द्र की तीखी टिप्पणी उल्लेखनीय है। डॉ. सिंह लिखते हैं– 'मैं उसे (किसान) वर्षों से जानता हूँ / एक अधेड़ किसान / थोड़ा थका/ थोड़ा झुका हुआ / किसी बोझ से नहीं /सिर्फ धरती के गुरूत्वाकर्षण से / जिसे वो इतना प्यार करता है।'[7] इस पर विजेन्द्र ने लिखा। 'यहाँ कुछ सवाल हैं। क्या सचमुच किसान की कमर जीवन के किसी बोझ से न झुककर धरती के गुरूत्वाकर्षण से झुकती है? यहाँ अभावग्रस्त किसान की ट्रेजिक पीड़ा न बताकर गुरूत्वाकर्षण शब्द से केवल चमत्कार पैदा किया गया है। लाखों किसानों ने आत्महत्याएँ की। क्या वे गुरूत्वाकर्षण के बोझ से दबे हुए थे? अगर कोई किसान इस कविता को पढ़ेगा तो कवि पर आक्रोशित होगा और कविता पर भी। अपने खेत में रात दिन वो अपना खून पसीना बहाकर जो श्रम करता है, उसका मार्मिक रूप चमत्कार से ढक दिया गया है। यह कुत्सित सौन्दर्यशास्त्र है जो जीवन की कठिन परिस्थितियों से परिचित नहीं होने देता। विजेन्द्र कविता में चमत्कार को पसंद नहीं करते थे। आचार्य शुक्ल ने भी कविता में चमत्कारवाद का विरोध किया था। डॉ. सिंह की इस कविता को पढकर आलोचकों ने उन्हें भाषा का जादूगर कहा था, परंतु इसके विपरीत विजेन्द्र अपने जनपद के किसान से एकात्म हो चुकें हैं। उनकी कविता 'मेरे जनपद का कृषक' में किसान का वास्तविक चित्र एवं वास्तविक करूणा दिखाई देती है –

'क्या करूँ
मैं इतनी किरणों का
ओ उगते भगवान भास्कर
बिना धुला
मुँह लेकर
बालक खड़ा हुआ
रोता है
पथ पर
यह सारे दिन भरे धूप के

बने बसन हैं
जैसे मेरे
करूँ क्या इनका
मेरे जनपद का कृषक
भूखा सोता है
थक कर।'[8]

किसानों के प्रति यह विचार ही कवि को सच्चा समकालीन कवि होने का गौरव प्रदान करता है। इतना ही नहीं विजेन्द्र की कविताओं में, विगत दशकों में लिखी जा रही उत्तर आधुनिक कविताओं, कलावादियो के आधुनिक स्वरूप का प्रतिरोध भी है, जिसमें जन को संत्रस्त, विसंगति बोध से युक्त दिखाया गया है उनकी कविता में क्रियाशील मनुष्य है, संघर्ष की दास्तान है, रोजमर्रा का जीवन है। कविता के इस परिदृश्य को लेकर एकांत श्रीवास्तव अपनी चिंता जाहिर करते हुए लिखते हैं – 'इधर हिन्दी काव्य परिदृश्य में भूख, गरीबी, शोषण, अन्याय जैसे शब्द ही गायब हो गये हैं, गो कि इन समस्याओं से हमारे देश ने निजात पा ली है। 'स्त्री – विमर्श' की कविता में 'तोड़ती पत्थर' की श्रमजीवी स्त्री गायब है, तो 'दलित विमर्श' में हल्कू और गोबर। विजेन्द्र की कविता देश के उपेक्षित – तिरस्कृत जन को अपना विषय बनाती है।'[9] विजेन्द्र की कविता के समकालीन स्वरूप को स्पष्ट करते हुए प्रसिद्ध आलोचक अरूण कमल लिखते हैं – 'विजेन्द्र की कविता कुलीन चारण कवि' – परंपरा के समानांतर अजेय प्रवाहित होती रही है। स्वयं प्रगतिशील कविता में यदा – कदा होने वाले विचलनों के प्रति सख्त चेतावनी है, विजेन्द्र की कविता।'[10]

विजेन्द्र का कवि व्यक्तित्व लोकोन्मुखी है और उनकी कविता लोक की कविता है संविधान में आस्था रखने वाली कविता है। कवि ने अपनी डायरी में लोक के संदर्भ में लिखा है – 'लोक वह जो इस समाज के निर्माण में लगा हुआ है। किसान या श्रमिक वह लोकपुरूष है। वही सभ्यता का निर्माता है। उसका जीवन आभिजात्य के प्रति व्यंग्य और विडम्बना है । लोक भद्र का उलट है। जनतंत्र में हमें उसी लोक संस्कृति का निर्माण करना है उसी कला का और उसी रचना का।'[11] आचार्य भरत ने भी लोक में तीन प्रकार के लोगों की चर्चा की है। दुखार्त अर्थात् जीवन में अभावों से दुखी लोग। श्रमार्त अर्थात कठोर श्रम से हारे थके लोग और तीसरे, शोकार्त जिसका तात्पर्य है, जीवन आघातों से शोकग्रस्त लोग। कहने की आवश्यकता नहीं है, कि विजेन्द्र की कविता में ये तीन प्रकार के लोग मौजूद हैं। आचार्य शुक्ल ने काव्य के लोकमंगल विधान के

लिए दो प्रकार के भाव अनिवार्य माने हैं। 'करूणा और प्रेम'। करूणा की प्रवृत्ति रक्षण की ओर होती है और प्रेम की रंजन की ओर। सामाजिक विषमता के कारण रक्षण पहले अनिवार्य है इस दृष्टि से विजेन्द्र की कविता शोषित और पीड़ित के साथ अपनी संवेदना के साथ आती है। 'तलछट' कविता में उन्होंने लिखा है–

''इन रेत टीलों में
तँबई लहरें देखता हूँ दूर दूर तक
धुंधलका है समय का
कराल है काल
पुलिस के डंडे खाते किसानों को देखा
पौंछते खून बहता कनपटी से
वे माँगते हैं अपनी जमीन का हक
अपने वनों पर अधिकार
तुम उन्हें करते जाते हो बेदखल
बेघर बेदम दरबदर
सामना कर रहा हूँ
तुम्हारे कुचक्र भरे प्रहारों का।'[12]

उपर्युक्त पंक्तियाँ सरकार की जन विरोधी नीतियों की आलोचना कर रही हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों का फायदा पहुँचाकर किसानों को उनकी जमीन का मामूली मुआवजा देकर विकास के नाम पर बेदखल किया जा रहा है। जल, जंगल और जमीन छीने जा रहे हैं। लेकिन कवि इस स्थिति का विरोध करता है और जन को संगठित होने का आह्वान करता है। वह जनशक्ति को महत्त्व देता है। कवि इस ढाँचे को तोड़ना चाहता है। वह अपनी कविता के माध्यम से वर्तमान लोकतंत्र को वास्तविक लोकतंत्र अर्थात सुराज में बदलना चाहता है। इसके लिए वह उत्पादक वर्ग का संगठित स्वरूप देखना चाहता है। कवि कहता है कि 'किसान इस देश की जनशक्ति है श्रमिकों से उनका गठजोड़ नये भविष्य का संकेत है। इसके बिना कुछ नहीं। ये दोनों हमारी असंख्य भुजाएँ हैं, कान हैं, दिल की धडकनें भी। जो कविता इनकी आवाज बने वह 'मीर' है। वे हर समय के साथ हैं। अथाह दुख और कठिनाइयों में डूबकर वे ज़िन्दा हैं। कभी घना कोहरा छँटेगा। निखरी धूप खिलेगी।'[13]

इस प्रकार विजेन्द्र का कवि कर्म लोकपक्षी धर्म को निभाने में समर्थ दिखाई देता है। इनकी कविता उन लोकतांत्रिक मूल्यों का समर्थन करती है जो जन के उत्थान के लिए हैं। वे जमीन और जनता के कवि हैं। एकांत श्रीवास्तव उनके समकालीन कविता में योगदान पर चर्चा करते हुए टिप्पणी लिखते हैं कि 'कवि विजेन्द्र हिन्दी और भारतीय काव्य – परिदृश्य में कवियों की उस विरल प्रजाति का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो निरंतर अपनी जमीन और जनता की कविता लिखते रहे हैं – अपनी अटल और निष्कंप आस्था के साथ, और जिनकी कविता की स्मृति मात्र अनेक युवा कवियों को मार्ग विचलित होने से बचा लेती है। कहना न होगा कि यह नेरूदा, निराला, मुक्तिबोध और त्रिलोचन की काव्य परंपरा का अधुनातन स्वरूप है।'[14]

विजेन्द्र का काव्य जीवनधर्मी काव्य है। जनपद के जीवन और उसके परिवेश का चित्रण उनकी कविताओं में सजीव रूप से चित्रित है। 'चैत की लाल टहनी' 'धरती कामधेनु से प्यारी' और 'ऋतु का पहला फूल' जैसे कविता संग्रहों में कवि ने जन के जीवन को अत्यंत नजदीक से देखा है। इन कविताओं में जीवन की उमंग है, हरे भरे खेतों का सौन्दर्य है, पकी अन्न की झुकी बालियाँ हैं। फूलों से लदी 'चैत की लाल टहनी' है। उनकी कविताओं में ऋतुओं का उल्लास है शीत, ग्रीष्म, बसंत, पतझर के अनेक चित्र है। वे प्रकृति में मौजूद उन तुच्छ वनस्पतियों, झाड़ियों और खरपतवारों पर भी कविता लिखते हैं, जिन्हें अनदेखा और उपेक्षित समझा जाता है। जैसे रसखान करील की कुंजो पर न्यौछावर हैं। ऐसे ही विजेन्द्र को 'कुकुरभाँगरा' आकर्षित करता है। यह 'कुकुरभाँगरा' निराला के 'कुकुरमुत्ता' से प्रेरित है, पर यह उल्लेखनीय है कि निराला के 'कुकुरमुत्ता' को खा लिया जाता है, उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है, पर कुकुरभांगरा का अस्तित्व बना रहता है। इसी प्रकार कवि एक अन्य लघु पादप 'भटकटैया' के सौन्दर्य पर मुग्ध है। कवि इसे आदर भाव से देखता है–

'ओ मेरी भटकटैया
खोने न दूँगा तुझे
तेरे सुकोमल बैंजनी फूल
पीली पराग केसर
दिखती बीच में
खोने न दूँगा।'[15]

कवि जीवनधर्मी चेतना में प्रेम के दो पक्षों का जिक्र करता है, पर पसंद करता है प्रेम के सामाजिक पक्ष को। अपनी पत्नी को संबोधित करते हुए अनेक कविताओं में उन्होंने सामाजिक विषमताओं के अनेक चित्र अंकित किये हैं। वे प्रेम को 'आँच में तपा कुन्दन' मानते हैं, साथ ही साथ वे नारी त्रासदी को भी अनुभव करते है। वे लिखते हैं –

'तुम्हारे बंधनों को
और कसा जा रहा है
यह कैसी भयानक त्रासदी है
जो तुम्हारे सौन्दर्य को और अधिक कृत्रिम
और अधिक भड़कीला
बनाकर
मुक्त बाजार में
ले आया हूँ
इसी तरह तुम जानों
तुममें भी
वह ताकत छुपी है
जो ऑच की लपटों में
धधकती है।'[16]

कवि आज के बाजारवाद से प्रभावित जीवन को देखता है, और महसूस करता है, कि नारी बाजार की वस्तु हो गई है। ऐसे में नारी की स्वाधीनता बनाए रखने के लिए प्रतिरोध आवश्यक है। विजेन्द्र की कविताओं में प्रेम का संबंध श्रम से भी है। कवि कहता है –

'तुम्हें छूते ही लगता है
अन्न भरी पृथ्वी को छुआ है
गन्ध को फूल से
कैसे अलग करूँ
पत्तियों की उभरी भूरी नसों में
छिपी हरितिमा
मेरी साँसो का भी हिस्सा है।'[17]

इस प्रकार हम कह पाने में समर्थ हैं, कि विजेन्द्र की कविता जीवन की कविता है। विषय कोई भी हो जुड़ाव जीवन जन और जमीन से ही है। उनकी कविता सक्रिय जीवन से अलग नहीं है। जीवन और प्रकृति का ऐसा रागात्मक संबंध समकालीन कविता में न के बराबर है। परमानंद श्रीवास्तव ने जीवनधर्मी काव्य के संदर्भ में लिखा है 'जीवनधर्मी काव्य में प्रेम, मानवीय करूणा, संघर्ष, उत्साह, आवेग, जीवट कर्म, सौन्दर्य की पहचान, साहस, प्रकृति से लगाव, समय की चेतना, इतिहास बोध, वर्ग चेतना आदि के साथ वह विश्व दृष्टि भी निहित होती है, जो समाज के क्रांतिकारी बदलाव के लिए प्रेरणा देती हैं।'[18]

विजेन्द्र की कविता की भाषा में अनेक रूप मिलते हैं। भाषा के संबंध में कवि का मानना है कि 'कविता की भाषा बनावटी न हो, जीवन व्यवहार की हो। कवि को अपनी भाषा क्रियाशील जनता से सीखनी चाहिए। किताबों या शास्त्रों से नहीं। जीवन व्यवहार की भाषा ही कविता में आवेग पैदा कर सकती हैउसमें सक्रियता की गति होती है आवेग होता है।'[19] इसीलिए इनकी भाषा में विविधता के दर्शन होते हैं। कुलीन लोगों की भाषा, ग्रामीण अंचल की भाषा, विद्रोह की भाषा, आक्रोश की भाषा, प्रतिरोध की भाषा, विचार और चिन्तन की भाषा, विवरण और विवेचन की भाषा आदि। ये विविधता इसलिए कि कथ्य की संप्रेषणीयता में किसी भी प्रकार की बाधा न हो। कथ्य की प्रकृति से भिन्न भाषा कवित्व के नकलीपन का अहसास कराती है। विजेन्द्र कहते है –

'ओह..... क्या कहूँ उनसे
नहीं समझ पाता उनकी भाषा जब
कैसे पहुँच पाऊँगा उनकी
धड़कनों तक
नहीं जान पाऊँगा उनका दुख
उनका विषाद ..... ।'[20]

इसलिए विजेन्द्र क्रियाशील मनुष्य के जीवंत व्यवहार से भाषा सीखने की कोशिश करते हैं। इस प्रक्रिया में जन से जुड़ने की छटपटाहट उनमें देखी जा सकती है। दोआब के होते हुए भी राजस्थानी के शब्द उनकी कविताओं में जिस प्रामाणिकता के साथ आते हैं, वह इस बात का प्रमाण है। प्राणवान क्रियाओं से जुड़े होने के कारण उनकी भाषा में व्यंग्य, विडंबना और आक्रमण करने की क्षमता है, जिसके चलते भाषा ऐंद्रिक और बिम्बात्मक हुई है। लोकोक्ति, कहावतों और मुहावरों के साथ उनकी कविता में बोलचाल के शब्द, तत्सम शब्द, तद्भव शब्दावली और

लोकबोलियों को भरपूर स्थान मिला है। जिस प्रकार के जीवन या कथ्य को व्यक्त करना हो उसी तरह की भाषा। वे भाषा को दृढता और संकल्प के वजूद से उत्पन्न अभिव्यक्ति मानते हैं। वे कहते हैं –

'असरदार भाषा हलक से नहीं –
बड़े इरादों वाले दिल से निकलती है।'[21]
वे आगे और अधिक जोर देकर कहते हैं –
'भाषा की दरिद्रता शब्दो से नहीं
विश्वास की कमी से
पहचानी जाएगी।'[22]

हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि समकालीन कविता में विजेन्द्र ने अपनी क्षमता और सामर्थ्य से उस मुकाम को हासिल किया है जिसके वे हकदार है। सूरज पालीवाल के शब्दों में 'विजेन्द्र इसीलिए बड़े कवि हैं, उनकी चिंताएँ बड़ी हैं और उनके सरोकार व्यापक हैं। वे अपने समय के चितेरे भर नहीं हैं, बल्कि वे अपने समय की जनविरोधी कविताधारा को तार तार कर जन संघर्षों के ताप से तपी कविता के कवि हैं। इसलिए उनकी कविता के साथ उनके गद्य को पढते समय हम समृद्ध होते हैं, हमारे अंदर अपनी परंपरा से जुड़ने की गहरी गर्वानुभूति होती है और हम अपनी निजी चिंताओं से उपर उठकर जनता की चिंताओं के साथ खड़े दिखाई देते है।'[23]

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि विजेन्द्र साधक कवि हैं। उन्होंने बड़े सरोकारों से अपनी कविता को जोड़ा है। उनका विजन जनपद से प्रदेश तक, प्रदेश से संपूर्ण देश तक और देश से विश्व तक व्यापक है। उनके काव्य गुरू त्रिलोचन के शब्दों में कह सकते हैं कि – केवल भारत नहीं विश्व का मानव जागे। विजेन्द्र काव्य का यही आशय है। वे अपने देश के कोटि – कोटि शोषित जनों की बुलंद आवाज हैं। उनके लिए संघर्ष करने वाले कलम के सिपाही हैं। उनकी भाषा देखना और बोलना क्रियापदों से युक्त हैं। वे जनशक्ति को संबोधित करते हुए कहते हैं 'बोलो और बोलो, बोलने से सन्नाटा टूटता है। व्यवस्था दहलती है।' जब तक समाज में वर्ग भेद रहेगा असमानता रहेगी । अतः यह भेद ध्वस्त करना होगा। विजेन्द्र लोकपक्षधर कवि है उनकी कविताएँ लोक की सामुदायिक भावना को तोड़ने वाली ताकतों को पहचानने की शक्ति देती है। समकालीन कविता में लोकधर्म की प्रतिष्ठा,सच्चे लोकतंत्र की स्थापना और जीवन मूल्यों की व्यापक अभिव्यक्ति

में अपना योगदान देती है। उनकी कविताएँ उस जलती मशाल के समान है जो अंधकार में मार्ग प्रशस्त करती है। उनकी कविता का प्रयोजन 'शिवेतरक्षतये' ही है। अंत में उन्हीं के शब्दों में –

यह बोझा मुझे
जलयान की तरह
उस समय तक ढोना है
जब तक वह उगता हुआ खेत
जडें न पकड ले .... ।'[24]

संदर्भ –

1. संपादक मंजु शर्मा, विजेन्द्र का वक्तव्य, बूँद तुम ठहरी रहो, पृ 7
2. विजेन्द्र, अंधकार को चीर आई कौंध अकेली, ऋतु का पहला फूल(कविता संग्रह) पृ.166
3. विजेन्द्र, निशि को, पहले तुम्हारा खिलना (कविता संग्रह),पृ. 30
4. वही पृ. 85
5. वही पृ. 93
6. वही पृ. 98
7. अमीर चंद वैश्य, कौन है बड़ा कवि आजकल नामक लेख से, स्पर्श (वेब ब्लॉग) पृ.4
8. विजेन्द्र, मेरे जनपद का कृषक, कवि ने कहा (कविता संग्रह) पृ. 49 – 50
9. एकांत श्रीवास्तव, वही होगा मेरा कवि, वागर्थ पत्रिका, पृ. 8–9
10. संपादक डॉ, मंजु शर्मा, बूँद तुम ठहरी रहो, अरूण कमल का लेख, पृ. 96
11. विजेन्द्र, कवि की अन्तर्यात्रा (डायरी), पृ. 18
12. विजेन्द्र, तलछट कविता से, बेघर का बना देश (कविता संग्रह) पृ. 118
13. अमीर चंद वैश्य, लोकविमर्श वेबब्लॉग, पृ. 4
14. एकांत श्रीवास्तव, वही होगा मेरा कवि, वागर्थ पत्रिका, पृ. 8
15. विजेन्द्र, भटकटैया, कवि ने कहा (कविता संग्रह), पृ. 122
16. विजेन्द्र, त्रासदी, आँच में तपा कुंदन (कविता संग्रह), पृ. 45
17. विजेन्द्र, अन्न भरी पृथ्वी, आँच में तपा कुंदन (कविता संग्रह), पृ. 106 – 107
18. परमानंद श्रीवास्तव, समकालीन कविता : संप्रेषण का संकट, पृ. 198
19. संपादक देवेन्द्र गुप्ता, विजेन्द्र का साक्षात्कार, सेतु पत्रिका, पृ. 21
20. विजेन्द्र, बनते मिटते पाँव रेत में, (कविता संग्रह), पृ. 29
21. विजेन्द्र, अरावली, ऋतु का पहला फूल (कविता संग्रह), पृ. 166
22. विजेन्द्र, उगान, पहले तुम्हारा खिलना (कविता संग्रह), पृ. 92
23. संपादक प्रेमशंकर रघुवंशी, सूरज पालीवाल के लेख से, लेखन सूत्र पत्रिका, पृ. 315
24. विजेन्द्र, उजली गंगा की तरह, त्रास (कविता संग्रह), पृ. 51

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 आधार ग्रंथ

1.1. विजेन्द्र का प्रकाशित काव्य

1.	त्रास	साहित्यालोक प्रकाशन, भरतपुर 1966
2.	ये आकृतियाँ तुम्हारी	कोणार्क प्रकाशन दिल्ली 1980
3.	चैत की लाल टहनी	संभावना प्रकाशन हापुड 1982
4.	उठे गूमड़े नीले	शारदा सदन इलाहबाद 1983
5.	धरती कामधेनु से प्यारी	परिमल प्रकाशन इलाहबाद 1990
6.	ऋतु का पहला फूल	पंचशील प्रकाशन जयपुर 1994
7.	उदित क्षितिज पर	किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली 2000
8.	घना के पाँखी	सार्थक प्रकाशन, दिल्ली 2000
9.	पहले तुम्हारा खिलना	ज्ञानपीठ प्रकाशन दिल्ली 2004
10.	बसंत के पार	इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली 2006
11.	आधी रात के रंग	कृतिओर प्रकाशन, जयपुर 2006
12.	कवि ने कहा	किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली 2008
13.	दूब के तिनके	पिल्ग्रिम प्रकाशन वाराणसी 2009
14.	पकना ही अखिल है	नेशनल पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली 2009
15.	आँच में तपा कुंदन	रॉयल प्रकाशन जोधपुर 2010
16.	भीगे डैनों वाला गरूण	बोधि प्रकाशन जयपुर 2010
17.	जनशक्ति	नेशनल पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली 2011
18.	बुझे स्तंभों की छाया	रॉयल प्रकाशन जोधपुर 2011
19.	बनते मिटते पाँव रेत में	वाड्मय प्रकाशन जयपुर 2013
20.	कठफूला बाँस	रॉयल प्रकाशन जोधपुर 2013
21.	मैंने देखा है पृथ्वी को रोते	नयी किताब दिल्ली 2014
22.	बेघर का बना देश	साहित्य भण्डार इलाहबाद 2014
23.	ढल रहा है दिन	नयी किताब दिल्ली 2015

1.2. विजेन्द्र का प्रकाशित गद्य

1.	अग्नि पुरूष	
2.	क्रौंच वध	भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली 2006
3.	कवि की अन्तर्यात्रा (डायरी)	शिल्पायन, दिल्ली 2008
4.	धरती के अदृश्य दृश्य	अभिषेक प्रकाशन दिल्ली 2010
5.	सतह के नीचे	वाङ्मय प्रकाशन जयपुर 2010
6.	कविता और मेरा समय	राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस जयपुर 2000
7.	सौन्दर्यशास्त्र : भारतीय चित्त और कविता	अभिषेक प्रकाशन दिल्ली 2006

2. सहायक ग्रंथ सूची

1. अरूण कमल : सबूत, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 1981
2. अरूण कमल : कविता और समय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 1999
3. अरूण कमल : टपनी केवल धार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2004
4. अनामिका : कवि ने कहा, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली 2008
5. अशोक त्रिपाठी (संपा.) : कहे केदार खरी – खरी, साहित्य भंडार, इलाहबाद 2009
6. अशोक वाजपेयी : कविता का जनपद, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 1995
7. अज्ञेय : तार सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली 2005
8. आनंदवर्द्धन : ध्वन्यालोक, ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी, संवत् 2062
9. आलोक गुप्त : जटिल संवेदना के कवि मुक्तिबोध, पार्श्व प्रकाशन, अहमदाबाद 2002
10. आलोक धन्वा : दुनिया रोज बनती है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2006
11. उदय प्रकाश : रात में हारमोनियम, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 1998
12. उदय प्रकाश : कवि ने कहा, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली 2009
13. एकांत श्रीवास्तव : अन्न हैं मेरे शब्द, आधार प्रकाशन, पंचकूला हरियाणा 1994
14. कमलेश्वर प्रसाद : हिन्दी में लम्बी कविता : अवधारणा एवं स्वरूप, भारतीय संस्कृत भवन जालंधर 1986
15. कल्याणचंद्र : समकालीन कविता और काव्य, चिन्तन प्रकाशन, कानपुर 1996
16. कुमार अंबुज : किवाड, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा 1992
17. कुमार अंबुज : क्रूरता, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 1996

18. कुमार अंबुज : अनंतिम, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 1998
19. कुमार विकल : सौन्दर्यशास्त्र के तत्त्व, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1998
20. केदारनाथ अग्रवाल : फूल नहीं रंग बोलते हैं, साहित्य भंडार, इलाहबाद 2009
21. केदारनाथ अग्रवाल : गुलमेंहदी, साहित्य भंडार, इलाहबाद 2009
22. केदारनाथ सिंह : आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब – विधान, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली 1971
23. गजानन माधव मुक्तिबोध : नई कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध, विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर 1977
24. गोरख पांडेय : जागते रहो सोने वालों, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 1983
25. चन्द्रकांत देवताले : उसके सपने, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 1997
26. चन्द्रकांत देवताले : उजाड में संग्रहालय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2010
27. चन्द्रकांत देवताले : पत्थर फैंक रहा हूँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2011
28. जगन्नाथ पंडित : नागार्जुन का काव्य और युग : अन्तःसम्बन्धों का अनुशीलन, रंगद्वार प्रकाशन, अहमदाबाद 1996
29. त्रिलोचन : धरती, नीलाभ प्रकाशन, इलाहबाद, प्रथम संस्करण 1945
30. त्रिलोचन : ताप के ताए हुए दिन, संभावना प्रकाशन, हापुड 1980
31. त्रिलोचन : शब्द, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 1980
32. त्रिलोचन : उस जनपद का कवि हूँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली द्वितीय संस्करण 1982
33. त्रिलोचन : अनकहनी भी कुछ कहनी है राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली 1985
34. धूमिल : संसद से सड़क तक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1972
35. धूमिल : सुदामा पांडे का प्रजातंत्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 1984
36. धूमिल : कल सुनना मुझे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2010
37. ध्रुव शुक्ल : त्रिलोचन संचयिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2002
38. नगेन्द्र : काव्य बिम्ब, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1967
39. नरेन्द्र मोहन : कविता की वैचारिक भूमिका, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली 1980
40. नरेन्द्र मोहन : लम्बी कविताओं का रचना विधान, मैकमिलन ऑव् इंडिया, नई दिल्ली 1977
41. नेमीचंद्र जैन (संपा.) : मुक्तिबोध रचनावली भाग – 5, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2007
42. नेमीचंद्र जैन (संपा.) : मुक्तिबोध रचनावली भाग – 6, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2007

43. परमानंद श्रीवास्तव : कविता का अर्थात्, आधार प्रकाशन, पंचकूला हरियाणा 1999
44. परमानंद श्रीवास्तव : समकालीन हिन्दी कविता, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली 2012
45. पी. सत्यवती : समकालीन कविता में व्यक्त राजनीतिक सामाजिक व्यंग्य, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा 2008
46. पी. रवि : समकालीन कविता के आयाम, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली 2013
47. प्रभाकर श्रोत्रिय : कालयात्री है कविता, स्मृति प्रकाशन, इलाहबाद 1983
48. परमानंद श्रीवास्तव : समकालीन कविता, संप्रेषण का संकट, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2014
49. बलदेव वंशी : समकालीन कविता : वैचारिक आयाम, पराग प्रकाशन, दिल्ली 1978
50. बलदेव वंशी : लम्बी कविताएँ : वैचारिक सरोकार, जयश्री प्रकाशन, नई दिल्ली 1983
51. भगवत रावत : कवि ने कहा, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली 2012
52. मदन कश्यप : कवि ने कहा, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली 2008
53. मंगलेश डबराल : पहाड़ पर लालटेन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 1981
54. मंगलेश डबराल : हम जो देखते हैं, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 1995
55. मंगलेश डबराल : आवाज भी एक जगह है, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2000
56. मंगलेश डबराल : कवि ने कहा, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली 2010
57. मंजू शर्मा (संपा.) : बूँद तुम ठहरी रहो, एकता प्रकाशन, चूरू 2014
58. मम्मट : काव्य प्रकाश, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी 2011
59. मैनेजर पांडेय : अनभै साँचा, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली 2002
60. युद्धवीर धवन : समकालीन लंबी कविता की पहचान, संजीव प्रकाशन, कुरूक्षेत्र 1987
61. रमेश कुंतल मेघ : क्योंकि समय एक शब्द है, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद 1975
62. (डॉ) रणजीत : प्रगतिशील हिन्दी कविता, साहित्य रत्नालय, कानपुर 1986
63. राजेश जोशी : एक दिन बोलेंगे पेड़, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2002
64. रामबहोरी शुक्ल : काव्य प्रदीप, हिन्दी भवन, इलाहबाद 1994
65. रामचंद्र शुक्ल : चिन्तामणि, भाग – 1, इंडियन प्रेस प्रा. लि. इलाहबाद 1996
66. रामविलास शर्मा : मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 1984
67. रोहिताश्व : समकालीन कविता और सौन्दर्यबोध, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 1996
68. रोहिताश्व : समकालीनता और शाश्वतता, विद्या प्रकाशन, कानपुर 2006

69. लक्ष्मीकान्त वर्मा : नयी कविता के प्रतिमान, भारती प्रेस प्रकाशन, इलाहबाद 1957
70. लीलाधर जगूडी : ईश्वर की अध्यक्षता में, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1999
71. लीलाधर जगूडी : बची हुई पृथ्वी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2003
72. लीलाधर जगूडी : भय भी शक्ति देता है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2007
73. लीलाधर जगूडी : कवि ने कहा, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली 2009
74. लीलाधर मंडलोई : कवि ने कहा, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली 2008
75. विजय कुमार : कविता की संगत आधार, प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा 1995
76. विनोद कुमार शुक्ल : सब कुछ होना बचा रहेगा, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 1992
77. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय : समकालीन कविता की भूमिका, मैकमिलन ऑव् इंडिया नई दिल्ली 1976
78. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय : समकालीन सिद्धान्त और साहित्य मैकमिलन ऑव् इंडिया नई दिल्ली 1976
79. विष्णुचंद्र शर्मा : नागार्जुन एक लम्बी जिद, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2001
80. वीरेन्द्र नारायण सिंह : फणीश्वरनाथ रेणु का कथा साहित्य, रवि प्रकाशन, अहमदाबाद 1998
81. शिवकुमार मिश्र : नया हिन्दी काव्य, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर 1962
82. शोभाकांत (संपा.) : नागार्जुन रचनावली, खण्ड –1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2003
83. श्यामसुंदरदास : साहित्यालोचन, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली 2013
84. श्रीराम त्रिपाठी : धूमिल और परवर्ती जनवादी कविता, रंगद्वार प्रकाशन, अहमदाबाद 2002
85. सन्तोष कुमार तिवारी : अज्ञेय से अरूण कमल तक, भारतीय ग्रंथ निकेतन नई दिल्ली 2005
86. सत्यदेव मिश्र : पाश्चात्य काव्यशास्त्र अधुनातन संदर्भ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद 2003
87. सुमित्रानंदन पंत : पल्लव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1963
88. हुकुमचंद राजपाल : समकालीन बोध और धूमिल का काव्य, कोणार्क प्रकाशन दिल्ली 1980

3. पत्रिकाएँ

1. संपादक अनंत कुमार सिंह, जनपथ, आरा (बिहार) अक्टूबर 2011
2. संपादक अनिल कुमार विश्वकर्मा, वाग्प्रवाह, ओरैया (उत्तर प्रदेश) जुलाई दिसम्बर 2011
3. संपादक एकांत श्रीवास्तव एवं कुसुम खेमानी, वागर्थ, कोलकाता, अगस्त 2015

4. संपादक देवेन्द्र गुप्ता, सेतु, शिमला (हिमाचल प्रदेश), जुलाई से दिसम्बर 2012
5. संपादक प्रेमशंकर रघुवंशी, लेखन सूत्र, जगदलपुर (छत्तीसगढ) जनवरी से जुलाई 2006
6. संपादक रमाकांत शर्मा, कृति ओर, जोधपुर (राजस्थान) अप्रेल से दिसम्बर 2013

4. वेब पत्रिकाएँ एवं ब्लॉग

1. asuvidha.blogspot.in
2. hashiya.blogspot.com
3. jankipul.com
4. kavitakosh.org
5. lokvimarsh.blogspot.in
6. sparsh.blogspot.in
7. uday-prakash.blogspot.in

5. शब्द कोश

1. आचार्य रामचंद्र वर्मा (संशोधन एवं परिवर्द्धन – बदरीनाथ कपूर) : लोकभारती प्रामाणिक हिन्दी कोश, छठा संस्करण, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद 1999
2. श्यामसुंदर दास, हिन्दी शब्द सागर कोश, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी 1887
3. श्री नवल जी, नालंदा विशाल शब्द सागर, आदर्श बुक डिपो, करोल बाग, नई दिल्ली 1988